ऋक्सूक्तगौरवम्

(सायणभाष्यानुसार हिन्दीभाषानुवादसहितम्)

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

(डॉ०) पुरुषोत्तम शर्मा

गोल्ड मेडलिस्ट

अभिनव एण्ड अभिमन्यु पब्लिकेशन्स
कटड़ा वैष्णों देवी
(जे. एंड. के.)

ऋक्सूक्तगौरवम्

भूमिका-वेदों का महत्त्व एवं वेदों का स्वरूप
वेदों का आदर्श
वैदिक देवतावाद
वैदिक उदात्त भावनाएँ
समष्टिभावना
आशावाद
ऋग्वैदिक दार्शनिक चिन्तन-ईश्वर-जीव-प्रकृति, एकेश्वरवाद, आत्मा, सृष्टि-उत्पत्ति, मृत्यु और पुनर्जन्म, मोक्ष,
वैदिक साहित्य-ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग, ऋग्वेद संहिता का विभाजन, अष्टक-क्रम एवं मण्डल क्रम, ऋषि, ऋग्वैदिक देवता, ऋग्वेद के छन्द, विनियोग, वेदों की स्वर-प्रक्रिया

क्रमाङ्क	सूक्त नाम	मण्डल तथा सूक्त क्रमाङ्क
	मण्डल-प्रथम	
१.	अग्निसूक्त	१.१
२.	अग्निमारुतसूक्त	१.१९
३.	वरुणसूक्त	१.२५
४.	सूर्यसूक्त	१.११५
५.	विष्णुसूक्त	१.१५४
	मण्डल-द्वितीय	
६.	इन्द्रसूक्त	२.१२
७.	रुद्रसूक्त	२.३३
	मण्डल-तृतीय	
८.	(नद्यः सूक्त) विश्वामित्र-नदी संवाद	३.३३
९.	मित्रसूक्त	३.५९
१०.	उषस्सूक्त	३.६१
	मण्डल-चतुर्थ	
११.	सवितासूक्त	४.५४

क्रमाङ्क	सूक्त नाम	मण्डल तथा सूक्त क्रमाङ्क
	मण्डल-पञ्चम	
१२.	पर्जन्यसूक्त	५.८३
	मण्डल-षष्ठ	
१३.	पूषासूक्त	६.५३
१४.	पूषन्सूक्त	६.५४
	मण्डल-सप्तम	
१५.	आपः सूक्त	७.४१
१६.	वास्तोष्पति सूक्त	७.५४
१७.	अश्विनौ सूक्त	७.७१
१८.	इन्द्रावरुणसूक्त	७.८३
१९.	वरुणसूक्त	७.८६
२०.	मण्डूकसूक्त	७.१०३
	मण्डल-अष्टम	
२१.	विश्वेदेवाः सूक्त	८.३०
२२.	सोमसूक्त	८.४८
	मण्डल-दशम	
२३.	यम (अन्त्येष्टि) सूक्त	१०.१४
२४.	पितृसूक्त	१०.१५
२५.	अक्षसूक्त	१०.३४
२६.	पुरुषसूक्त	१०.९०
२७.	हिरण्यगर्भसूक्त	१०.१२१
२८.	वाक्सूक्त	१०.१२५
२९.	रात्रिसूक्त	१०.१२७
३०.	नासदीय (सृष्ट्युत्पत्ति) सूक्त	१०.१२९
३१.	वातसूक्त	१०.१३८
३२.	संज्ञानसूक्त	१०.१९१

भूमिका

ऋग्वेद विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ (Ist book of the world) माना जाता है। इसमें आर्य जाति की उच्चतम संस्कृति का पुराणतम विवरण है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद का काल १२०० ईसा पूर्व, हॉग के अनुसार २४०० ई० पू०, ओल्डनवर्ग के अनुसार २५०० ई० पू०, मैक्डानल के अनुसार १३०० ई० पू०, भण्डारकर के अनुसार ६००० ई० पू०, जैकोबी के अनुसार ४५०० ई० पू०, और तिलक के अनुसार ४००० ईसा पूर्व है। ऋग्वेद के काल के सम्बन्ध में मतभेद भले ही हों, किन्तु इसमें प्रतिपादित ज्ञान की अद्वितीयता के सम्बन्ध में सभी सहमत हैं। **वेदों का महत्त्व :** प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार ये वेद सर्वप्रथम ऋषियों के हृदय में उतरे थे। लोक के कल्याण के लिए परमेश्वर ने इन वेदों का प्रकाश किया था। स्वयं वेद इस बात का प्रमाण हैं कि वेद उसी परमेश्वर की वाणी हैं। **तस्माद्यज्ञात्-सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ (ऋक् १०.९०.९, यजु० ३१.७)**

"उसी सबके द्वारा बुलाये जाने वाले यजनीय परमात्मा से ऋचायें, साम उत्पन्न हुए, उसी से छन्द प्रकट हुए और उसी से यजु प्रकट हुए।" प्रस्तुत मन्त्र में ऋचायें ऋग्वेद के, साम सामवेद के, छन्द अथर्ववेद में और यजु यजुर्वेद के परिचायक हैं। अथर्ववेद के ही एक मन्त्र में साम को परमात्मा के लोम तथा अथर्व को मुख बताया गया है-

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥
स्कंभं तं ब्रूहि कतमस्विदेव सः। (अथर्व १०. ७/२०)

"जिस स्कंभ अर्थात् सर्वाधार परमात्मा से ऋचायें या ऋग्वेद प्रकट हुआ, जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, साम जिसके लोम के समान है और अंगिरस का अथर्ववेद जिसके मुख के तुल्य है, वही सर्वाधार परमात्मा है।" उपनिषदों में वेदों को परमेश्वर के निःश्वास प्रतिपादित किया गया है। जिस तरह मानव के निःश्वास अनायास आते जाते रहते हैं, ठीक उसी तरह ये वेद भी परमेश्वर से निकलते रहते हैं तथा उसी परमात्मा में विलीन भी होते रहते हैं। सायणाचार्य भी अपने 'ऋग्भाष्य' में इस मत का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि- "**यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्**" अर्थात् "जिस परमेश्वर के वेद निःश्वास के तुल्य हैं तथा जिसने वेदों से सम्पूर्ण विश्व का निर्माण किया, उस विद्या के सागर परमेश्वर को प्रणाम है।" "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में उल्लेख है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया तथा उसके लिए वेदों को भेजा- "**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै** "बृहदारण्यकोपनिषद्" में वेदों को परमात्मा का निवास बताया गया है- "**एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाऽङ्गिरसः**" इस प्रकार वेदों की प्राचीनता शास्त्रों में सिद्ध की है।

वेदों में प्राचीन ऋषियों के ज्ञान का अगाध भण्डार भरा पड़ा है। वेदों के द्वारा प्राचीन ऋषियों ने संसार के समस्त ज्ञान का प्रकाश नहीं किया है, अपितु विश्व में कोई ज्ञान ऐसा नहीं है, जो वेदों में न हो। इस तरह सम्पूर्ण ज्ञान का आदि स्रोत परमात्मा ही है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि- "सब सत्यविद्या तथा जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमात्मा है।" जिस तरह भगवान् महर्षि व्यास ने अपने महाकाव्य महाभारत के सम्बन्ध में कहा था कि "**यदिहाऽस्ति तदन्यत्र यन्नेहाऽस्ति न कुत्रचित्**" जो इसमें है, वही अन्यत्र है तथा जो इसमें नहीं है, वह दूसरी जगह भी नहीं है।" वही वेदों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। वेदों का वैदिक परम्परा में अति महत्त्व है, क्योंकि सब का आधार वेद माना गया है, मनु लिखते हैं-"**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**" अर्थात् "सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल

हैं।'' अर्थात् सभी धर्म इसी वेद के आधार पर अवस्थित हैं। अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि धर्म की क्या परिभाषा है। इस प्रश्न का उत्तर भी मनुस्मृति ही देती है कि-

''धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः''॥

''धारण करने के कारण धर्म कहा जाता है, तथा यही धर्म प्रजाओं को धारण करता है।'' जो ज्ञान प्रजाओं को धारण करता है, प्रजाओं की हर प्रकार की उन्नति करता है, उनका आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक हर तरह का अभ्युदय करता है, वही धर्म है। यह धर्म वेदों का विषय है। आज भी भारत में कोई भी धार्मिक विधि-विधान बिना वेद-पाठ के प्रारम्भ नहीं होता है। आज भी वेदों का इतना महत्त्व है।

वेदों का स्वरूप : हमारी भारतीय परम्परानुसार कुछ ऐसी प्राचीन मान्यताएँ हैं कि सर्वप्रथम एक ही वेद था, लोगों के पठन-पाठन की सुविधानुसार एक वेद को चार भागों में बाँट दिया गया। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि-

''एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
वेदो नारायणो नान्यः एकोऽग्निर्वर्ण एव च॥''

सर्वप्रथम एक ही वेद था। पर आगे चलकर उसके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के रूप में चार ग्रन्थ हो गये। यहाँ वह आशङ्का उत्पन्न हो सकती है कि एक वेद तथा चार वेद ये दोनों परस्पर विरोधाभास वाली बातें क्यों हैं ? अथवा एक वेद का ही अध्ययनाध्यापन श्रेयस्कर है ? या चारों वेदों का ही मिलकर अध्ययनाध्यापन करना ही श्रेयस्कर है ? इस प्रश्न रूप शंका का तभी समाधान हो सकता है। जब हम वेदों के उद्देश्य पर विचार करेंगे। वेदों के विषय और ध्येय के सम्बन्ध पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि वेद यद्यपि स्थूलरूपेण भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, पर उनका अन्तिम उद्देश्य एक ही है। यजुर्वेद का विषय ''**कर्म**'' है। अतः यजुर्वेद को **कर्मवेद** कहते हैं। इस तरह कर्म सत्कर्म या प्रशस्ततम कर्म यजुर्वेद का विषय है। सामवेद का विषय ''**उपासना**'' है। ''**यः ऋक् तत् साम**'' के अनुसार ताल

तथा स्वरानुसार बैठाये गये ऋग्वेद के मन्त्र ही साम हैं, उनका उपयोग देवताओं के उपासना करने के काम में किया जाता है। सामवेद के १८७५ मन्त्रों में केवल ७५ मन्त्र ऋग्वेद में नही मिलते शेष १८०० मन्त्र ऋग्वेद में यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। ये सारे मन्त्र उपासना परक हैं। सामवेद के मन्त्रों से सब देवताओं में व्यापक आत्मा की उपासना करके शान्ति प्राप्त की जा सकती है। अतः इन मन्त्रों को 'सामन्' कहा जाता है। ‘‘साम’’ का अर्थ हैं-आत्मिक शान्ति प्रदान करने वाले मन्त्र। इस तरह यजुर्वेद का मुख्य उद्देश्य मानव को उत्तम कर्मों की शिक्षा देना है तथा सामवेद का मुख्य उद्देश्य भगवदुपासना द्वारा मनुष्यों को आत्मिक शान्ति प्रदान करना है। ऋग्वेद 'सूक्तवेद' है। 'सूक्त' का अर्थ ‘‘सु+उक्त’’ अर्थात्-‘‘उत्तमवचन’’ या 'सुभाषित' है। अत्युतम वचन जिन मन्त्रों में पाये जाते है उन मन्त्रों के समूह को 'सूक्त' कहा जाता है। उन्हीं को ‘‘ऋचा’’ या 'ऋक्' भी कहा जाता है। इस तरह ऋग्वेद में ‘‘अत्युतम विचारों को अभिप्रेरित करने वाले’’ मन्त्र हैं तथा सामवेद में ‘‘उपासना द्वारा आत्मिक शान्ति देने वाले’’ मन्त्र हैं। इस प्रकार- **१. ऋग्वेद** – अत्युतम विचारों का संग्रह-सुविचार वेद। **२. यजुर्वेद** – उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करने वाला संग्रह अर्थात् - सत्कर्म वेद। **३. सामवेद** - सदुपासना का संग्रह - उपासना वेद। अर्थात् - यदि (१) सद्विचार, (२) सत्कर्म तथा (३) सदुपासना - इन तीनों को ‘‘वेदत्रयी’’ भी कहा जाये तो तात्विक दृष्टि से दोषपूर्ण नहीं होगा। **४. ‘‘अथर्ववेद** - ‘‘अथर्व’’ का अर्थ है- ‘‘गति-रहित’’। ‘‘**थर्वति गतिकर्मा न थर्व इति अथर्वः**’’। इस तरह ‘‘थर्व’’ शब्द इस व्युत्पति के अनुसार चञ्चलता का वाचक होने के कारण ‘‘अथर्व’’ शब्द का अर्थ है-निश्चलता, समत्व, समता। गीता में जिस तात्पर्य को ‘‘स्थितप्रज्ञ’’ शब्द द्वारा अभिव्यक्त किया गया है, वही ‘‘अथर्ववेद’’ में ‘‘अ-थर्व’’ शब्द द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इस तरह योग साधना के द्वारा प्राप्त होने वाला चित्तवृत्ति का ‘‘निरोध’’ ही ‘‘अथर्व’’ है। इस तरह त्रयी विद्या की परिसमाप्ति इस चतुर्थ स्थिति में आकर होती है- **१. ऋग्वेद**–विचारों की पवित्रता। **२. यजुर्वेद**–कर्मों की पवित्रता। **३. सामवेद**- उपासना से शुद्धता। **४. अथर्ववेद**–समता, समत्व या स्थित प्रज्ञत्व। मानव की उत्तरोत्तर उन्नति के लिए ये सीढ़ियाँ है। सर्वप्रथम

मनुष्य विचार करता है, तदुपरान्त उन विचारों को कार्य में परिणत करता है, तब उसे अपने किये कर्मों का फल मिलता है। उपनिषद् में कहा भी है कि- ''**यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति, यत्कर्मणा करोति, तदभि संपद्यते।**'' मानव जिसका मन में ध्यान करता है, उसी को वाणी के माध्यम से बोलता है, जो कुछ वाणी से बोलता है, उसी को कर्म में लाता है तथा जो कुछ कर्म करता है, उसका वह फल पाता है। इन चारों ही वेदों के विषय अन्योन्य अत्यन्त निगडित हैं। सद्विचार और सत्कर्म में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं हो सकता है, उसी तरह ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी किसी प्रकार का अन्तर मानना भूल है। विचार, क्रिया भक्ति तथा एकाग्रता में जो अन्योन्य सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध चारों वेदों में भी है। अतः ये चार वेद भिन्न न होकर ''एक ही वेद'' हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वेदों में केवलमात्र भौतिक ज्ञान है, अध्यात्म ज्ञान नहीं है। अतः उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप अध्यात्म ज्ञान देने वाली उपनिषदों की रचना हुई, किन्तु यह उनका कथन उनकी वेद विषयक अज्ञानता का ही परिचायक है। ऋग्वेद का अस्यवामीय सूक्त, नासदीयसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त, विष्णु आदि सूक्त अध्यात्म विद्या के ही अगाध सागर हैं। पाश्चात्य विद्वान् अनेकता में एकता (UNITY IN DIVERSITY) के सिद्धान्त का प्रचार करते हैं, उसको ऋग्वैदिक ऋषियों ने ''**एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति**'' कहकर बहुत पहले ही कह दिया था।

वेदों का आदर्श

अतः चिरन्तनकाल से वेद भारतीय संस्कृति के प्रकाशस्तम्भ रहे हैं। भारतीय समाज के संगठन ओर उसकी जीवनचर्या के नियमन तथा व्यवस्थापन के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक उदात्त भावनाओं की प्रेरणा में भी वेदों का प्रमुख स्थान रहा है :- ''**व्यवस्थितार्यमर्यादा कृतवर्णाश्रमस्थितिः। त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥**''

इस तरह सामाजिक व्यवस्था के द्वारा वेद को लोक-कल्याणकारी प्रभाव का वर्णन आचार्य कौटिल्य ने किया है। इसी प्रभाव से अभिप्रेरित होकर न

केवल भारत के क्षेत्र में, अपितु देश–देशान्तरों में भी सच्ची शान्ति, सहिष्णुता, आध्यात्मिक भावना, एवं प्रेम का सन्देश दिया है। वेद वास्तविक रूप में भारतीय संस्कृति के प्राण हैं, और यही कारण है कि भारतीय संस्कृति संसार में अजर और अमर हैं। इन्हीं मौलिक कारणों से अभिप्रेरित होकर ही वेदों के स्वाध्याय की महिमा हमारे प्राचीन स्मृतिकारों तथा शास्त्रविदों ने की है :– **पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्। अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलम्॥ धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥** भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में वेद के महत्त्व का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है:–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

इस प्रकार ब्राह्मण (द्विज) का यह परम पावन कर्त्तव्य कर्म है कि वह समस्त वेदों का अध्ययन करें और उसके वास्तविक रहस्य को समझें। वेदाभ्यास ब्राह्मण का सबसे बड़ा तप है। यही नहीं, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष वेदांगों का तो प्रयोजन ही वेदों की रक्षा, वेदार्थ ज्ञान की योग्यता तथा वैदिक कर्मों का सुचारू रूप से संपादनादि बतलाना है। जैसे सूर्य के प्रकाश के लिए दूसरे किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती, ठीक वैसे ही वेदों की महत्ता को सिद्ध करने के लिए वेदों की ही सहायता लेनी चाहिए। अतः इसी आधार पर परीक्षण प्रारम्भ करते हैं :– **वैदिक देवतावाद**–वैदिक देवतावाद का लक्ष्य यही है कि विश्वप्रपंच की प्रत्येक विभूति में उसके द्वारा उस परमतत्त्व का साक्षात्कार किया जाये, जिसका मुनि (योगी) लोग बड़ी तपस्या और साधना से अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार (तादात्म्य) करना चाहते हैं, पर साक्षात्कार कर पाते हैं अथवा नही यह संदिग्ध है। **वैदिक उदात्त भावनाएँ**–वेदों की महत्ता एवं अद्वितीय वैशिष्ट्य इस बात में है कि वे एक अत्यन्त ऊंचे, विशाल और अत्यन्त व्यापक स्तर पर मान्व को बिठाकर उपदेश उनकी दृष्टि यावद् विश्वप्रपंच में व्याप्त है अर्थात् वह सत्य तथा आदर्श समाज

की कल्पना करते हैं। यही कारणं है कि वेदों को हम विश्वबन्धुत्व, भद्र भावना, आशावाद, समष्टियोजना, विश्वशान्ति श्रद्धा, निर्भयता तथा सामञ्जस्य के महान् आदर्शों और उदार भावनाओं से सर्वतो भावेन ओतप्रोत पाते हैं। समाज के परिप्रेक्ष्य में :- ''**अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना**''

विश्वबन्धुत्व और विश्वशान्ति–वेदों में ''मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।'' मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजुर्वेद ३६/१८ पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः॥ ऋक् ६/७५/१४ जैसे विश्वबन्धुत्व और 'शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु॥ ऋक् ७/३५/८ जैसे विश्वशान्ति के भाव भरे पड़े हैं। आधुनिक युग में वेदों के इस सन्देश की परमावश्यकता है।

समष्टि भावना–वैदिक प्रार्थनाओं की यह विशेषता यत्र–तत्र–सर्वत्र दृष्टि गोचर होती हैं कि वे प्रायेण बहुवचन में होती है और उसमें समष्टि कल्याण की भावना निहित रहती है :- ''**धियो योनः प्रचोदयात्**'' **समानो मन्त्रः .... यद् भद्रं तन्न आसुव सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥**

वर्तमान हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की परमोन्नति तथा रक्षा के लिए यह समष्टिभावना नितान्त आवश्यक है। जैसे एक फूल के सौन्दर्य और सुगन्ध किसी बाह्य कारण से न होकर उसके स्वरूप का अङ्ग है, ठीक वैसे ही एक कल्याण मार्ग के पथिक का निरपेक्षया अवासक्त होकर कर्त्तव्य पालन करना उसके स्वरूप का अङ्ग होता है। उसके जीवन का सार्थक्य जीवन की पूर्णङ्गिता ही इसमें होती है। ''**आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः**'' ''**भद्रं भद्रं न आ भर**'' ''**यद् भद्रं तन्न आसुव**'' ''**भद्रं कर्णेभिः..........।**'' भद्रं नो अपि वातयः मनः इत्यादि प्रकार से शतशः वेदो के मन्त्र भद्र भावना से ओत–प्रोत हैं।

आशावाद–वैदिक धर्म की विशेषताओं में एक विशेषता उसका आशावाद भी है। वैदिक साहित्य आशावाद के ओज पूर्णभावों से परिपूर्ण ही नहीं अपितु ओत–प्रोत है। ''**पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम्**'' ''**अदीनाः स्याम शरदः शतम्**'' ''**पूषेम् शरदः शतम्**'' ''**ओजोऽस्योजो मयि धेहि**''

''**विश्वदानीः समनसः स्याम**'' इत्यादि सभी प्रार्थनायें आशावाद की ही

समुज्ज्वल प्रतीक हैं। वर्तमान युग में जबकि विश्व पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, जिस युग में मानवता, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, आतंक, भय इत्यादि आक्रान्त है, तथा मानव-मानव न रहकर दानव बन गया है, ऐसे समय में वेदवाणी रूपी निर्मल गङ्गा की पावन धारा व्यक्ति के मानस-पटल को पवित्र करने में नितान्त सक्षम है। "**आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः**" अर्थात् सभी प्रकार के अच्छे विचार हमें चारों दिशाओं से प्राप्त हों। यदि हम भव्य समाज का निर्माण करना चाहते हैं, यदि हम मानव को मानव बनाना चाहते हैं, तो हमें वेदों की और चलना होगा, (move to vedas, मूव टु·वेदाज) तभी हम अपने अतीत के गौरव को पहचान पायेंगे। ऋग्वेद में अनेक दार्शनिक तत्त्वों के भी दर्शन होते हैं। **ऋग्वैदिक दार्शनिक चिन्तन**-ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें आत्मा, परमात्मा सृष्टि-उत्पत्ति, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयों पर गम्भीर चिन्तन किया गया है।

(क) ईश्वर-जीव-प्रकृति -वैदिक धर्म में सृष्टि की रचना एवं विश्व के सञ्चालन के लिए ईश्वर जीव एवं प्रकृति इन तीनों तत्त्वों की सत्ता स्वीकार की गयी है। जीव और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा ईश्वर इसका नियामक और सञ्चालक है। प्रकृति के द्वारा जीव बंधा रहता है तथा जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है तत्त्वज्ञान होने पर जीव इन बन्धनों से छूट जाता है और मोक्ष के परमानन्द को प्राप्त करता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में द्वैतवाद को पुष्ट किया गया है। यथा-

द्वा सु॑प॒र्णा स॒यु॒जा सखा॑या स॒मा॒नं वृ॒क्षं परि॑षस्वजाते।
तयो॑र॒न्यः पि॑प्पलं स्वा॒द्वत्त्य॑नश्न॑न्न॒न्यो अ॒भि चा॑कशीति। (ऋक् १. १६ ४.२०)

अर्थात् सुन्दर पंखों वाले समान आयु के दो पक्षी मित्ररूप से विश्व का आलिङ्गन कर रहे हैं। उसमें से एक स्वादिष्ट पिप्पल का आस्वादन कर रहा है, दूसरा भोग न करता हुआ भी आनन्द प्राप्त करता है। इस मन्त्र में विश्व प्रकृति है तथा पिप्पल उसके भोग्य पदार्थ हैं आस्वादन करने वाला पक्षी जीव है तथा भोग न करने वाला दूसरा पक्षी ईश्वर है। इसी प्रकार एक और मन्त्र भी उद्धृत कर रहे हैं। यथा- **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव**

चक्षुराततम्॥ (ऋक् १.२२.२०) यहाँ ''श्रीविष्णु'' परमात्मा के लिए ''सूरयः'' जीवों के लिए और ''दिवीव चक्षु'' प्रकृतिरूप सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। **ईश्वर की सत्ता**–वेदों में ईश्वर की सत्ता के विषय में प्रश्न है कि यदि ईश्वर है तो किसने देखा है? इसका उत्तर है- मैं यहीं हूँ, मुझे यहीं देखो। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के एक मन्त्र के अनुसार ''इस संसार में जो भी पदार्थ प्रादुर्भूत हुए हैं, हो रहे हैं या होंगे उन सभी पदार्थों का शासनसूत्र किसी महान् शक्ति के अधीन होता है। वह शक्ति सर्वातिशायी एवं बलवती होती है, जिसकी रेखा का उल्लंघन सूर्य चन्द्रादि भी नहीं कर पाते। इसी सत्ता से ही ऋतुएँ होती है और प्रलय होता है इसको ही ईश्वरीय शक्ति कहते हैं।'' **एकेश्वरवाद** ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में लिखा गया है, कि तत्ववेत्ता लोग सुकार्य करने वाले ईश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि बुद्धिमान् ज्ञानी लोग उस ईश्वर को यम, मातरिश्वा, इन्द्र, वरुण, मित्र, सुपर्ण, गरुत्मान् आदि नामों से पुकारते है। यथा-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋक् १. १६४. ४६)

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।। (ऋक् १०.११४.५)

आत्मा–आत्मा शब्द आत्मन् शब्द से प्रादुर्भूत होता है। शब्दकोषों के अनुसार इसके अनेक अर्थ हैं जैसे-आत्मा, जीव, परमात्मा, ब्रह्म, प्रकृति, बुद्धि आदि। अमरकोषानुसार आत्मा शब्द के अर्थ-यत्न, धैर्य बुद्धि, स्वभाव, ब्रह्म, शरीरज्ञानी पुरुष आदि। आत्मा शब्द का धातुगत अर्थ तो जीव, आत्मा, मन और बुद्धि है, पर धीरे-धीरे यह शब्द विकास को प्राप्त होता हुआ और अनेक अर्थो में प्रचलित हुआ। ऋग्वेद के आङ्गल विद्वान् मैक्समूलर के मत में ब्रह्म तो बाह्य जगत् का चरम स्रोत है, जबकि आत्मा मनुष्य की आभ्यन्तरस्थ चेतना है। शङ्कराचार्य जी के मतानुसार आत्मा सत्ताजगत् के सभी पदार्थों में विद्यमान है क्योंकि वह सभी को आत्मस्वरूप में विलीन करती है। कुछ पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार आत्मा सभी प्राणियों का जीवनाधार और जीवनतत्त्व का आधार है। यह मानव के रथरूप में विद्यमान है, इसकी वास्तविकता शरीर से भिन्न है

अर्थात् शरीर ही आत्मा नहीं है। वस्तुतः आत्मा चेतनता की भी चेतनता है क्योंकि यह ईश्वर का अंश है। आत्मा का शरीरनाश होने पर भी क्षय नहीं होता। शरीर और आत्मा का विशिष्ट सम्बन्ध होता है। आत्मा तो शरीर में रहती है। आत्मा अमर है और शरीर विनाशी है। आत्मा इस भौतिकशरीर में कदाचित् अन्नमय शरीर प्राप्त करके कभी निम्नभाग में और कभी ऊर्ध्वभाग में रहती है। शरीर तो सभी को दृष्टिगोचर होता है, परन्तु जीवात्मा कभी दिखाई नहीं देती। (ऋक् १. १६४. ३८) ऋग्वेद में कहा गया है कि जीवात्मा शरीर में अनेक मार्गों से आता है और शरीर से पृथक् भी होता है। वह अविनाशी और इन्द्रियों का संरक्षक भी होता है। आत्मा शरीर के साथ भी रहता है और शरीर त्याग के बाद भी उसकी सत्ता होती है, वह इस संसार में बार-बार आता है। (ऋक् १. १७७.३) ऋग्वेद में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में अनेकों मन्त्र मिलते हैं।

सृष्टि-उत्पत्ति–सृष्टि रचना के विषय में सभी विद्वान्, बुद्धिजीवी एवं वैज्ञानिक प्रायः सोचते हैं कि इस सृष्टि का रचनाकार कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर और समाधान प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है। वर्तमान काल में ही नहीं अपितु वैदिककाल में भी इस विषय पर विचार किया जाता रहा है। ऋग्वेद के एक मन्त्रानुसार कुछ प्रश्न किए गए हैं। जैसे-कौन पुरुष वास्तविक रूप से जानता है ? कौन कह सकता है कि यह सृष्टि कैसे बनी ? देवता भी सृष्टि रचना के बाद ही उत्पन्न हुए अतः वे भी अपने जन्म के पूर्व की बातें नहीं बता सकते। अतः कौन जानता है कि क्यों इस संसार की रचना हुई ? इस मन्त्र द्वारा स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि भी इस सृष्टिकर्त्ता को जानने के इच्छुक थे। इसीलिये ऋषियों ने सृष्टि रचना के विषय में ऐसे प्रश्न किए। आधुनिक वैज्ञानिक भी इसी प्रकार के प्रश्नों में उलझे हैं। समाधान उनके ज्ञान से कोसों दूर है।

ऋग्वेद में सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में नासदीयसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त और पुरुषसूक्त प्रसिद्ध हैं। नासदीयसूक्त (10-129) में सृष्टि उत्पत्ति से पहले की अवस्था का वर्णन करके उसकी रचना का क्रम बताया गया है। उस समय न

सत् था, न असत् था। न लोक थे, न आकाश था, न गति थी, न स्थान था, न जन्म था, न मृत्यु थी और न ही अमृत था। न दिन था, न रात थी। वही एकमात्र परमेष्ठी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अन्तश्चेतना के साथ निर्वात अवस्था में शान्तरुप में वर्तमान था। उसमें इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ और सृष्टि का बीज उत्पन्न हुआ। सृष्टिकर्त्ता स्वयं कहाँ से उत्पन्न हुआ? यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई? देवता सृष्टि से पहले हुए या बाद में यह कौन जानता है? यह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही उस सृष्टि के अध्यक्ष हैं उन्हीं को जानना चाहिए। नासदीयसूक्त में सृष्टिरचना के विषय में संकेत तो प्राप्त होते हैं पर बाद में इसमें कहा गया है कि सृष्टि प्रक्रिया को वास्तविकरूप से कोई नहीं जानता, क्योंकि सभी प्राणी तो सृष्टि निर्माण के बाद ही उत्पन्न हुए हैं। इस रहस्य को क्षुद्र प्राणी कैसे जान सकते हैं। सृष्टि निर्माण प्रक्रिया को देखने वाला तो कोई प्राणी नहीं है, परन्तु इस विषय में विचारक केवल अनुमान कर सकते हैं। सृष्टि निर्माण प्रक्रिया को तो केवल वही जान सकते हैं, जो सृष्टि रचना से पूर्व विद्यमान थे। यद्यपि नासदीय सूक्त में सृष्टिरचना के विषय में अस्पष्ट ही संकेत हैं, फिर भी हमें उन्हें स्पष्ट ही कहना चाहिए, क्योंकि ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। नासदीयसूक्त में सारतत्त्व यह है कि आरम्भ में सर्वत्र अन्धकार था तब यह सृष्टि स्वकारण रूप में सत्त्व, रज और तमरूपी परमाणुओं में लीन थी। असत् कुछ नहीं था कुछ चेतनता अपने सामर्थ्य से उस समय भी विद्यमान थी उसी की कामना (इच्छा) से यह सृष्टि बनी। अर्थात् चेतन तत्त्व से ही यह सृष्टि उत्पन्न हुई। हिरण्यगर्भसूक्त (10-121) में भी सृष्टिरचना का वर्णन है। इसके अनुसार सबसे पहले यह हिरण्यगर्भ परमात्मा ही थे। यह उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों के स्वामी थे। उन्होंने पृथ्वीलोक और द्युलोक को धारण किया हुआ है। (ऋक् १.१२१. १) वही आत्मा का आविर्भाव करने वाले तथा मृत्यु को देने वाले हैं। सभी देवता उसी की उपासना करते हैं। सर्वत्र उन्हीं का शासन है उन्हीं की छत्रछाया में दिव्यलोक़ और मृत्युलोक विद्यमान हैं। (ऋक् १०. १२१. २) एक मन्त्र में हिरण्यगर्भ राजा के रूप में प्राणियों का अधिष्ठाता है। वही अपनी महिमा से इस संसरणशील संसार को गतिशील बनाते हैं। इस दृश्यमान् जगत् में द्विपाद, चतुष्पाद, गो, अश्वादि प्राणियों का स्वामी भी

हिरण्यगर्भ ही है। (ऋक् १०. १२१. ३-१०) इस सूक्त की सृष्टि प्रक्रिया विवरण से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम हिरण्यगर्भनामक परमात्मा ही थे। यही सभी लोकों के स्वामी हैं सभी देवता इन्हीं की उपासना करते हैं। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त (10-90) में पुरुषरूप परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने के साथ-साथ सृष्टि-उत्पत्ति के रूप को भी बताया गया है। जो कुछ वर्तमान में है, भूत में था और भविष्य में होगा वह पुरुष ही है। उस पुरुष से विराट् और उससे अधिपुरुष की उत्पत्ति हुई। उसी से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई। वही पुरुष प्राणियों के लिए भोग्य पदार्थों का आयोजन करता है, इसी कारण वह पुरुष इस दृश्यमान संसाररूपी अवस्था को प्राप्त होता है और विराट् होता है। ब्रह्माण्ड देह के सहारे जीवात्मारूप में उत्पन्न हुआ। इसी विकास से वह जीवात्मा मनुष्य, पशु-पक्षी हुए और चेतनता का प्रादुर्भाव हुआ और सृष्टि हुई। इसी पुरुष के मन से चन्द्रमा, चक्षुओं से सूर्य मुख से अग्नि और प्राणों से वायु की उत्पत्ति हुई, नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से स्वर्ग, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएँ उत्पन्न हुई। ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि के विकास क्रम की विस्तृत तथा विशद व्याख्या भारतीय दर्शनों में की गयी है। **मृत्यु और पुनर्जन्म**-ऋग्वेद में मृत्यु के बाद जीव की गति तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। मृत्यु के बाद जीव के मार्ग का निदर्शन यमराज करते हैं। यम जीव को उसी मार्ग से ले जाते है जहाँ से उनके पूर्वज गए थे। यह स्थान आनन्दों से परिपूर्ण है। यथा-

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥(ऋक् १०.१४.७)

अर्थात् - जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गए हैं। पूर्वकाल में बने हुए मार्गों से शीघ्र जाओ और जाकर अन्न से तृप्त होने वाले दीप्तिमान् शरीर वाले दोनों यम और वरुण देवों को देखो। ऋग्वेद के इन्हीं मन्त्रों के आधार पर पुराणों में पितृलोक की कल्पना की गयी जो चन्द्रमा के उत्तरी ध्रुव स्थान पर स्थित है। यम को मृत्यु का देवता कहा गया है। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म होता है ऋग्वेद में इसकी पुष्टि भी की गयी है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्पष्ट

करने हेतु यह ऋग्वेदीय मन्त्र उद्धृत कर रहे हैं-

असु नीते पुनस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृलया न स्वस्ति॥ (१०.५९. ६)

अर्थात् वह परमेश्वर पुनः प्राणों की प्रतिष्ठा करते हैं पुनः चक्षु आदि इन्द्रियों को, प्राणों को और भोगों को धारण कराते हैं। हे परमेश्वर हम आपकी कृपा से उदय होते हुए सूर्य को देखते रहें। सब को मान देने वाले हे परमेश्वर आप हमें सुखी रखिए और हमारा कल्याण कीजिए। ऋग्वेद के परवर्ती साहित्य में अन्य वेदों में और वैदिक साहित्य में पुनर्जन्म का विवेचन विस्तार से किया गया है। **मोक्ष** ऋग्वेद में मोक्ष को सर्वाधिक आनन्द का हेतु कहा गया है। यह सत्य, तप और आध्यात्मिक ज्ञान (तत्त्वज्ञान) से प्राप्त होता है। ज्ञानरूपी ज्योति से मोक्ष के मार्ग के सभी विघ्न दूर होते हैं। ऋग्वेद में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मुझे उस परम मोक्षलोक में स्थान दो जहाँ निरन्तर ज्योति और परमानन्द होता है। (ऋक् १. ११३. ७) ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में मोक्ष की कामना की गयी है-

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।(ऋक् १०.६२.१.)

अर्थात् जिन्होंने यज्ञों द्वारा और दान के द्वारा मुक्ति प्राप्त की है। वे इन्द्र की मित्रता को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं उनका कल्याण हो गया है। उनके प्राण उनकी बुद्धियों को बढ़ाने वाले होते हैं। उस मोक्ष को प्राप्त मनुष्य को पूर्वमुक्त जीव अपने पास रख लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि परलोक और पुनर्जन्म का माध्यम मृत्यु है। शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार क्रमशः स्वर्ग और नरक की प्राप्ति होती है। अतः सद्गति प्राप्ति के लिए कर्मसिद्धान्त भी आवश्यक है।

—o—

वेदाङ्ग छः हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। **शिक्षा** – स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा। वैदिक वाक्यों के स्पष्टोच्चारण हेतु इसका निर्माण हुआ। **कल्प** – इसमें वैदिक कर्मकाण्ड (यज्ञादि) के सम्पादन हेतु विधि एवं नियमों का प्रतिपादन होता है। **व्याकरण** – इसके अन्तर्गत सन्धि, समास, धातुओं एवं शब्दों की रचना, उपसर्ग, प्रत्यय आदि के नियमों एवं प्रयोगों का प्रतिपादन होता है। अष्टाध्यायी प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है। **निरुक्त – निःशेषमुक्तं निरुक्तम्।** वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति एवं निर्वचन बताने वाला शास्त्र निरुक्त कहलाता है। क्लिष्ट वैदिक शब्दों के संकलन ''निघण्टु'' की व्याख्या हेतु यास्क ने निरुक्त की रचना की जो भाषाशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। **छन्द** – वैदिक साहित्य में गायत्री, त्रिष्टुप् उष्णिक्, जगती, बृहती आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। पिङ्गलाचार्य का ''छन्दःशास्त्रम्'' छन्द का आद्य ग्रन्थ है। **ज्योतिष** – इसमें ग्रह-नक्षत्रादि की गणना कर पञ्चाङ्गादि का निर्माण किया जाता हैं। इसके आद्य आचार्य लगध मुनि हैं। ऋग्वेद संहिता के दो तरह के विभाग किये गये हैं- (१) अष्टकक्रम और (२) मण्डलक्रम।

(क) अष्टक क्रमानुसार सम्पूर्ण 'ऋग्वेद' को आठ अष्टकों में बाँटा गया है। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभागों का नाम वर्ग है, जो सम्भवतः अध्ययन के सौकर्य के लिए किया गया है। औसत दर्जे से पाँच मन्त्रों का एक वर्ग होता है, किन्तु एक मन्त्र से लेकर नव मन्त्रों तक के भी वर्ग उपलब्ध होते हैं। समस्त वर्गों की संख्या २००६ है। इस तरह ऋग्वेद में ८ अष्टक, ६४ अध्याय, १०१७ सूक्त, तथा २००६ वर्ग हैं।

(ख) मण्डलक्रम – ऋग्वेद का यह विभाग अधिक महत्त्वशाली, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक माना जाता है। मण्डल क्रमानुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद को १० मण्डलों में विभक्त किया गया है। इसमें ८५ अनुवाक् हैं तथा इन अनुवाकों में १०२७० ऋचाएँ तथा १,५३, ८२६ शब्द, शब्दों के अक्षरों की संख्या ४,३२००० है।

ऋग्वेद के ऋषि :- ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त के अपने देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग हैं-''**अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवत्वं योगमेव च। योऽध्यापयेत्**

वैदिक-साहित्य

वेद के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को ग्रहण किया जाता है। इन चारों वेदों का एक-एक उपवेद भी है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, सामवेद का उपवेद गन्धर्ववेद है जो संगीत से संबद्ध है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है जो युद्ध कलाओं का वर्णन करता है और अथर्ववेद का उपवेद शिल्पवेद या अर्थवेद है।

ब्राह्मणग्रन्थ – यज्ञों एवं कर्मकाण्ड का विधान एवं इनकी क्रियाओं के ज्ञान के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई इसे 'ब्राह्मण साहित्य' भी कहते हैं। ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ है-यज्ञ के विषयों का प्रतिपादन करने वाला। ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक संहिताओं की गद्यात्मक व्याख्या है। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद से सम्बन्धित ब्राह्मण-कौषीतकि एवं ऐतरेय हैं।

आरण्यक – आरण्यकों में रहस्यात्मक एवं दार्शनिक विषयों का वर्णन होता है यथा आत्मा, मृत्यु, जीवन, परमात्मा आदि। इन्हें आरण्यक इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन ग्रन्थों को वन में पढा जाता है। ऋग्वेद से सम्बन्धित आरण्यक-ऐतरेय एवं कौषीतकि हैं।

उपनिषद् – इसका शाब्दिक अर्थ है उप-समीप, निषद्-बैठना, जो ज्ञान के समीप बैठाता है, वह उपनिषद् है। अर्थात् ब्रह्म विद्या की प्राप्ति हेतु गुरु के समीप बैठना। उपनिषद् का ज्ञान गुरु के सहयोग से ही प्राप्त होता है। सद् धातु के तीन अन्य अर्थ भी हैं – नष्ट होना, प्राप्त होना तथा शिथिल करना। उपनिषदों के पठन-पाठन से अज्ञान नष्ट हो जाता हैं, ब्रह्म की प्राप्ति होती है तथा आवागमन के दुःख उपनिषद् से शिथिल हो जाते हैं। अतः इसलिए भी इनको कहा गया है। ब्रह्म विषयक होने से इसे ब्रह्मविद्या भी कहा जाता है। उपनिषदों में आत्मा परमात्मा एवं संसार के सन्दर्भ में प्रचलित दार्शनिक विचारों का संग्रह मिलता है, चूँकि उंपनिषद् वैदिक सहित्य का अन्तिम भाग हैं, इसलिए इन्हें वेदान्त भी कहते हैं।

वेदाङ्ग – वेदों के यथार्थज्ञान के लिए वेदाङ्गों की सहायता अनिवार्य है

वेदाङ्ग छः हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। **शिक्षा** – स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा। वैदिक वाक्यों के स्पष्टोच्चारण हेतु इसका निर्माण हुआ। **कल्प** – इसमें वैदिक कर्मकाण्ड (यज्ञादि) के सम्पादन हेतु विधि एवं नियमों का प्रतिपादन होता है। **व्याकरण** – इसके अन्तर्गत सन्धि, समास, धातुओं एवं शब्दों की रचना, उपसर्ग, प्रत्यय आदि के नियमों एवं प्रयोगों का प्रतिपादन होता है। अष्टाध्यायी प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है। **निरुक्त – निःशेषमुक्तं निरुक्तम्।** वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति एवं निर्वचन बताने वाला शास्त्र निरुक्त कहलाता है। क्लिष्ट वैदिक शब्दों के संकलन ''निघण्टु'' की व्याख्या हेतु यास्क ने निरुक्त की रचना की जो भाषाशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। **छन्द** – वैदिक साहित्य में गायत्री, त्रिष्टुप् उष्णिक्, जगती, बृहती आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। पिङ्गलाचार्य का ''छन्दःशास्त्रम्'' छन्द का आद्य ग्रन्थ है। **ज्योतिष** – इसमें ग्रह–नक्षत्रादि की गणना कर पञ्चाङ्गादि का निर्माण किया जाता हैं। इसके आद्य आचार्य लगध मुनि हैं। ऋग्वेद संहिता के दो तरह के विभाग किये गये हैं– (१) अष्टकक्रम और (२) मण्डलक्रम।

(क) अष्टक क्रमानुसार सम्पूर्ण 'ऋग्वेद' को आठ अष्टकों में बाँटा गया है। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभागों का नाम वर्ग है, जो सम्भवतः अध्ययन के सौकर्य के लिए किया गया है। औसत दर्जे से पाँच मन्त्रों का एक वर्ग होता है, किन्तु एक मन्त्र से लेकर नव मन्त्रों तक के भी वर्ग उपलब्ध होते हैं। समस्त वर्गों की संख्या २००६ है। इस तरह ऋग्वेद में ८ अष्टक, ६४ अध्याय, १०१७ सूक्त, तथा २००६ वर्ग हैं।

(ख) मण्डलक्रम – ऋग्वेद का यह विभाग अधिक महत्त्वशाली, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक माना जाता है। मण्डल क्रमानुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद को १० मण्डलों में विभक्त किया गया है। इसमें ८५ अनुवाक् हैं तथा इन अनुवाकों में १०२७० ऋचाएँ तथा १,५३, ८२६ शब्द, शब्दों के अक्षरों की संख्या ४,३२००० है।

ऋग्वेद के ऋषि :- ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त के अपने देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग हैं–''**अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवत्वं योगमेव च। योऽध्यापयेत्**

जपेद् वापि पापीयान् जायते तु सः॥''

अर्थात् – ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग को जाने बिना जो मन्त्र पढ़ता या जपता है, वह पापी है। शौनक की 'अनुक्रमणी' में कहा गया है कि– 'जो इन चारों का ज्ञान प्राप्त किये बिना वेद का अध्ययनाध्यापन, हवन, यजन, याजनादि करते हैं, उनका सब कुछ निष्फल हो जाता है। और जो ऋष्यादि को जानकर अध्ययनादि करते हैं, उनका सब कुछ फलप्रद होता है। ऋष्यादि के ज्ञान के साथ जो वेदार्थ भी जानते हैं, उनको अतिशय फल प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य और व्यास ने भी ऐसा ही लिखा है। आधुनिक आलोचकों के मतानुसार ये ऋषि मन्त्रों के रचयिता थे। कुछ ऋषियों के नामों को कुटुम्बवाची भी मानते हैं। यास्क ने ऋषि का अर्थ किया है– **''ऋषिर्दर्शनात्''**

प्रथम मण्डल के ऋषि शतार्चिन व अनेक ऋषि। द्वितीय मण्डल के ऋषि गृत्समद। तृतीय मण्डल के विश्वामित्र। चतुर्थ मण्डल के वामदेव। पञ्चम मण्डल के अत्रि। षष्ठ मण्डल के भारद्वाज। सप्तम मण्डल के वसिष्ठ अष्टम मण्डल के काण्व एवं आंगिरस। नवम मण्डल के मधुच्छन्दा विश्वामित्र व अन्य। दशम मण्डल के भृगु व अनेक ऋषि हैं। ऋग्वेद में दश मण्डल हैं। अतः इसे दशतयी भी कहते हैं। ऋग्वैदिक सूक्तों के पुरुष रचयिताओं में गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ तथा स्त्री रचयिताओं में लोपामुद्रा, घोषा, शची, पौलोमी और काक्षावृत्ति प्रमुख हैं। प्रथम, नवम, एवं दशम मण्डल के सूक्तों के ऋषि एक नहीं हैं, अपितु ये अनेक ऋषियों की रचनाएँ हैं। नवम मण्डल को पवमान मण्डल भी कहते हैं। इसमें सोम विषयक सूक्त हैं।

ऋग्वैदिक देवता – ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का अपना एक देवता है। महर्षि यास्क का मत है कि **''देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा''** अर्थात् पदार्थों को देने वाले, लोकों में भ्रमण करने वाले, प्रकाशित होने वाले या भोज्यादि सारे पदार्थ देने वाले को देवता कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं– पृथिवी स्थानीय, अग्नि स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय। वायु, इन्द्रादि तथा द्युस्थानीय सूर्यादि देवताओं की कुल संख्या ऋग्वेद में ३३ है। 'बृहद्देवता' के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि–

''वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे-मन्त्रे प्रयत्नतः। दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥'' अर्थात् प्रयास करके प्रत्येक मन्त्र के देवता का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने वाला मनुष्य वेदार्थ और वेद रहस्य समझता है। **ऋग्वेद के छन्द** – ऋग्वेद छन्दोबद्ध रचना है। वैदिक मन्त्र छन्दों में हैं। छन्दों का ज्ञान प्राप्त किये बिना शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। 'जो मनुष्यों को प्रसन्न करे और यज्ञादि की रक्षा करें उसे छन्द कहा जाता है। महर्षि यास्क ने छन्द' 'छद्' धातु से माना है, जिसका अर्थ है- आवृत्त करना। छन्द ही वेदों के आवरण हैं, क्योंकि शब्दों को एक विशिष्ट आवरण में बाँधने वाले छन्द ही हैं। मुख्य छन्द २१ हैं। २४ अक्षर से लेकर १०४ अक्षर तक में ये छन्द आते हैं। छन्दों के प्रथम आचार्य पिङ्गल माने जाते हैं। जिन्होंने ''छन्दः सूत्रम्'' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ऋग्वेद में प्रायः सात छन्दों का उपयोग किया गया है। इनको मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। (क) तीन पादों वाले छन्द-गायत्री तथा उष्णिक्। (ख) चार पादों वाले छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती तथा जगती। (ग) पाँच पादों वाले छन्द-पंक्ति। छन्द दो प्रकार के होते हैं- (क) मात्रिक तथा (ख) वर्णिक। वेदों में वर्णिक छन्दों का ही बाहुल्य है-

छन्द नाम –	१म पाद	२य पाद	३तीय पाद	४र्थ पाद	५म पाद	वर्ण योग
१. गायत्री	८	८	८			= २४
२. उष्णिक्	८	८	१२			= २८
३. अनुष्टुप्	८	८	८	८		= ३२
४. बृहती	८	८	८	१२		= ३६
५. त्रिष्टुप्	११	११	११	११		= ४४
६. जगती	१२	१२	१२	१२		= ४८
७. पंक्ति	८	८	८	८	८	= ४०

विनियोग – जिस कार्य के लिए मन्त्र का प्रयोग होता है, उसे विनियोग

कहा जाता है। मन्त्र में अर्थान्तर और विषयान्तर होने पर भी विनियोग के द्वारा अन्य कार्य में उस मन्त्र को विनियुक्त किया जा सकता है। ऐसा पूर्वाचार्यों का मानना है। इससे ज्ञान होता है कि मन्त्रों पर शब्दार्थों से भी अधिक आधिपत्य विनियोग का है। यही कारण है कि अथर्ववेद की 'पैप्पलाद संहिता' के प्रथम मन्त्र "**शन्नो देवीरभिष्टये**" का अर्थ दिव्य-जल-परक होने पर भी इसका विनियोग 'शनिदेव' की पूजा-अर्चना में होता आ रहा है।

वेदों की स्वर प्रक्रिया-

जैसे मन्त्रार्थ के लिए और मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग आदि विषयों और ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग, कल्पसूत्र, इतिहास, पुराणादि का ज्ञान परमावश्यक है, वैसे ही मन्त्र-स्वर का ज्ञान भी नितान्त अत्यावश्यक है। इसीलिये "तैत्तिरीय उपनिषद्" में लिखा है कि- "**वर्णः स्वरः मात्रा बलमित्येतज्जिज्ञासितव्यम्**" अर्थात् वेदों के अर्थों को समझने के लिए वर्ण, स्वर, मात्रा, बल इन सब को जानना चाहिये। 'पाणिनीय शिक्षा' में तथा 'अष्टाध्यायी' में पाणिनि ने स्वरों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया है। स्वर में जरा सा व्यतिक्रम होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। स्वर-दोष से मन्त्र वज्र बनकर यजमान को मार डालता है। स्वर दोष से ही वृत्रासुर मारा गया। उदाहरण के लिए मन्त्र में था "**इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व**" आशय था कि 'इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर की वृद्धि हो'; 'इन्द्रशत्रु' में दो पद हैं- इन्द्र और शत्रु। अगर आदि पद को उदात्त माना जाये, तो इसका विग्रह बहुब्रीहि समास में '**इन्द्रः शत्रुः यस्य सः**' होगा। अर्थात् 'इन्द्र उसको मारने वाला' होगा। अगर अन्तिम पद को उदात्त माना जाये तो इसका विग्रह तत्पुरुष समास में "**इन्द्रस्य शत्रुः**" होगा। अर्थात् "इन्द्र को मारने वाला होगा। इससे इन्द्र की विजय हुई और वृत्रासुर की पराजय। फलतः स्वर-ज्ञान भी अत्यावश्यक है। स्वर तीन होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित।" '**उच्चैरुदात्तः**' (**ताल्वादिसभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञा स्यात्**) कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के ऊपर के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं। मुख के भीतर कण्ठ तालु आदि स्थान हैं। उन पर जब भीतर से प्रेरित वायु का आघात होता है। तब वर्णों की उत्पत्ति

होती है। वे स्थान सखण्ड हैं। उनके दो भाग ऊपर और नीचे के हैं। जब स्वर ऊपर के भाग से उत्पन्न होता है, तब वह कुछ ऊँचा सा मालूम पड़ता है, उसे उदात्त कहते हैं। और जब नीचे के भाग से उच्चरित होता है तो उसे अनुदात्त कहते हैं। यदि उदात्तता और अनुदात्तता दोनों धर्म एक ही स्वर में प्रतीत हों तो, उसे 'स्वरित' कहा जाता है।

'नीचैरनुदात्तः' (ताल्वादिषुसभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्त संज्ञःस्यात्) कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के नीचे के भाग से जिस अच् का उच्चारण होता है वह अनुदात्त होता है। **'समाहारः स्वरितः' (उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यत्र सोऽच्स्वरितसंज्ञः स्यात्)** उदात्तत्व और अनुदात्तत्व दोनों धर्मों का मेल जिस वर्ण में हो वह स्वरित होता है अर्थात् तालु आदि स्थानों के मध्यभाग से जिस अच् का उच्चारण होता है। उसे 'स्वरित' कहते हैं। **'अधोरेखयाऽनुदात्तः'** अक्षर के नीचे पड़ी रेखा से अनुदात्त (-) स्वर का निर्देश किया जाता है यथा - **अ॒ग्निमी॑ले पु॒रोहि॑तम्** (अ और पु अनुदात्त है) **'ऊर्ध्वरेखया स्वरितः'**-अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा से स्वरित (।) का निर्देश किया जाता है-ऊपर के उदाहरण में (मी और हि स्वरित है)

'स्वरितात् परोऽनङ्कित एकश्रुतिः' स्वरित से परे जिस या जिन अक्षरों पर कोई चिह्न न हो, उन्हें एकश्रुति (प्रचय) स्वर वाला समझना चाहिए यथा- **होता॑रं रत्न॒धात॑मम्।** यहाँ स्वरित 'ता' से परे 'रं' और 'र' दो अक्षरों पर ऊपर नीचे कोई चिह्न नहीं है। एवमेव स्वरित 'त' से परे 'म' पर कोई चिह्न नहीं है। अतः इस उदाहरण में 'रं-र-म' ये अक्षर एकश्रुति स्वर वाले हैं। Note- एकश्रुति सदा स्वरित के अनन्तर ही होती है और स्वरित के उत्तर भाग में अनुदात्त धर्म रहता है। अतः स्वरित से परे विहित एकश्रुति का उच्चारण अनुदात्तवत् होना चाहिए।

'अपूर्वोऽनुदात्तपूर्वो वाऽनङ्कित उदात्तः' जिससे पूर्व कोई स्वर न हो अथवा अनुदात्त पूर्व में हो, ऐसा चिह्न रहित अक्षर उदात्त होता है। यथा **'अपूर्व-अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रम्'** यहाँ सर्वादि में वर्तमान बिना स्वरचिह्न वाला 'अ' अक्षर उदात्त है। **अनुदात्तपूर्व** - अनुदात्त ग्ने॒ से अगला बिना चिह्न का

'यं' उदात्त है इसी प्रकार 'ज्ञ' और 'र' भी उदात्त हैं। **'उदात्तस्वरितपरा जात्यक्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहिताः कम्पन्ते।'** उदात्त और स्वरित परे रहने पर जात्य, क्षैप्र, प्रश्लेष और अभिनिहित स्वरित का उच्चारण कम्प से होता है।

'तत्र ह्रस्व ऊर्ध्वाधो रेखाविशिष्टेनैकाङ्केन' (कम्प से उच्चरित ह्रस्व स्वरित वर्ण से परे एक संख्या का निर्देश होता है और उसके ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न किया जाता है **'दीर्घोऽधोरेखयात्र्यङ्केनोर्ध्वाधोरेखाविशिष्टेन च'** – कम्प से उच्चरित दीर्घ स्वरित वर्ण के नीचे अनुदात्त का चिह्न और उसके आगे ३ संख्या के ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न होता है

समासस्वर और वाक्य स्वर– ब्राह्म॑ण॒ ग्रामं गच्छ – हे ब्राह्मण। गाँव को जा। **ब्रा॒ह्मण॒ ग्रामं ग॑च्छ** – ब्राह्मणों का जो ग्राम (निवास स्थान) है उसको जा। **ब्राह्मण ग्रामं गच्छ** – ब्राह्मणों के समुदाय को लक्ष्य करके जा अथवा ब्राह्मण स्वामिक ग्राम को जा। अनुदात्त के बाद के बिना चिह्न वाले स्वर सामान्यतया उदात्त हैं। स्वरित के बाद बिना चिह्न वाले स्वर 'प्रचय' हैं। क्रम सदा यही रहता है– अनुदात्त + उदात्त + स्वरित + प्रचय।

ooo

मण्डल प्रथम

१. अग्निसूक्त

मण्डल १ सूक्त १
ऋषि-विश्वामित्र देवता-अग्नि छन्द गायत्री

संहिता–पाठ

अ॒ग्निमी॑ले पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्। होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥१॥

अन्वय–पुरोहितम्, यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम्, अग्निं ईले।

शब्दार्थ–पुरोहितम्-स्वयं आगे बढ़कर यजमान की कामनाओं को पूरा करने वाले या लोगों का हित करने वाले, **यज्ञस्य देवम्**-यज्ञ के प्रकाशक या दानादि दिव्य गुणों से युक्त, ऋतु के अनुसार यज्ञ करने वाले, **होतारम्**-देवों को बुलाने वाले और **रत्नधातमम्**-रत्नों (श्रेष्ठ पदार्थों) को धारण करने वाले **अग्निं ईले**-अग्नि देवता की मैं विश्वामित्र स्तुति करता हूँ।

अनुवाद–स्वयं आगे बढ़कर यजमान की कामनाओं को पूरा करने वाले या लोगों का हित करने वाले, यज्ञ के प्रकाशक या दानादि दिव्य गुणों से युक्त, ऋतु के अनुसार यज्ञ करने वाले, देवताओं को बुलाने वाले और रत्नों को धारण करने वाले अग्निदेवता की, मैं विश्वामित्र स्तुति करता हूँ।

भावार्थ–सबका हित करने वाले यज्ञ के पुरोहित, यज्ञ के प्रकाशक, दीप्तिमान्, देवों को बुलाने वाले ऋत्विक् तथा रत्नधारी अग्नि देवता की मैं विश्वामित्र स्तुति करता हूँ। **टिप्पणी–पुरोहितं होतारं ऋत्विजं अग्निं ईले**-पुर अर्थात्-नगर का हित करने वाले, अग्र स्थान में सदा रहने वाले, कभी पीछे न रहने वाले, विद्वानों अथवा देवताओं को बुलाने वाले अग्रगण्य नेता की मैं विश्वामित्र प्रशंसा (स्तुति) करता हूँ। ऐसा नेता यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रशंसा का पात्र है। **यज्ञस्य देवः**-शुभ कर्म करने वाला, समाज के संगठन का संचालक। **अग्निः**-अग्रणी, नेता अग्नि के सदृश तेजस्वी।

व्याकरण–पुरोहितम्-पुरस्+धा+क्त 'धा' को 'हि' आदेश। **यज्ञस्य**-यज्+नङ्=यज्ञ, षष्ठी विभक्ति एकवचन। **रत्नधातमम्**-रत्नानां धाता-रत्न+धा+क्विप्=रत्नधा। तमप् प्रत्यय=रत्नधातमम्। ईले-'ईल्-स्तुतौ' धातु लट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

गायत्री छन्द में तीन पाद होते हैं। तथा प्रत्येक पाद के आठ वर्ण होते हैं।

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त। स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥२॥

अन्वयः-अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः नूतनैः उत सः इह देवान् आवक्षति।

शब्दार्थः–अग्निः=यह अग्नि, **पूर्वेभिः ऋषिभिः**= प्राचीन ऋषियों द्वारा, **ईड्यः**=प्रशंसित किया गया था, **नूतनैः उत**=नवीन ऋषियों द्वारा भी प्रशंसित हुआ है **सः**=वह अग्नि, **इह**=यहाँ (इस यज्ञ में) **देवान्**-देवताओं को, **आवक्षति**=ले आवे।

अनुवाद–यह अग्नि प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषियों के द्वारा प्रशंसित किया गया। वह अग्नि इस यज्ञ में देवताओं को ले आवे।

भावार्थ–यह अग्नि प्राचीनकाल से लेकर आज तक उसी प्रकार प्रशंसित होता चला आ रहा है। वही सब देवताओं को यज्ञ में बुलाता है।

मानव शरीर के प्रत्येक अङ्ग में एक एक देवता रहता है। ऐसे कुल ३३ देव इस शरीर में रहते हैं। वे देवता शरीर में तब तक रहते हैं जब तक शरीर में अग्नि (उष्णता रूप में) रहती है इस अग्नि (उष्णता) के इस शरीर से निकल जाने पर इन्द्रिय स्थानीय देव भी निकल जाते हैं। यह मृत्यु की अवस्था होती है। **टिप्पणी–इह देवान् आ वक्षति। (सः) अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः**– इस संगतिकरण कार्य में विद्वानों को बुलाकर संगठित करने वाला नेता (अग्रणी) प्राचीन और नवीन ऋषियों द्वारा सदैव प्रशंसित (स्तुत) होता रहा है।

व्याकरण– पूर्वेभिः=यह वैदिक रूप है, इसमें भिस् के स्थान में ऐस् आदेश नहीं हुआ है। लौकिक व्याकरण में अकारान्त पूर्व शब्द की तृतीया विभक्ति बहुवचन में पूर्वे होगा। **ईड्यः** = "ईड् स्तुतौ" अर्थात् स्तुति अर्थ में

प्रयुक्त ईड् धातु में यत् प्रत्यय करने पर ईड्+यत्=ईड्यः ऐसा रूप निष्पन्न होगा। **वक्षति** = "वह प्रापणे" धातु जो पहुँचाने या लाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। यहाँ लट् लकार का प्रयोग है। **ध्यातव्य** – यहाँ 'उत' शब्द का प्रयोग समुच्चयार्थ का द्योतक है। **सुभाषित – अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः**। संगठन करने वाले यह अग्रणी प्राचीन और नवीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होता है।

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नवत् पोष॑मे॒व दि॒वे दि॑वे। य॒शसं॑ वी॒र॑वत्तमम्॥३॥

अन्वयः अग्निना दिवेदिवे पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिम् एव अश्नवत्।

शब्दार्थ – अग्निना = (मनुष्य) अग्नि से, **दिवे दिवे**=प्रतिदिन, **पोषम्**=पोषण, **यशसं वीरवत्तमम्**=यश देने वाले और सर्वश्रेष्ठ वीरता देने वाले, **रयिम्**=धन को, **एव**=अवश्य **अश्नुते**=प्राप्त करता है।

अनुवाद = मनुष्य अग्नि से प्रतिदिन पोषण, यश देने वाले और अतिशय वीरता देने वाले धन को अवश्य प्राप्त करता है।

भावार्थ = अग्नि के माध्यम से ही पुष्टिकारक बलयुक्त और यशस्वी अन्न की प्राप्ति होती है। अग्नि से पोषण होता है, यश बढ़ता है और वीरता से धन की प्राप्ति होती है। **टिप्पणी = "अग्निना पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिम् अश्नुते" अर्थात्** अग्नि ही ऐसा नेता (अग्रणी) है जिसके कारण समाज पोषणकारक यश और वीरता से युक्त उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

व्याकरण = 1. **अश्नवत्**=अश् धातु, लेट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। 2. **पोषम्**=पुष् पुष्टौ धातु घञ् प्रत्यय पुष्+घञ्=पोष 3. **दिवे दिवे**–दिव शब्द सप्तमी विभक्ति एकवचन=दिवे "नित्यवीप्सयोः" से द्वित्व। 4. **यशसम्** = 'यशः अस्ति अस्य' इस अर्थ में अच् प्रत्यय। यशस्+अच्=यशस्। 5. **वीरवत्तमम्**–वि+ईर+अच्=वीर वीर+वतुप्=वीरवत् वीरवत्+तमप्=वीरवत्तम।

सुभाषित – "अग्निना दिवे दिवे पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं अश्नवत्"

इस अग्रणी (अग्नि) की सहायता से मनुष्य प्रतिदिन पुष्टिकारक यशस्वी और वीरता से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है।

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वत॑ः परि॒भूरसि॑। स इद् दे॒वेषु॑ गच्छति॥ ४॥

अन्वय – (हे) अग्ने यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि। सः इत् देवेषु गच्छति।

शब्दार्थ – (हे) अग्ने! =हे अग्निदेव। (आप) **यम्**=जिस, **अध्वरं यज्ञं**=हिंसा से रहित यज्ञ को, **विश्वतः** =सब ओर से या सभी दिशाओं से, **परिभूः असि**=प्राप्त कर रहे हो, **स इत्**=वही यज्ञ, **देवेषु**=देवताओं को , **गच्छति** = प्राप्त होता है।

अनुवाद – हे अग्निदेव! आप जिस हिंसारहित यज्ञ को सभी दिशाओं से प्राप्त कर रहे हैं। वही यज्ञ देवताओं को प्राप्त होता है।

भावार्थ – जिस हिंसा से रहित यज्ञ में अग्नि की पूजा होती है, वही देवताओं के अनुकूल यज्ञ होता है। अर्थात्-अग्नि के माध्यम से देवता हव्य (देवताओं का भोज्य पदार्थ) ग्रहण करते हैं। **टिप्पणी** – परिभूः का अर्थ शत्रु का पराभव करना अर्थात् उस पर विजय प्राप्त करना भी होता है।

व्याकरण - **अध्वर**–'ध्वर हिंसायां' तत्प्रतिषेधो **अध्वरः** अर्थात् हिंसारहित। न ध्वरः अध्वरः यह भी हो सकता है। **विश्वत :**– विश्व+तसिल् **गच्छति**=गम्लृ गतौ, लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **सुभाषित**= "अग्ने अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि" हे अग्रणी! आप शत्रु का पराभव करके अहिंसामय शुभकर्म को सफल बनाते हैं।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः। दे॒वो दे॒वेभि॒राग॑मत्॥५॥

अन्वय– होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः देवः अग्निः देवेभिः आगमत्।

शब्दार्थ – होता = देवों को बुलाने वाला यज्ञ निष्पादक या ऋग्वेद का आचार्य। **कविक्रतुः** = ज्ञानियों की कर्मशक्ति का प्रेरक। **सत्यः** = सत्य परायण या मिथ्या से रहित। **चित्रश्रवस्तमः**–अतिशय कीर्ति से युक्त, **देवःअग्निः** = अग्निदेव। **देवेभिः आगमत्**-देवताओं के साथ इस यज्ञ में आया है।

अनुवाद–देवों को बुलाने वाला, यज्ञ निष्पादक, ज्ञानियों की कर्मशक्ति का प्रेरक, सत्यपरायण, अतिशय कीर्ति से युक्त यह तेजस्वी अग्नि, देवताओं के साथ इस यज्ञ में आया है।

भावार्थ–त्रिकालज्ञ, विद्वान्, यज्ञशील, सत्यस्वरूप तथा विविध अन्नादि से युक्त यह अग्नि देवताओं के साथ इस यज्ञ में आया है।

व्याकरण–1. कविक्रतुः–कविः क्रतुः यस्य सः कविक्रतुः। बहुव्रीहि समास। अथवा कविश्चासौ क्रतुः। कर्मधारय समास। **2. चित्रश्रवस्तमः**–श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः। चित्रं श्रवः यस्य स चित्रश्रवः। चित्रश्रवस्+तमप्=चित्रश्रवस्तमः। **3. सत्यः**–सत्सु साधु अर्थ में निपातन होने से सत्य शब्द सिद्ध होता है।

यद॒ङ्ग दा॒शु॒षे त्वम॑ग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑। तवेत् तत् स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥६ ॥

अन्वय – अङ्ग अग्ने! यत् त्वम् दाशुषे भद्रं करिष्यसि, अङ्गिरः तव तत् सत्यम् इत्॥

शब्दार्थ – **(हे) अङ्ग अग्ने**! हे प्रिय अग्ने! **यत् त्वं**=जो तुम, **दाशुषे** = दानशील का, **भद्रं करिष्यसि**=कल्याण करता है। **अङ्गिरः** = अङ्गों में रमण करने वाला या अङ्गाररूपी, **तव तत्**=वह तेरा (कर्म), **सत्यम् इत्** = निस्सन्देह एक सत्य कर्म है।

अनुवाद – हे प्रिय अग्ने! जो तू दानशील लोगों का कल्याण करता है। अङ्गों में रमने वाले अग्ने अथवा अङ्गिरा ऋषि को जन्म देने वाले, अग्नि देवता! वह तेरा कर्म निस्सन्देह एक सत्य कर्म है।

भावार्थ – यह अग्निदेव केवल दान देने वाले व्यक्ति का ही कल्याण करते हैं, कृपण व्यक्ति का नहीं। यह उसका एक अटल नियम है।

टिप्पणी – दाशुषे–यह शब्द हवि का दान देने वाले यजमान के लिए प्रयुक्त हुआ है। **अङ्गिरः**– इस शब्द के ३ अर्थ हैं– 1. अङ्गों में रमने वाला जिससे शरीर में गर्मी रहती है। 2. अङ्गाररूपी 3. अङ्गिरा मुनि को जन्म देने वाले, **अग्निःदाशुषे भद्रं करिष्यति**–यह अग्नि दानशील व्यक्ति का कल्याणं करता है।

व्याकरण– 1. दाशुषे – 'दाशृ दाने' धातु से 'क्वसु' प्रत्यय। दाशृ+क्वसु=दाशुषः। दाशुषे=चतुर्थी विभक्ति एकवचन। 2.**अङ्गिरः** –'अगि गतौ' धातु से औणादिक इरच् प्रत्यय करने पर अङ्गिरः सिद्ध होता है। अङ्गिरा अङ्गारा इति यास्कः। **''येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्निति, तस्मादङ्गिरो नामकमुनिकारणत्वादङ्गाररूपस्याग्नेऽङ्गिरस्त्वम् (ऐतरेयब्राह्मणम्।) विशेष**

– जिस प्रकार गायत्री मन्त्र में वरेण्यं के स्थान में वरेणियं पढ़ा जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी त्वं के स्थान में तुवम् पढ़ना चाहिए। इससे गायत्री छन्द के पूरे २४ अक्षर आएँगे। **सुभाषित–** "अग्ने! दाशुषे भद्रं करिष्यसि।" हे अग्ने! आप दान देने वाले का कल्याण करते हैं।

उप॑ त्वाग्ने दि॒वे दि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि॥ ७॥

अन्वय – (हे) अग्ने! वयम् दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमः भरन्तः उप त्वा आ इमसि।

शब्दार्थ – (हे) अग्ने! = हे अग्नि देव! **वयम्**=हम (यज्ञकर्ता), **दिवे दिवे**=प्रतिदिन, **दोषावस्तः**=दिन रात, **धिया** = उत्तम बुद्धिपूर्वक, **नमः भरन्तः** = नमस्कार करते हुए, **उप त्वा** = तुम्हारे समीप, **एमसि** = आते हैं।

अनुवाद – हे अग्ने! हम यज्ञकर्ता प्रतिदिन और दिनरात उत्तम बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए तुम्हारे पास आते हैं।

भावार्थ – प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धिपूर्वक स्तुतियों से सदा उस प्रकाशक एवं तेजस्वी प्रभु (अग्नि) का गुणगान करना चाहिए। दिन रात उस प्रभु को प्रणाम करना चाहिए, उसका आदर करना चाहिए और अपने ऊपर उस प्रभु का अधिकार समझना चाहिए।

व्याकरण– 1. दोषावस्तः=दोषा च वस्तः च दोषावस्तम्। समाहार द्वन्द्व समास, दोषा=दिन, वस्तः रात्रि। **2. भरन्तः** = भृ धातु शतृ प्रत्यय भृ+शतृ=भरत्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **3. इमसि** – "इण् गतौ" धातु से लट् लकार उत्तम पुरुष, बहुवचन। "इदन्तोमसि" इस सूत्र से 'मस्' में इकार होकर इमसि रूप सिद्ध हुआ।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम्। वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑॥ ८॥

अन्वयः– राजन्तम्, अध्वराणाम् गोपाम्, ऋतस्य दीदिविम्, स्वे दमे वर्धमानम्॥

शब्दार्थ – राजन्तम्–देदीप्यमान् या प्रकाशमान् होते हुए, **अध्वराणाम्** = हिंसारहित (यज्ञों के), **गोपाम्**=रक्षक, **ऋतस्य**=सत्य (कर्मफलों के),

दीदिविम् = पुनः पुनः प्रकाशित करने वाले, **स्वे**=अपने, **दमे**=घर में (यज्ञशाला में), **वर्धमानम्**=बढ़ने वाले अग्नि के पास हम नमस्कार करते हुए आते हैं।

अनुवादः- प्रकाशमान् होते हुए, हिंसारहित यज्ञों के रक्षक, सत्य कर्मफलों को बार-बार प्रकाशित करने वाले और अपने गृह यज्ञशाला में बढ़ने वाले अग्नि के समीप हम जाते हैं।

भावार्थ–यज्ञों की रक्षा करने वाले तेजस्वी तथा स्वयं की शक्ति से बढ़ने वाले अग्नि का हमें गुणगान करना चाहिए। **टिप्पणी**– **अध्वराणां राजा**- हिंसारहित, कुटिलता रहित शुभकर्मों का स्वामी।

व्याकरण– 1. **दीदिविम्**-दिव् धातु से कि प्रत्यय। यङ्लुगन्त प्रयोग। 2. **दमे**-दम इति गृहनाम (निघण्टु ३.४) दाम्यति दान्त उपशान्तो भवति अस्मिन् गृहस्थः संयमाभ्यासेन इति दमः=गृहम्। दमु उपशमे धातु से घञ् प्रत्यय करके दमः सिद्ध होता है।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवे, अग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥९॥

अन्वयः– हे अग्ने! सः त्वं नः सूनवे पिता इव सुउपअयन भव। नः स्वस्तये सचस्व।

शब्दार्थ – **(हे) अग्ने**=हे अग्ने, **सः**=पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न, **त्वं**=तुम, **नः**=हमारे लिए, **सूनवे**=पुत्र के लिए जिस प्रकार, **पितेव**=पिता की तरह, **सूपायनः**=सुप्राप्य एवं कल्याणकारी होता है उसी प्रकार, **नः**=हमारे, **स्वस्तये**=कल्याण के लिए आप हमारे, **सचस्व**=सहायक हों।

अनुवाद – पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न हे अग्निदेव! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए सुप्राप्य एवं कल्याणकारी होता है, उसी प्रकार तुम भी हमारे लिए सुप्राप्य एवं कल्याणकारी होते हुए हमारे संग रहो। अर्थात् हमारे सहायक हो कर रहो।

भावार्थ – जिस प्रकार पिता पुत्र का सहायक होता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी विद्वानों का प्रत्येक कार्य में सहायक होता है।

व्याकरण– 1. **सूपायनः** = सु+उपायन– सु+उप+अयनः – सु सुखेन सुकरं वा उपायनम् उपगमनं यस्य सः। बहुव्रीहिसमास। सु+उप+इ (इण् गतौ)+ ल्युट् (अन)। **2. सचस्व**–"षच् समवाये" धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। इस तिङन्त पद "सचस्व" का प्रयोग लौकिक व्याकरण में होता है। वेद में "ऋचि तू नू" सूत्र से दीर्घ होकर सचस्वा बनता है। **3. स्वस्तये**– सु+अस्तये सुभूतिरित्यर्थे स्वस्ति इति अनव्ययम्, विकारिनामपदं भूयसा प्रयुज्यते वेदे विविधविभक्त्यन्तम्। **सुभाषित**– "**अग्ने! सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व**" जिस प्रकार पिता पुत्र का कल्याण करता है उसी प्रकार हे अग्ने! आप भी हमारा कल्याण करें।

○○○

२. अग्निमारुतसूक्त

मण्डल १ **सूक्त १९**
ऋषिः -मेधातिथि देवता-अग्निमरुतश्च **छन्दः-गायत्री**

संहितापाठः

प्रति॒ त्यं चारु॑मध्व॒रं गो॑पी॒थाय॒ प्र हू॑यसे। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ १॥

अन्वय :– अग्ने! त्यम् चारुम् अध्वरम् प्रति गोपीथाय प्रहूयसे। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – **अग्ने!**= हे अग्नि देवता, **त्यं चारुम्** = उस सुन्दर, **अध्वरं प्रति**=हिंसारहित यज्ञ के प्रति, **गोपीथाय प्रहूयसे**=तुम्हें सोमरस का पान करने के लिए बुलाते हैं, **मरुद्भिः आगहि**=अतः तुम मरुद्गणों के साथ आओ।

अनुवाद = हे अग्ने! उस सुन्दर हिंसारहित यज्ञ के प्रति तुम्हें सोमरस का पान करने के लिए बुलाते हैं। अतः तुम मरुद्गणों के साथ यहाँ इस पावन यज्ञ में आओ।

भावार्थ – इस अग्निदेव के साथ ४९ मरुद्गण रहते हैं, जो सामर्थ्यशाली हैं। मेधातिथि काण्व अपने हिंसारहित यज्ञ में इन मरुद्गणों के साथ अग्नि को सोमरस पीने के लिए आमन्त्रित करते हैं।

व्याकरण–1. त्यम्=त्यत् सर्वनाम शब्द है और तत् शब्द का पर्यायवाची है। द्वितीया विभक्ति एकवचन। **2. चारुम्**=चरति चित्ते। 'चर गतौ' धातु से दृसनिजनिचरीत्यादि उणादि सूत्र से ञुण् प्रत्यय चर्+उ=चारु। **3. गोपीथाय**=गो+पा यहाँ पा रक्षणे धातु से "निशीथगोपीथावगथा" इत्यादि सूत्र से थक् प्रत्यय=गोपीथ। चतुर्थी विभक्ति एकवचन। 4. **आगहि**=आङ् उपसर्ग पूर्वक गम्लृगतौ धातु लोट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

न॒हि दे॒वो न मर्त्यो॑ म॒हस्तव॒ क्रतुं प॒रः। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥२॥

अन्वयः– अग्ने! नहि देवः न मर्त्यः महः तव क्रतुम् परः। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – अग्ने! = हे अग्नि देवता!, **नहि देवः**=ना ही कोई देव, **न मर्त्यः**=और न कोई मनुष्य ऐसा है जो, **महः**=महान् या महासामर्थ्ययुक्त, **तव क्रतुम्**=तुम्हारे यज्ञ से, **परः**=उत्कृष्ट हो। **अतः मरुद्भि आगहि**=आप मरुद्गणों के साथ इस पवित्र यज्ञ में आइए।

अनुवाद – हे अग्ने! न कोई देवता और ना ही कोई मनुष्य ऐसा है जो तुम्हारे महासामर्थ्ययुक्त यज्ञ से बढ़कर कुछ कर्म कर सकता हो। अतः तुम उन मरुद्गणों के साथ आओ।

भावार्थ – उस महासामर्थ्यशाली अग्नि से किसी भी देवता या मनुष्य की तुलना नहीं की जा सकती, अग्निदेव तो अतुल्य हैं। जो मनुष्य या देवता अग्नि का यजन करते हैं वे ही उत्कृष्ट हैं। अतः हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे मरुद्गणों के साथ हमारे यज्ञ में आवें।

व्याकरण–महः = षष्ठी एकवचन। लोक में महतः बनता है। **क्रतुः**= कृ+क्रतु (अतु) क्रतुः। **मर्त्यः** = मृत्युशब्द निपातनात् मर्त्य।

ये म॒हो रज॑सो विदुर्विश्वे॑ दे॒वासो॑ अद्रुहः। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥३॥

अन्वयः अग्ने! ये महः रजसः विदुः विश्वे देवासः अद्रुहः। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – अग्ने!=हे अग्नि देवता!, **ये**=जो (मरुद्गण), **महः**=महान्, **रजसः**=जल बरसाने के प्रकार को, **विदुः**=जानते हैं, **विश्वेदेवासः**=वे मरुद्गण

नित्य प्रकाशमान् हैं। **अद्रुहः** = द्रोह से रहित हैं। अतः, **मरुद्भि आगहि**=आप मरुद्गणों के साथ हमारे पावन यज्ञ में पधारिये।

अनुवाद – हे अग्ने! जो मरुद्गण महान् जलराशि के बरसाने के प्रकार को जानते हैं, वे सभी ४९ मरुद्गण नित्य प्रकाशमान् तथा द्रोह से रहित हैं। आप उन मरुद्गणों के साथ इस पावन यज्ञ में आओ।

भावार्थ – जो मरुद्गण इस संसरणशील संसार में उत्तम वर्षा करके सभी प्राणियों का कल्याण करते हैं, जो सर्वथा द्रोहरहित हैं। ऐसे मरुद्गणों के साथ हे अग्निदेव! आप इस हिंसारहित पावन यज्ञ में पधारिये।

टिप्पणी– महर्षि यास्क ने 'रजस्' शब्द का अर्थ "जल" और अन्तरिक्ष किया है – रजो रजते ज्योतिरज उच्यते उदकं रज उच्यते लोका रजांस्युच्यन्ते।

व्याकरण– **1. विश्वे**=विश् प्रवेशने धातु से क्वन् प्रत्यय=विश्व। प्रथमा विभक्ति बहुवचन। विश्व शब्द सर्वनाम है, अतः इसके रूप सर्व शब्द की तरह चलते हैं। **2. अद्रुहः** ="द्रुह जिघांसायाम्" धातु से क्विप् प्रत्यय प्रथमा विभक्ति बहुवचन=द्रुहः। न द्रुहः=अद्रुहः। नञ् तत्पुरुष समास। **3. देवासः**= देव शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन। वेद में देवाः और देवासः ये दोनों रूप बनते हैं। **4. विदुः** =विद् ज्ञाने धातु लट्लकार प्रथमपुरुष बहुवचन। **सुभाषित** – **"विश्वे देवासो अद्रुहः"**– सभी देवगण कभी भी किसी से द्रोह नहीं करते।

य उ॒ग्रा अ॒र्कमा॑नृ॒चुरना॑धृष्टास॒ ओज॑सा। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥४॥

अन्वयः अग्ने! ये उग्राः अर्कम् आनृचुः ओजसा अनाधृष्टासः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ–अग्ने!=हे अग्नि देवता! **ये**=जो मरुद्गण, **उग्राः**=प्रचण्ड, तीव्र, **अर्कम्**=जल को, **आनृचुः**=(वर्षा से) उत्पन्न करते हैं, **ओजसा**=बल से, **अनाधृष्टासः**=पराजित नहीं होते अर्थात् किसी से भी तिस्कृत नहीं होते। अतः आप उन मरुद्गणों के साथ हमारे पावन यज्ञ में आइए।

अनुवाद – हे अग्ने! जो मरुद्गण उग्र या शक्तिशाली होकर जल को वर्षा के द्वारा उत्पन्न करते हैं और बल से किसी से भी पराजित नहीं

होते, आप उन मरुद्गणों के साथ हमारे इस पावन यज्ञ में पधारने का कष्ट करें।

भावार्थ – मरुद्गण अपनी अपार शक्ति से विशाल जलसमूह वर्षा के द्वारा उत्पन्न करते हैं। उनके बल की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। वे तो सर्वथा अजेय हैं। ऐसे गुणों वाले मरुद्गणों के साथ हे अग्निदेव आप इस हिंसारहित यज्ञ में आइए। **टिप्पणी**– अर्क=जल। आपो वा अर्कः (शतपथ ब्रा०) **व्याकरण**– **1.उग्रा**=उत् उपसर्ग "गृ निगरणे" धातु से अथवा "गुरी उद्यमनें" धातु से निपातनात् उग्र शब्द बनता है। **2. आनृचुः** = "ऋच् स्तुतौ" धातु लिट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन। "आनृचुः" यह वैदिक प्रयोग है। लौकिक संस्कृत में आनर्चुः ऐसा रूप बनता है। **3. अनाघृष्टासः**=अन् उपसर्ग पूर्वक धृष् प्रहसने धातु से क्त प्रत्यय। अन+धृष+क्त=अधृष्ट। प्रथमा बहुवचन।

ये शु॒भ्राः घो॒रव॑र्पसः सुक्ष॒त्रासो॑ रि॒शाद॑सः। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ ५॥

अन्वयः– अग्ने! ये शुभ्राः घोरवर्पसः सुक्षत्रासः रिशादसः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थः– **अग्ने!**=हे अग्नि देवता। **ये**=जो मरुद्गण, **शुभ्राः**=गौरवर्ण वाले, अत्यन्त शोभित (होते हैं) **घोरवर्पसः**=विशाल शरीर वाले उग्ररूप धारण करने वाले हैं। **सुक्षत्रासः**=उत्तम पराक्रमी, **रिशादसः**=हिंसकों का नाश करने वाले हैं। उन मरुतों के साथ-साथ आप हमारे पावन यज्ञ में पधारिये।

अनुवाद – हे अग्ने! जो मरुद्गण गौरवर्ण वाले, विशाल शरीर वाले, उत्तम पराक्रमी और हिंसकों (शत्रुओं) का नाश करने वाले हैं। आप उन मरुद्गणों के साथ हमारे इस पावन यज्ञ में आइए।

भावार्थ – सभी मरुद्गण गौरवर्ण वाले, विशालकाय शरीर वाले और शूरवीरता में अद्वितीय हैं। ये शत्रु का नाश करने में भी बड़े प्रवीण हैं। इस प्रकार के गुणों से युक्त मरुद्गणों के साथ हे अग्निदेव आप इस यज्ञ में आइए।

व्याकरण–**1. शुभ्राः**=शोभन्ते या शुभ्रवर्णोपेताः अर्थ में 'शुभशोभार्थे' धातु से "स्फायिताञ्चि" सूत्र से उणादि रक् प्रत्यय होकर शुभ्र बनता है। **2. घोरवर्पसः**=घोरः वर्पः येषां ते-बहुव्रीहि समास "वृञ् वरणे" धातु से असुन् प्रत्यय तथा पुक् का आगम होकर वर्पसः रूप बनता है। यथा-वृञ्+असुन्

(अस्) पुकागम=वर्पस्। **3. सुक्षत्रासः** शोभनं क्षत्रं येषां ते। बहुव्रीहि समास। **4. रिशादसः**–''रिष हिंसायां'' धातु से रिशन्ति हिंसन्ति इति रिशाः। तानदन्तीति रिशादसः। यहाँ पर 'सार्वधातुभ्योऽसुन्' से असुन् प्रत्यय।

ये नाक॒स्याधि॑ रोच॒ने दि॒वि दे॒वास॒ आस॑ते। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ ६॥

अन्वयः अग्ने! ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ– अग्ने! = हे अग्नि देवता!, **ये देवासः**=जो मरुद्गण, **नाकस्य**=दुःखरहित सूर्यलोक के, **अधि**=ऊपर, **रोचने**=प्रकाशमान्, **दिवि**=द्युलोक में, **आसते**=रहते हैं या स्थित हैं। अतः **मरुद्भिः आगहि** = उनके साथ आप इस यज्ञ में आइए।

अनुवाद = हे अग्ने! जो मरुद्गण दुःखरहित सूर्यलोक के ऊपर प्रकाशमान् (देदीप्यमान्) द्युलोक में रहते हैं। आप उन मरुद्गणों के साथ इस पावन यज्ञ में आइए।

भावार्थ – जो मरुद्गण द्युलोक में सदैव सूर्य की तरह चमकते हैं। उन देदीप्यमान् कीर्ति से युक्त मरुद्गणों के साथ हे अग्निदेव! आप इस पवित्र यज्ञ में आइए।

व्याकरण– 1. नाकस्य=कं सुखम्। न सुखं यस्मिन् तत् अकम्। न अकं यत्र तत् नाकम्। यह शब्द स्वर्ग शब्द का पयार्यवाची है। षष्ठी विभक्ति एकवचन। **2. अधि**=ऊपर यह उपसर्ग का प्रतिरूपक निपात है **3. रोचने**=''रुच् दीप्तौ'' धातु से ''अनुदात्तेतश्च हलादेः'' से 'युच्' 'प्रत्यय' रुच्+युच् (अन्)=रोचन। सप्तमी विभक्ति एकवचन

य ई॒ङ्खय॑न्ति॒ पर्व॑ता॒न् ति॒रः स॑मु॒द्रम॑र्ण॒वम्। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ ७॥

अन्वयः– अग्ने! ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति अर्णवम् समुद्रम् तिरः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ– अग्ने = हे अग्ने। **ये** = जो मरुद्गण, **पर्वतान्** = पर्वत जैसे मेघों को, **ईङ्खयन्ति** = सञ्चालित करते हैं, **अर्णवं समुद्रम्** = जल से भरे

हुए समुद्र को, **तिरः** = तुच्छ मानते हैं। **मरुद्भिः आगहि** = आप उन मरुद्गणों के साथ इस पवित्र यज्ञ में आइए।

अनुवाद – हे अग्ने! जो मरुद्गण पर्वत जैसे विशाल मेघों को सञ्चालित करते हैं, तथा जल से भरे हुए समुद्र को तुच्छ मानते हैं। उन मरुद्गणों के साथ आप इस यज्ञ में आइए।

भावार्थ – ये मरुद्गण इतने शूरवीर हैं कि पर्वत की तरह फैले हुए मेघों को भी आसानी से सञ्चालित करते हैं और समुद्र को भी लाँघ जाते हैं। अर्थात् इतने उत्साही हैं कि उनके रास्ते में कोई भी नहीं टिक पाता। ऐसे ही राष्ट्र के सैनिक भी उत्साही होने चाहिए जो विघ्नों की चिन्ता न करते हुए आगे बढते जाएँ।

व्याकरण – **पर्वतान्** = पर्व शब्द पूरण अर्थ में 'तन्' प्रत्यय = पर्वत। द्वितीया, विभक्ति बहुवचन। **ईङ्खयन्ति** = णिजन्त 'ईखि गतौ' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन। **समुद्रम्** = सम् उपसर्ग पूर्वक 'उन्दी क्लेदने' धातु से 'स्फायितञ्चि' सूत्र से रक् प्रत्यय सम्+उन्द+रक्=समुद्र। द्वितीया विभक्ति एकवचन। तिरस् = इस सम्बन्ध वाचक अव्यय का कर्म समुद्र है।

आ ये त॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभि॑स्ति॒रः स॑मु॒द्रमोज॑सा। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ ८॥

अन्वयः- अग्ने! ये रश्मिभिः आतन्वन्ति ओजसा समुद्रम् तिरः मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ– **अग्ने** = हे अग्नि देवता! **ये** = जो मरुद्गण, **रश्मिभिः** = सूर्य की किरणों से (आकाश को) **आतन्वन्ति** = व्याप्त करते हैं। **ओजसा** = अपने बल से, **समुद्रम्** = समुद्र को, **तिरः** = तिरस्कृत करते हैं। **मरुद्भिआगहि** = आप उन मरुद्गणों के साथ इस पवित्र यज्ञ में आइए।

अनुवाद – हे अग्ने! जो मरुद्गण सूर्य की प्रखर किरणों से आकाश को व्याप्त करते हैं और अपने बल से समुद्र को भी तिरस्कृत करते हैं। उन मरुद्गणों के साथ आप इस यज्ञ में आइए।

भावार्थ - ये मरुद्गण अपने तीव्र प्रभाव के कारण सर्वत्र व्याप्त हैं। अर्थात् प्रत्येक स्थान पर बिना किसी रुकावट के विचरण करते हैं। ये इतने बलवान् हैं कि समुद्र को भी तुच्छ मानते हैं।

व्याकरण–आतन्वन्ति = आङ् उपसर्गपूर्वक 'तनु विस्तारे' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। **ओजसा** = ओजस् शब्द तृतीया एकवचन।

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑। म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि॥ ९॥

अन्वय – अग्ने पूर्वपीतये त्वा सोम्यम् मधु अभिसृजामि, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – अग्ने! = हे अग्नि देवता। **पूर्वपीतये त्वा** = तुम्हारे प्रथम रसपान के लिए भोजन से पूर्व पान के लिए, **सोम्यं मधु** = यह मधुर सोमरस, **अभिसृजामि** = मैं अर्पित करता हूँ। **मरुद्भिः आगहि** = आप मरुत्गणों के साथ इस पवित्र यज्ञ में पधारिए।

अनुवाद – हे अग्ने! तुम्हारे प्रथम रसपान के लिए यह मधुर सोमरस मैं अर्पित करता हूँ। आप मरुद्गणों के साथ मेरे यज्ञ में आओ।

भावार्थ – मेधातिथि काण्व अपने हिंसारहित यज्ञ में सोमरस का पान करने हेतु अग्निदेव को मरुद्गणों के साथ आमन्त्रित कर रहे हैं।

विशेष – ध्यातव्य है कि देवताओं का प्रिय पेयद्रव्य सोमरस है। यह सोमरस सोम लताओं और दुग्ध के मिश्रण से बनता है। यह सुरा (शराब) से सर्वथा भिन्न होता है।

व्याकरण – पूर्वपीतये = पूर्वश्चासौ पीतिश्चासौ = पूर्वपीतिः। पा + क्तिन् (यहाँ "स्त्रियां क्तिन्" से क्तिन् प्रत्यय हुआ।) पीति। चतुर्थी विभक्ति एकवचन। **सोम्यम्** = सोम शब्द से "सोमम् अर्हति" अर्थ में "अर्हति" इस सूत्र से यत् प्रत्यय सोम + यत् = सोम्य। **मधु** = 'मनु अवबोधने' धातु से 'फलिपाटिनमि' इत्यादि उणादि सूत्र से उ प्रत्यय तथा न को ध होकर मधु बनता है।

०००

३. वरुण सूक्त

मण्डल-१ **सूक्तसंख्या – २५**
ऋषिः-आजीगर्तिःशुनः शेप **देवता-वरुण** **छन्द = गायत्री**

संहिता-पाठः

यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ यथा॒ प्र दे॑व वरुण व्र॒तम्। मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि॥ १॥

अन्वयः – वरुण देव। यथा विशः ते यत् चित् हि व्रतम् द्यविद्यवि प्रमिनीमसि।

शब्दार्थः– **वरुण देव**! = हे वरुणदेव! **यथा विशः**– जैसे प्रजाजन, **ते यत् चित् हि** = तुम्हारे जो कुछ भी, **व्रतम्** = नियम हैं, **द्यविद्यवि** = हम प्रतिदिन, **प्रमिनीमसि** = उन नियमों का प्रमाद से उल्लंघन करते हैं।

अनुवाद – हे वरुणदेव! जैसे प्रजाजन तुम्हारे नियमों को करने में प्रमाद करते हैं उसी प्रकार हम भी प्रतिदिन आपके नियमों का प्रमाद से उल्लंघन करते हैं। हमारे द्वारा किये गये प्रमादरूपी त्रुटियों का परिमार्जन करके उन नियमों को पूर्ण कीजिये।

भावार्थ –हे वरुणदेव! जैसे सभी अन्य मानव सदा प्रमाद करते हैं वैसे हम भी प्रतिदिन अनेक प्रमाद करते हैं। अतः हमारे प्रत्येक प्रमाद के लिए आप क्रोधित होकर हमें दण्डित मत करें। हम पर सदैव दयादृष्टि बनाये रखें।

व्याकरण– **वरुण** = "वृञ् वरणे" धातु से उनन् प्रत्यय करके वृञ्+उनन्= वरुण बनता है। वृणोति सर्वाणि कार्याणि इति वरुणः। **मिनीमसि** = "मीञ् हिंसायाम्" धातु से लट्लकार उत्तमपुरुष बहुवचन। मी+श्ना+मसि।

मा नो॒॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ला॒नस्य॑ रीरधः। मा हृ॑णा॒नस्य म॒न्यवे॑ ।।२ ।।

अन्वयः– जिहीलानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः। हृणानस्य मन्यवे मा ॥

शब्दार्थ – जिहीलानस्य =(हे वरुणदेव!) आपका अनादर अपमान या उपेक्षा करने वाले का, **हत्नवे** = नाश करने के लिए, **वधाय** = वध के लिए उठाये गये शस्त्र के सामने, **न मा रीरधः** = हमें मत रखें, **हृणानस्य** = क्रोधित हुए आप हमें अपने, **मन्यवे मा** = क्रोध का पात्र मत बनाएँ।

अनुवाद – हे वरुणदेव! आपका अनादर करने वाले के नाश हेतु, वध के लिए उठाये गये शस्त्र के सामने हमें मत रखें। आप हमें अपने क्रोध का पात्र न बनाएँ।

भावार्थ – हे वरुणदेव! अपमान करने वालों के विनाश हेतु उठाये गए शस्त्र के सामने हमें मत रखें। क्रुद्ध अवस्था में आप हमें क्रोध का विषय न बनाएँ।

व्याकरण – वधाय = 'हन् हिंसागत्योः' धातु से अप् प्रत्यय हन् + अप् = वधा चतुर्थी विभक्ति एकवचन। **हत्नवे** – हन् + क्नु, हन् धातु के न के स्थान में निपातन से त = हत्नु। चतुर्थी विभक्ति एकवचन। **जिहीडानस्य** – 'हेड़ृ अनादरे' धातु से "लिटः कानज्वा" सूत्र से लिट् में कानच् प्रत्यय करके हेड् + कानच्, द्वित्वादि क्रिया करने के बाद 'जिहीडान' ऐसा रूप होगा। षष्ठी विभक्ति एकवचन। प्रातिशाख्यों के नियमानुसार 'ड' को ल् हुआ- जिहीलानस्य। **रीरध** – 'राध् संसिद्धौ' धातु से णिजन्त में लुङ्लकार मध्यमपुरुष एकवचन। **हृणानस्य** – 'हृणीङ् रोषणे लज्जायाञ्च' इस धातु से शानच् प्रत्यय होकर हृणान बना। षष्ठी विभक्ति एकवचन। **सुभाषित – 'जिहीलानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः'** अपना निरादर करने वाले का वध करने के लिए उठाए गए शस्त्र से हमारी हिंसा मत कीजिए।

वि मृ॑ळीकाय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न॒ संदि॑तम्। गी॒र्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥

अन्वयः– वरुण! रथी संदितम् अश्वम् मृलीकाय ते मनः गीर्भिः विसीमहि।

शब्दार्थ – वरुण! = हे वरुण! **रथीः** = रथ का स्वामी, सारथी, **संदितम्,** = दूर जाने से थके हुए, **अश्वं न** = घोडें को जैसे घास आदि देकर शान्त करता है, उसी प्रकार, **मृलीकाय** = आपको सुख देने हेतु, **ते** = तुम्हारे, **मनः** = मन को, **गीर्भिः** = स्तोत्रों द्वारा, **विसीमहि** = हम प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – हे वरुणदेव! जिस प्रकार रथस्वामी दूर गमन से थके हुए घोडे को घास आदि खिलाकर शान्त करता है, उसी प्रकार सुख देने वाले आपके मन को हम स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं।

भावार्थ – हे वरुणदेव! जिस प्रकार थके घोड़े पर बैठा हुआ उसका स्वामी दया करके उसे विश्राम देता है उसी प्रकार हम इस संसार में दुःखी एवं त्रस्त हैं। अतः आप हम पर दया करके हमें सुखी करें। हम आपसे केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं।

सुभाषित – **'मृलीकाय ते मनः गीर्भिः विसीमहि'** अर्थात् उस प्रभु के सुख देने वाले मन को हम स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं।' **व्याकरण – रथीः** – रथ शब्द से मतुप् अर्थ में वैदिक ई प्रत्यय। रथ + ई = रथी। प्रथमा विभक्ति एकवचन। संदितम् – सम् उपसर्ग पूर्वक ''दो अवखण्डने'' धातु से क्त प्रत्यय। विसीमहि – वि उपसर्ग पूर्वक ''षिञ् बन्धने'' अथवा ''षिवु सन्ताने'' धातु से लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः पत॑न्ति॒ वस्य॑ इष्टये। वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑॥ ४॥

अन्वयः– मे विमन्यवः वस्यः इष्टये हि परापतन्ति। वयः वसतीः उप न।

शब्दार्थ – मे = मेरी (शुनः शेप की) **विमन्यवः** = उत्साह युक्त, क्रोध रहित बुद्धियाँ, **वस्यः** = धनयुक्त जीवन की, **इष्टये** = प्राप्ति के लिए उसी प्रकार, **परापतन्ति** = दूर-दूर दौड रही हैं, जैसे **वयः** = पक्षी, **वसतीः** = निवास स्थान, (घोंसला) **उप न** = की ओर दौड़ते हैं।

अनुवाद – मेरी उत्साहयुक्त तथा क्रोधरहित बुद्धियाँ धनयुक्त जीवन की प्राप्ति के लिए ऐसे दूर-दूर दौड़ रही हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने घोसलों की ओर दौडते हैं।

भावार्थ – शुनः शेप कहते हैं कि जिस प्रकार पक्षी दिन भर इधर-उधर घूम-घाम कर सायं विश्राम के लिए अपने घोंसले की ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार मेरी विशेष उत्साहित बुद्धियाँ और मेरी विचारधाराएँ इस विश्व में इधर-उधर घूमती रहती हैं, परन्तु सतत् शान्ति और सुख की इच्छा से तुम्हारे ही आश्रय में आती हैं और वहाँ सुख और आनन्द प्राप्त करती हैं।

व्याकरण – **विमन्यवः**– विगतः मन्युः याभ्यः ताः विमन्यवः। **वयः** = 'वि' शब्द पक्षी वाचक है। प्रथमा विभक्ति बहुवचन। **वस्यः** – वसुमत् शब्द से ईयसुन् प्रत्यय वसुमत् + ईयसुन्। **इष्टये** – 'इष् इच्छायाम्' धातु से क्तिन् प्रत्यय इष् + क्तिन् = इष्टि। चतुर्थी विभक्ति एकवचन। **वसतीः** = वस्+ अति= वसति। द्वितीया बहुवचन।

क॒दा क्ष॑त्र श्रियं नर॒मा वरु॑णं करामहे। मृलीकायो॑रु॒चक्ष॑सम्॥ ५॥

अन्वयः – क्षत्रश्रियम् उरुचक्षसम् नरम् वरुणम् मृडीकाय कदा आकरामहे॥

शब्दार्थः – **क्षत्रश्रियम्** – पराक्रम युक्त शोभायमान्, अथवा शासकीय गुण से युक्त, **उरुचक्षसम्** = त्रिकालदर्शी, **नरम** = नेता, **वरुणम्**=वरुणदेव को, **मृलीकाय** = सुखप्राप्ति के लिए, **कदा** = कब, **आकरामहे** = बुलावेगें।

अनुवाद – क्षत्रपराक्रम युक्त शोभायमान्, त्रिकालदर्शी सबका नेतृत्व करने वाले, वरुणदेव को हम सुखसमृद्धि की प्राप्ति के लिए कब बुलावेगें?

भावार्थ – वरुणदेव सभी प्राणियों की सुरक्षा एवं नेतृत्व करने में समर्थ हैं। वे अपनी त्रिकालदृष्टि से सब कुछ जान जाते हैं। उन सुखदायी प्रभु की हम सब मिलकर कब उपासना करेगें? अर्थात् उनके आगमन से हमारे आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापों का प्रशमन होगा।

सुभाषित– "कदा मृलीकाय आ करामहे" हम इस यज्ञ में सुखप्राप्ति हेतु उन वरुणदेव को कब बुलायेगें। **व्याकरण** – **क्षत्रश्रियम्** = क्षत्रेण श्रीः यस्य तम्। **नरम्** – 'नृ नये' धातु से 'ऋद्धोरप्' से अप् प्रत्यय करके नर शब्द सिद्ध होता है। द्वितीया विभक्ति एकवचन। **करामहे** – 'डुकृञ् करणे' धातु से लट् लकार उत्तमपुरुष बहुवचन। यहाँ व्यत्यय से उ के स्थान पर शप् हुआ

है। **मृडीकाय** – 'मृड् सुखने' धातु से ईकक् प्रत्यय। **उरुचक्षसम्** – उरु चक्षः यस्य तम्। अथवा उरु चष्टे यस्य तम्।

तदित्स॑मा॒नमा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र युच्छतः। धृतव्र॑ताय दाशुषे॥ ६॥

अन्वयः – धृतव्रताय दाशुषे वेनन्तौ समानम् तत् इत् आशाते, न प्रयुच्छतः।

शब्दार्थः – **धृतव्रताय** = व्रत धारण करने वाले या अनुष्ठान का पालन करन वाले, **दाशुषे** = हवि प्रदान करने वाले दाता के लिए, **वेनन्तौ** = सुखकी इच्छा करने वाले ये मित्र और वरुण, **समानम्** = समान भाव से, **तत् इत्** = वही हविष्यान्न, **आशाते** = चाहते हैं, **न प्र युच्छतः** = वे कभी उसका त्याग नहीं करते।

अनुवाद – व्रत धारण करने वाले दाता के लिए सुख की इच्छा चाहने वाले ये मित्र और वरुण समानभाव से वही हविष्यान्न चाहते हैं, वे उसका कभी त्याग नहीं करते।

भावार्थ – ये मित्र और वरुण ऐसे देवता हैं, जो व्रती और दाता पुरुष की उन्नति करना चाहते हैं। वे कभी अपने भक्त का त्याग नहीं करते।

व्याकरण – **आशाते** = 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष द्विवचन। **वेनन्ता** – वेन् धातु शतृ प्रत्यय। प्रथमा द्विवचन = वेनन्तौ। वेद में द्विवचन के औ को आ हुआ है। यथा – द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया। **दाशुषे** – 'दाशृ दाने' धातु से क्वसु प्रत्यय = दाश्वस्। चतुर्थी विभक्ति एकवचन।

वेदा॒ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम्। वेद॑ ना॒वः स॑मुद्रिय॑ः॥ ७॥

अन्वयः – यः अन्तरिक्षेण पतताम् वीनाम् पदम् वेद। समुद्रियः नावः वेद॥

शब्दार्थ – **यः** = जो वरुणदेव, **अन्तरिक्षेण** = गगन मण्डल में, **पतताम्** = उड़ने वाले, **वीनाम्** = पक्षियों का, **पदम्** = मार्ग, **वेद** = जानते हैं, **समुद्रियः** = समुद्र में सञ्चार करने वाली, **नावः** = नौकाओं के (मार्ग को) **वेद** = जानते हैं।

अनुवाद – जो वरुणदेव आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के मार्ग को जानते हैं, तथा समुद्र में सञ्चार करने वाली नाव के मार्ग को भी जानते हैं वे हमें इस मायारुपी बन्धन से छुडावें।

भावार्थ – वरुणदेव आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति जानते हैं, कौन सा पक्षी कहाँ से उड़ा था और कहाँ जाएगा यह सब उन्हें ज्ञात है। समुद्र में सञ्चार करने वाली नौकाएँ किस गति से घूम रही हैं। उनमें कौन सी नौका अपने स्थान में ठीक प्रकार से पहुँचेगी और कौन सी नहीं यह सब उन वरुणदेव को पता है।

टिप्पणी – छन्दपूर्त्ति के लिए 'वीनाम्' का उच्चारण 'वी–न–आम्' करना चाहिये। **व्याकरण** – **अन्तरिक्षेण** – अन्तः ऋक्षाणि (नक्षत्राणि) यत्र। अन्तः ईक्ष्यते इति अन्तरिक्षम्। तृतीया विभक्ति एकवचन। **समुद्रियः** – ''समुद्रे भवः समुद्रियः'' घ प्रत्यय ''आयनेयी'' इत्यादि सूत्र से घ को इय् आदेश होकर समुद्रिय बना। **वेद** – ''विद् ज्ञाने'' धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

वेद॑ मा॒सो धृतव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जावतः। वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते॥ ८॥

अन्वयः – धृतव्रतः प्रजाव॑तः द्वादश मासः वेद। यः उपजायते वेद॥

शब्दार्थः – **धृतव्रतः** = दृढव्रती तथा नियमानुसार चलने वाले वरुणदेव, **प्रजावतः** = उत्पन्न होने वाली प्रजा से युक्त, **द्वादशमासः** = बारह महीनों को, **वेद** = जानता है, **यः उपजायते** = और जो तेरहवाँ महीना तृतीय वर्ष बढ़ने वाला अधिमास, मलमास या पुरुषोत्तम मास उत्पन्न होता है, **वेद** = उसे भी जानते हैं।

अनुवाद – नियमानुसार चलने वाले वरुणदेव उत्पन्न होने वाली प्रजा से युक्त बारह महीनों को जानते हैं। तथा जो पुरुषोत्तम मास अर्थात् तेरहवाँ महीना अधिमास या मलमास आता है, उसे भी जानते हैं।

भावार्थः – वर्ष के बारह महीनों में और प्रत्येक तीसरे वर्ष आने वाले तेरहवें मास (अर्थात् पुरुषोत्तम मास या मलमास) में क्या उत्पन्न होता है? और उससे प्रजा की उन्नति कैसे होती है? यह सब वरुणदेव को पता है।

टिप्पणी – ‘‘**धृतव्रतः प्रजावतः द्वादशमासः वेद**’’ अर्थात् वरुणदेव को वर्ष के बारहों मासों की प्रत्येक गतिविधि (भूकम्पादि) का ज्ञान रहता है।

व्याकरण – **प्रजावतः** – प्र + जन् + ड + टाप् = प्रजा। प्रजा+मतुप् = प्रजावत्। षष्ठी विभक्ति एकवचन। **उपजायते** = उप+जन्, लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। **विशेष** – अधिमास, मलमास या पुरुषोत्तम मास प्रत्येक तीसरे वर्ष आता है। उसका लक्षण – ‘‘**द्वात्रिंशद्भिर्मासैः दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्येकोऽधिमासकः**’’ 32 महीनें 16 दिन और 4 घटी के बाद अधिमास या मलमास आता है।

वेद॒ वात॑स्य व॒र्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य बृहतः। वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते॥ ९॥

अन्वयः – उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिम् वेद। ये अधि आसते वेद॥

शब्दार्थः – **उरोः** = विस्तृत या व्यापक, **ऋष्वस्य** = दर्शनीय, महान्, **बृहतः** = सर्वगुण सम्पन्न या बहुत बडा, **वातस्य** = वायु के, **वर्तनिम्** = मार्ग को, **वेद** = जानते हैं, **ये अध्यास्ते** = जो ऊपर के अधिष्ठित लोक हैं, यथा भू भुवः स्वः आदि उनको भी तथा जो देखता ऊपर के लोकों में अधिष्ठित हैं उनको भी, **वेद** = जानते हैं।

अनुवाद – वरुणदेव, विस्तृत महान् तथा अत्यन्त विशाल वायु के मार्ग को जानते हैं, तथा अधिष्ठातृ लोकों भू, भुवः, स्वः आदि का भी ज्ञान रखते हैं तथा जो देवता ऊपर के लोकों में अधिष्ठित हैं, उनको भी वह जानते हैं।

भावार्थ – चारों ओर व्याप्त सञ्चार करने वाली प्राण वायु की गति का ज्ञान रखने वाले वरुणदेव इसे नियन्त्रित करते हैं और सब अधिष्ठातृ देवताओं तथा उनके लोकों का ज्ञान भी उन्हें है।

व्याकरण – **वातस्य** – ‘‘वा गतिगन्धनयोः’’ धातु से ‘‘असिहसि’’ इत्यादि सूत्र से तन् प्रत्यय = वात। षष्ठी विभक्ति एकवचन। **वर्तनिम्**– वर्तते प्रवर्तते अनेनेति वृत् धातु से अनि प्रत्यय होकर वर्तनि हुआ। द्वितीया विभक्ति एकवचन। **ऋष्वस्य** = ‘‘ऋषी गतौ’’ धातु से क्वन् प्रत्यय = ऋष्व। षष्ठी विभक्ति एकवचन।

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॑स्वा। साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतु॑ः॥ १०॥

अन्वयः – धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः पस्त्यासु साम्राज्याय आनिषसाद॥

शब्दार्थः – धृतव्रतः = नियमानुसार चलने वाले, **सुक्रतुः** = उत्तम कर्म करने वाले, **वरुणः** = वरुणदेव, **पस्त्यासु** = प्रजाओं में, **साम्राज्याय** = साम्राज्य के लिए, **आनिषसाद** = आकर बैठते हैं।

अनुवाद – नियमानुसार चलने वाले, उत्तम कर्म करने वाले वरुणदेव प्रजा में बैठते हैं और अपना साम्राज्य चलाते हैं।

भावार्थ – वह वरुणदेव नियमानुसार सभी कार्य यथायोग्य रीति से करते हैं। जो करते हैं वह उत्तम रीति से करते हैं। इस प्रकार के सर्वगुणसम्पन्न वरुणदेव प्रजाओं में आकर अधिष्ठित होते हैं और अपना साम्राज्य चलाते हैं।

टिप्पणी – **''साम्राज्याय आनिषसाद''** वह वरुणदेव प्रजा के सम्राट् हैं और अपना साम्राज्य भली प्रकार से चलाते हैं। **व्याकरण – निषसाद** – नि+सद् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **पस्त्यासु** – निघण्टु के अनुसार पस्त्य शब्द निपातन से सिद्ध होता है। **सुक्रतुः** = शोभनः क्रतुः यस्य सः। कृ + अतु = क्रतु, सु उपसर्ग लगाने पर सुक्रतु॥

अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति। कृ॒तानि॒ या च॒ कर्त्वा॑॥ ११॥

अन्वयः – अतः विश्वानि अद्‌भुता चिकित्वान् या कृतानि च कर्त्वा अभिपश्यति।

शब्दार्थ – अतः – इसलिए, **विश्वानि** = सभी, सब, **अद्‌भुता** = आश्चर्यों, अद्भुत कर्मों को, **चिकित्वान्** = जाननेवाला, ज्ञानी मनुष्य, **या कृतानि** = पहले किए हुए, **च**=और, **कर्त्वा** = आगे किए जाने वाले कर्मों को, **अभिपश्यति** = पूर्णता से देखता है।

अनुवाद – इसलिए सभी अद्भुत कर्मों को करने की विधि को जानने वाला, प्रज्ञावान्, किए गए कर्म एवं करने वाले कर्मों को पूर्णरूप से देखता है।

भावार्थ – वरुणदेव विश्व की प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण करते हैं। विश्व में क्या-क्या अद्भुत गतिविधि हो रही है? क्या-क्या हो चुकी है और

आगे क्या होगा? इस सब का ज्ञान वरुणदेव को होता है। इससे इनका त्रिकाल दर्शित्व सिद्ध होता है। वरुण की आराधना से मनुष्य भी प्रज्ञावान् होकर त्रिकालदर्शी हो जाता है।

व्याकरण – अतः – अस्मात् इति अतः। एतद्+ तसिल् (तस्)। यह अव्यय है। एतद् को 'अ' आदेश। **चिकित्वान् –** 'कित् ज्ञाने' धातु से क्वसु प्रत्यय = चिकित्वस्। प्रथमा विभक्ति एकवचन। **कर्त्वा**–'कृ' धातु 'त्वन्' प्रत्यय, **चिकित्वाँ अभिपश्यति** – वैदिक सन्धि के अनुसार यहाँ स्वर परे रहने पर न् को अनुस्वार हुआ।

स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत्। प्र ण॒ आयूंषि तारिषत्॥ १२॥

अन्वयः – सुक्रतुः सः आदित्यः विश्वाहा नः सुपथा करत्। नः आयूंषि प्रतारिषत्।

शब्दार्थ – **सुक्रतुः** – उत्तम कर्म करने वाला, **सः** = वह, **आदित्यः** = अदिति का पुत्र वरुणदेव, **विश्वाहा** = सर्वदा, **नः** = हमें, **सुपथा** = सुपथ से चलने वाला, **करत्** = करे, **नः** = हमारी, **आयूंषि** = आयु को, **प्रतारिषत्** = बढावे।

अनुवाद – उत्तम कर्म करने वाले वह आदिति के पुत्र वरुणदेव, सदा हमें सन्मार्ग की ओर चलाएँ और हमारी आयु को बढाएँ।

भावार्थ – वही उत्तम कार्य वाले वरुणदेव, सभी प्राणियों को बन्धन मुक्त कराने के लिए सभी मानवों को उत्तम मार्ग से चलाएँ, और सबसे उत्तम कर्म होने के लिए उनको दीर्घायु भी देवें।

सुभाषित – "प्रण आयूंषि तारिषत्" वह वरुणदेव हमारी आयु को बढाऐं। **व्याकरण – सुपथा** – शोभनश्चासौ पन्थाः सुपन्थः तेन सुपथा। कर्मधारय समास। **करत् –** कृ धातु लोट् लकार, प्र.पु. एकवचन। यह वैदिक प्रयोग है। लौकिक प्रयोग में करोतु रूप होगा। **विश्वाहा** – विश्व + अहन्। यह वैदिक अव्यय है। विश्वहा और विश्वह रूप भी मिलते हैं। **तारिषत्** = तॄ + णिच्, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

बिभ्र॑द्द्रा॒पिं हिर॒ण्य॑यं॒ वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म्। परि॒ स्पशो॒ नि षे॑दिरे॥ १३॥

अन्वयः – हिरण्ययम् द्रापिम् बिभ्रत् वरुणः निर्णिजम् वस्त। स्पशः परिनिषेदिरे॥

शब्दार्थ – **हिरण्ययम्** = सुवर्णमय, सोने से बना हुआ, **द्रापिम्** = कवच को, **बिभ्रत्** = धारण करने वाले, **वरुणः** = वरुणदेव, **निर्णिजम्** = अपने पुष्ट शरीर को, **वस्त** = ढक लेता है, **स्पशः** = चमकदार किरणें, **परि** = चारों ओर, **निषेदिरे** = व्याप्त हो रही हैं।

अनुवाद – सुवर्णमय कवच को धारण करने वाले वरुणदेव अपने पुष्ट शरीर को ढक लेते हैं। अर्थात् उस पर और तेजस्वी वस्त्र धारण करते हैं। उसकी चमकदार किरणें चारों ओर व्याप्त हो रही हैं।

भावार्थ – वरुणदेव के ऊपर सुवर्ण के वस्त्र का आच्छादन है। मानो वह जरी कपड़े पहनकर ऊपर वैसा ही दुपट्टा ओढ़ता है। वरुणदेव की अलौकिक तेजस्वी किरणें, विश्व में चारों ओर व्याप्त हो रही हैं।

व्याकरण – **हिरण्ययम्** – ''हिरण्यस्य विकारः'' इस अर्थ में मयट् प्रत्यय। मयट् के 'म' का लोप होकर हिरण्यय हुआ। **बिभ्रत्** = भृ + शतृ = बिभ्रत्। **द्रापिम्** = द्रा + णिच् पुक् का आगम = द्रापि। द्रापयति ईषत् कुत्सितां गतिं प्रापयति विफलीकरोति इषुप्रहारान् इति द्रापिः। द्वितीया विभक्ति एकवचन। **वस्त** – ''वस् आच्छादने'' धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। यह वैदिकरूप है।

न यं दिप्स॑न्ति दि॒प्सवो॒ न द्रुह्॑वाणो॒ जना॑नाम्। न देवम॒॑भिमा॑तयः॥ १४॥

अन्वयः –दिप्सवः यम् देवम् न दिप्सन्ति, जनानाम् द्रुह्वाणः न, अभिमातयः न।

शब्दार्थ – **दिप्सवः** = घातक या हिंसा करने की इच्छा रखने वाले, **यं देवम्** = जिस देव के प्रति, **न दिप्सन्ति** = हिंसा नहीं करते। **जनानाम्** = सामान्य लोगों के, **द्रुह्वाणः न** = द्रोही व्यक्ति भी जिस के प्रति विद्रोह नहीं कर पाते, **अभिमातयः न** = और पापीजन भी जिसे हानि नहीं पहुँचा सकते।

अनुवाद – घातक या हिंसा की इच्छा रखने वाले दुष्टलोग जिस वरुणदेव के प्रति हिंसा की इच्छा का परित्याग कर देते हैं। सामान्य मनुष्यों के द्रोही व्यक्ति भी जिस वरुणदेव के प्रति द्रोह नहीं कर पाते और पापी लोग भी जिसे हानि नहीं पहुँचा पाते।

भावार्थ – वह महान् वरुणदेव प्रत्येक मनुष्य की गतिविधि को देखता है कोई भी घातक दुष्ट व्यक्ति या शत्रु इस वरुणदेव को किसी तरह का कष्ट नहीं दे सकता। वे बडे सामर्थ्यशाली हैं।

व्याकरण – **दिप्सन्ति** – सन्नत "दम्भ" धातु लट् लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन। **दिप्सवः** – सन्नत दम्भ धातु से उ प्रत्यय = दिप्सु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **द्रुह्वाणः** – 'द्रुह् जिघांसायाम्' धातु से क्वनिप् प्रत्यय द्रुह् + क्वनिप् = द्रुह्वन्। प्रथमा विभक्ति बहुवचन। **अभिमातयः** = अभि उपसर्गपूर्वक मन् धातु निपातनात् = अभिमाति। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन अथवा 'मीञ् हिंसायाम्' धातु से अभिभूय मिनाति हिनस्ति अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करके अभिमाति रुप।

उ॒त यो मानु॑षे॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे असा॒म्या। अ॒स्माक॑मुद॒रे॒ष्वा॥ १५॥

अन्वयः– उत यः मानुषेषु यशः आचक्रे, असामि आ, अस्माकम् उदरेषु आ॥

शब्दार्थ – **उत** = और, **यः** = जिसने, **मानुषेषु** = मनुष्यों में, **यशः** = अन्न, **आचक्रे**=उत्पन्न किया है, **असामि** = सम्पूर्णतया सम्पूर्ण रूप में, **अस्माकम्**= हमारे, **उदरेषु आ** = उदरों (पेटों) में अन्न पचाने की शक्ति दी।

अनुवाद– जिस वरुणदेव ने मनुष्यों में अन्न को उत्पन्न किया, तथा उसी वरुणदेव ने हमारे उदरों में (पेट में) अन्न पचाने की शक्ति दी।

भावार्थ – वह वरुणदेव हर कार्य को पूर्णरूप से निभाते हैं। उनके कार्य में कोई भी त्रुटि नहीं होती। मनुष्य के पेट में ही देखें उन्होंने कैसी उत्तम रचना की है, कि जिससे खाए अन्न से अन्दर ही अन्दर से शरीर का पोषण होता रहता है।

व्याकरण – मानुषेषु – मनोरपत्यं पुमान् मानुषः। सप्तमी विभक्ति बहुवचन। **अस्माकम्** – अस्मद् शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन। **उदरेषु** – उदर शब्द सप्तमी विभक्ति बहुवचन।

परा॑ मे यन्ति धी॒तयो॒ गावो॒ न गव्यू॑ती॒रनु॑। इ॒च्छन्ती॑रुरु॒चक्ष॑सम्॥ १६॥

अन्वयः – उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः परायन्ति, गव्यूतीः अनु गावः न॥

शब्दार्थः – उरुचक्षसम् = सर्वसाक्षी या व्यापक दृष्टि वाले, **इच्छन्तीः** = इच्छा करती हुई, **मे** = मेरी (शुनः शेप की) **धीतयः** = बुद्धियाँ उसी प्रकार, **परायन्ति** = जाती हैं, जैसे **गव्यूतीः अनु** = गोष्ठ या गोचर भूमि की ओर सायं, **गावः न** = गौएँ जाती हैं।

अनुवाद – सर्वसाक्षी या व्यापक दृष्टि वाले, उन वरुणदेव के दर्शन की अभिलाषा करती हुई, मेरी (शुनः शेप की) बुद्धियाँ उन्हीं की ओर जा रही हैं। जिस प्रकार सायंकाल गौएँ अपने गोष्ठों की ओर जाती हैं।

भावार्थ = जिस प्रकार गौएँ घास की भूमि या गोष्ठों की ओर दौडती हुई जाती हैं, वैसे ही मेरी (शुनः शेप की) बुद्धियाँ, उस वरुणदेव की ओर दौड़ रही हैं।

व्याकरण – धीतयः = "ध्यै चिन्तने" धातु से क्तिन् प्रत्यय धीतयः –ध्या + क्तिन्। प्रथमा विभक्ति बहुवचन। **गव्यूतीः** – गो + यू + क्तिन् प्रत्यय। 'गोर्यूतौ छन्दसि' सूत्र से ओ को अव् आदेश गव्यूतिः इति। प्रथमा बहुवचन। **उरुचक्षसम्** = उरुभिः – चक्षसं यस्य तम्।

सं नु वो॑चावहै॒ पुन॒र्यतो॑ मे॒ मध्वाभृतम्। होते॑व॒ क्षद॑से प्रि॒यम्॥ १७॥

अन्वयः – यतः मे मधु आभृतम्, पुनः नु सम्वोचावहै। होता इव प्रियम् क्षदसे।

शब्दार्थः – यतः = क्योंकि, जिस कारण से, **मे** = मैं, **मधु** = मधुर हवि, **आभृतम्** = लाया हूँ, **पुनः नु**= दोबारा निश्चय से, **सम्वोचावहै** = प्रेम से दोनों बातें करेंगे। **होता इव** = होता की तरह, **प्रियम्** = मधुर रस का, **क्षदसे** = तुम भक्षण करो।

अनुवाद – जिस कारण से मैं यह मधुर हवि आपके अञ्ज:सब नामक यज्ञ के लिए लाया हूँ, अतः पुनः अवश्य ही हम दोनों प्रेम से बाँतें करेंगे। हे वरुणदेव आप होता की तरह मधुर हवि का भक्षण करते रहो।

भावार्थ – शुनः शेप जी कहते है कि मैंने वरुणदेव को अर्पित करने के लिए जो भी मधुर हवि इकठ्ठा करके रखा है, उसे वे स्वीकार करें और उसके बाद मेरा उनसे मधुर वार्तालाप होता रहे।

व्याकरण – संवोचावहै = सम् उपसर्ग पूर्वक ''ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि'' धातु से ''ब्रुवोर्वचि'' से ब्रू को वचादेश, लुङ् लकार, उत्तमपुरुष, द्विवचन। **क्षदसे** – ''क्षद् भक्षणे'' धातु से लट् लकार, मध्यमपुरुष एकवचन।

दर्श॒ नु वि॒श्व॒द॑र्शतं॒ दर्श॒ रथ॒मधि॒ क्षमि॑। ए॒ता जु॑षत मे॒ गिर॑:॥ १८॥

अन्वयः – विश्वदर्शतम् नु दर्शम्, अधिक्षमि रथम् दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत॥

शब्दार्थः – **विश्वदर्शतम्** = सम्पूर्ण संसार से देखे जा सकने योग्य या विश्वरूप में दर्शनीय, **नु** = निश्चय से, **दर्शम्** = मैंने देख लिया है, **अधिक्षमि** = भूमि पर, **रथम्** = वरुणदेव के रथ को, **दर्शम्** = मैंने देख लिया है, **एताः** = ये, **मे** = मेरी, **गिरः** = स्तुतियों को, **जुषत** = स्वीकार कर लिया है।

अनुवाद – विश्वरूप में दर्शनीय उन वरुणदेव को मैंने निश्चय से देख लिया है। मैंने भूमि पर उन वरुणदेव के रथ को भी देख लिया है। मेरी इन स्तुतियों को वरुणदेव ने स्वीकार कर लिया है।

भावार्थ – शुनः शेप जी कहते हैं कि मैंनें उन विश्वरूप में दिखाई देने वाले वरुणदेव का साक्षात् दर्शन कर लिया है। जिस प्रकार पृथ्वी पर खड़ा रथ दिखता है, उसी प्रकार वरुणदेव भी मेरे सम्मुख खड़े हैं। उन्होंने मेरी प्रार्थना भी सुन ली है।

व्याकरण – विश्वदर्शतम् – विश्व+दृश्+अतच् = विश्वस्य दर्शनीयम्। **दर्शम्** = दृश् धातु, लुङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। अट् मात्र का वैदिक

लोप। यहाँ द्रष्टव्य है कि वेद में अधिकतर लुङ् लकार का प्रयोग किया गया है। **अधिक्षमि** = क्षमा अर्थात् पृथ्वी। अधि उपसर्ग पूर्वक क्षमा का प्रयोग है। अधिक्षमि सप्तमी विभक्ति एकवचन। यहाँ आ का लोप हुआ है। दृढतापूर्वक कहने के लिए यहाँ अधिशब्द का प्रयोग किया गया है।

इ॒मं मे॑ वरुणश्रु॒धी हव॑म॒द्या च॑ मृळय। त्वाम॑व॒स्युरा च॑के॥ १९॥

अन्वयः – वरुण। मे इमम् हवम् श्रुधि, अद्य च मृलय। अवस्युः त्वाम् आचके।

शब्दार्थ – वरुण = हे वरुणदेव! **मे** = मेरे, **इमम्** = इस, **हवम्** = आह्वान को, **श्रुधि** = सुनिये, **अद्य** = आज, **मृलय** = मुझे सुखी कीजिए, **अवस्युः** = अपने संरक्षण की इच्छा से मैं, **त्वम्** = तुम्हारी, **आचक्रे** = स्तुति करता हूँ या पुकारता हूँ।

अनुवाद – हे वरुणदेव! मेरी (शुनः शेप की) यह प्रार्थना सुनिये। आज मुझे सुखी कीजिए। अपनी सुरक्षा की अभिलाषा करते हुए मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

भावार्थ = हे वरुणदेव! मेरी प्रार्थना सुनिए! मुझे सुखी कीजिए। मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया मुझे सुरक्षा प्रदान कीजिए। यही मैं आपसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ।

व्याकरण – श्रुधि – ''श्रु श्रवणे'' धातु से, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन का वैदिकरूप। **हवम्** – ह्वे + अप् (व् सम्प्रसारण, सन्धि और अव् आदेश)। **मृलय** = ''मृल् धातु'' लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **अवस्युः**– अवस् + क्यच् + उ (अवस् इच्छायाम्)। **चक्रे** = 'कै शब्दे' धातु से, लिट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **श्रुधी और अद्या** = यहाँ दीर्घ संहिता पाठ के नियमों के अनुसार हुआ।

त्वं विश्व॑स्य मेधिर दि॒वश्च॒ ग्मश्च॑ राजसि। स याम॑नि॒ प्रति॑ श्रुधि॥ २०॥

अन्वयः– मेधिर! त्वम् दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि। सः यामनि प्रतिश्रुधि॥

शब्दार्थ – **मेधिर!** = हे मेधाविन् वरुणदेव। **त्वम्** = तुम, **दिवः** = द्युलोक का, **च** = और, **ग्मः** = भूलोक के, **विश्वस्य** = सम्पूर्ण विश्व के (मध्य में) **राजसि** = प्रकाशित हो रहे हो या शासन कर रहे हो। **सः** = वह तू, **यामनि** = जीवन यात्रा के मार्ग में, **प्रतिश्रुधि** = मुझे प्रत्युत्तर दो।

अनुवाद – हे मेधाविन् वरुणदेव! तुम द्युलोक और पृथिवीलोक सहित सम्पूर्ण विश्व में प्रकाशित होते हो अथवा शासन करते हो। ऐसे हे वरुणदेव! तुम हमारी जीवनयात्रा के मार्ग में मुझे प्रत्युत्तर दो कि तुम हमारी रक्षा करोगे।

भावार्थ – हे मेधाविन् वरुणदेव! तुम्हारा साम्राज्य आकाश से लेकर पृथ्वी तक सर्वत्र अखण्ड है। तुम हमारी प्रार्थनाओं का श्रवण करके उन्हें पूर्ण करो, और हमें आनन्द का भागी बनाओ।

व्याकरण– **मेधिर** =''मेधा अस्य अस्ति इति'' अर्थ में मेधा + इरच् = मेधिर। **ग्मः** = ''गम्लृ गतौ'' धातु से पृथ्वी के अर्थ में निपातन करने से वैदिक शब्द ग्मा बनता है। षष्ठी विभक्ति, एकवचन का वैदिकरूप = ग्मः। **यामनि** = ''या गतौ'' धातु से मनिन् प्रत्यय, या + मनिन्, सप्तमी विभक्ति एकवचन।

उदु॑त्त॒मं मु॑मुग्धि नो॒ वि पाशं॑ मध्य॒मं चृ॑त। अवा॑ध॒मानि॑ जी॒वसे॑ ॥ २१ ॥

अन्वयः – नः उत्तमम् पाशम् उन्मुमुग्धि, मध्यमम् विचृत, जीवसे अधमानि अव॥

शब्दार्थः – **नः** = हमारे, **उत्तमम्** = शिरोगत, ऊर्ध्ववर्ती, **पाशम्** = पाश को, **उत् मुमुग्धि** = ऊपर की ओर खींच कर छुड़ा दो, **मध्यमम्** = कमर के, **विचृत** = खोल कर नष्ट कर दो, **जीवसे** = जीने के लिए, **अधमानि** = नीचे के अर्थात् पाँव के, **अव**= खोल दो।

अनुवाद – हमारे सिर के पाश को ऊपर की ओर खींचकर छुड़ा दो, कमर के पाशों को खोल कर नष्ट कर दो, और हमारे जीवन के लिए नीचे के, अर्थात् पैरों के पाशों को खोलकर नष्ट कर दो।

भावार्थ – हे वरुणदेव! ऊपर के उत्तम, बीच के मध्यम, और नीचे के कनिष्ठ पाशों को खोलकर नष्ट कर दो, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ।

व्याकरण – उत्तमम् = उत् उपसर्ग से तमप् प्रत्यय करने से (उत् + तमप् = उत्तमम्) हुआ। **मुमुग्धि** = "मुच्लृ मोचने" धातु से लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **चृत** = "चृती हिंसाग्रन्थनयोः" धातु से लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **जीवसे** = जीव शब्द से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में यहाँ वैदिक 'असे' प्रत्यय हुआ जीव + असे = जीवसे इति। **विशेष** = लौकिक भाषा की अपेक्षा वैदिक भाषा में अधिक व्यत्ययों का प्रयोग हुआ है अधमानि में लिङ्ग व्यत्यय होकर पुल्लिङ्ग के स्थान में नपुंसकलिङ्ग हुआ है।

ooo

४. सूर्यसूक्त

मण्डल १ **सूक्त ११५**

ऋषि-कुत्स आङ्गिरसः **देवता-सूर्य,** **छन्द–त्रिष्टुप्**

संहिता–पाठः

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑ पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च॥ १॥

अन्वयः – देवानाम् अनीकम् चित्रम् मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः सूर्यः उदगात्। द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् आ अप्राः। जगतः तस्थुषः च आत्मा।

शब्दार्थः – देवानाम् = देवताओं का या किरणों का, **अनीकम्** = समूह, **चित्रम्** = अद्भुत या विलक्षण, **मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः** = मित्र, वरुण और अग्नि का, **चक्षुः**=प्रकाशक, **सूर्यः** = सूर्य, **उदगात्** = उदय हुआ है, **द्यावापृथिवी** = द्युलोक पृथिवीलोक और **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्षलोक को प्रकाश से, **आ अप्राः** = भर दिया है, **जगतः** = इस संसार का, **तस्थुषः च** = और स्थावर संसार का, **आत्मा** = सूर्य आत्मा है।

अनुवाद – देवताओं या किरणों का विलक्षण समूह मित्र, वरुण और अग्नि का प्रकाशक या नेत्ररूप सूर्य उदय हो गया है। उसने द्युलोक, पृथ्वीलोक

और अन्तरिक्षलोक को व्याप्त कर लिया है, अर्थात् प्रकाश से भर दिया है। सूर्य जंगम और स्थावर की आत्मा है।

भावार्थ – उषा के बाद सूर्योदय होता है। यह सूर्य देवताओं की आँख है। मानो, देवगण इसी नेत्र द्वारा संसार का सारा व्यवहार देखते हैं। इसके उदय होते ही सभी प्राणियों की आँखों को प्रकाश का मार्ग दिखाई देता है। सूर्य सब चराचर जगत् की आत्मा है। सूर्य न हो तो कुछ भी न रहे। सब प्रकार का जीवन सूर्य से ही मिलता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि तृणादि सबके जीवन का आधार सूर्य ही है।

सुभाषित– ''**देवानां अनीकं चित्रं चक्षु;**'' यह सूर्य देवताओं का तेज और विलक्षण नेत्र है। ''**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'' सूर्य चराचर जगत् की आत्मा है। **व्याकरण** – **उदगात्** = उत् उपसर्ग पूर्वक इण्गतौ धातु, लुङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन। **अनीकम्** = अन् + ईकक् प्रत्यय, = अनीकम्। **अप्रा:**= 'प्रा पूरणे' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **द्यावापृथिवी** = ''द्यौ: च पृथिवी च'' यहाँ द्वन्द्व समास है। **सूर्य:** = सरति सारयति वा अर्थ में क्यप् प्रत्यय। **जगत्** = 'गम्लृ गतौ' धातु से क्विप् प्रत्यय तथा द्वित्व होकर जगत् बना। **तस्थुष:** = स्था + क्वसु (द्वित्व एवं सम्प्रसारण)

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॒ रोच॑माना॒ं मर्यो॒ न योषा॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात्।
यत्रा॒ नरो॑ देव॒यन्तो॑ युगानि॑ वितन्व॒ते प्रति॑ भ॒द्राय॑ भ॒द्रम्॥ २॥

अन्वय– सूर्य: रोचमानाम् देवीम् उषसम् पश्चात् अभ्येति मर्य: योषाम् न। यत्र देवयन्त: नर: युगानि भद्रम् प्रतिभद्राय वितन्वते॥

शब्दार्थ – **सूर्य:** = सूर्य, **रोचमानाम्** = दीप्तियुक्त, प्रकाशयुक्त, **देवीम् उषसम्** = उषादेवी के, **पश्चात्** = पीछे, **अभिएति** = उसी प्रकार जाते हैं जिस प्रकार, **मर्य:** = युवा पुरुष, **योषां न** = युवती स्त्री के पीछे जाता है। **यत्र** = जहाँ, **देवयन्त:** = देवत्व प्राप्ति के इच्छुक, **नर:** = मनुष्य, **युगानि** = योग्यकर्म करते हैं, सूर्य को अपना बनाने के इच्छुक भक्त वहाँ, **भद्रं प्रति** = कल्याणकारी पुरुष का, **भद्राय** = कल्याण करने के लिए, **वितन्वते** = यह सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है।

अनुवाद – सूर्य प्रकाशयुक्त एवं तेजयुक्त उषादेवी के पीछे उसी प्रकार जाते हैं, जैसे कोई नवयुवक किसी सुन्दर युवती के पीछे जाता है। जहाँ देवत्व की प्राप्ति करने के इच्छुक मनुष्य योग्य कर्म करते हैं। वहाँ उस कल्याणकारी पुरुष का कल्याण करने के लिए यह सूर्य अपना प्रकाश फैलाते हैं।

भावार्थ – पहले उषा आती है उसके बाद सूर्योदय होता है। अतः यह रूपक दिया गया है कि मानों एक तरुण तरुणी के पीछे भाग रहा है। सूर्य प्रकाश से ही सबका कल्याण होता है, और अत्युत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दूसरों का कल्याण करते हैं उनका कल्याण सूर्यदेव करते हैं। अहितकारियों का हित कभी नहीं होता।

सुभाषित – **''यत्र देवयन्तः नराः युगानि भद्रं प्रति भद्राय वितन्वते''** जहाँ देवत्व प्राप्ति के लिए मनुष्य योग्य कर्म करते हैं वहाँ उस कल्याणकारी पुरुष का कल्याण करने के लिए सूर्यदेव अपना प्रकाश फैलाता है। **''भद्रं प्रति भद्राय''** सूर्य नारायण कल्याणकारियों का कल्याण करते हैं।

व्याकरण – **रोचमानाम्** – ''रुच् दीप्तावभिप्रीतौ च'' धातु से रुच् + शानच् + टाप् (शप् और मुक् का आगम) **मर्यः**–''मृङ् प्राणत्यागे'' धातु से निपातनात् यत् प्रत्यय। **युगानि** – 'युजिर् योगे' धातु से घञ् प्रत्यय। **देवयन्तः**– ''देवमात्मनः इच्छन्तः'' इस अर्थ में क्यच् प्रत्यय।

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति स॒द्यः॥ ३॥

अन्वयः– सूर्यस्य अश्वाः भद्राः हरितः चित्राः अनुमाद्यासः एतग्वाः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। द्यावापृथिवी सद्यः परियन्ति।

शब्दार्थ– **सूर्यस्य अश्वाः भद्राः** = सूर्य के अश्व अर्थात् किरणें कल्याण करने वाली, **हरितः** = हरित् नाम के हरे रंग के या जल हरण करने वाली **चित्राः**= विलक्षण, **अनुमाद्यासः** = स्तुति करने योग्य, आनन्द देने वाली, **एतग्वाः** = शीघ्रगति करने वाले, या सतत गतिमान् हैं। **नमस्यन्तः** = नमस्कार किए जाते हुए, या पूजित होते हुए, **दिवः** = द्युलोक के, **पृष्ठम्** = पृष्ठस्थान पर, **आ अस्थुः** = प्राप्त होती हैं अधिष्ठित होती हैं, या फैलती हैं। **सद्यः** =

तत्काल, शीघ्र ही, **द्यावापृथिवी** = द्युलोक और भूलोक में, **परियन्ति** = फैलती हैं।

अनुवाद – सूर्य के अश्व अर्थात् किरणें कल्याण करने वाली हरे रंग के, हरित् नाम वाले, जल हरण करने वालीं, विलक्षण आनन्द देने वालीं और सतत गतिमान् हैं। पूजित होती हुई, वे किरणें द्युलोक के पृष्ठभाग पर फैलती हैं। ये द्युलोक और पृथिवीलोक पर तत्काल ही फैलती हैं।

भावार्थ – सूर्य की किरणें अनेक रोगों को समूल नष्ट कर मानवों को आरोग्य देती हैं इसलिए ये कल्याणकारी हैं। जल का हरण करके बादलों का निर्माण करती हैं, और वृष्टि भी करती हैं। ये ही सभी शुभकर्मों के लिए प्रेरणा देती हैं।

व्याकरण – अश्वाः = "अशू व्याप्ते संघाते च" धातु से क्वन् प्रत्यय अश् + क्वन् = अश्व॥ **एतग्वाः** – "इण् गतौ" धातु से तन् प्रत्यय होकर एत। "गम्लृ गतौ" धातु से औणादिक ड्व प्रत्यय = ग्व। "एतम् एतव्यं प्रति ग्वो गमनं येषां ते एतग्वाः।" **अनुमाद्यासः**– अनु उपसर्ग पूर्वक "म॒द॒ स्तुतौ" धातु से प्रेरणा अर्थ में णिच्। यत् प्रत्यय होकर अनुमाद्य। प्रथमा विभक्ति बहुवचन = अुनमाद्यासः। अनुमादयितुं योग्याः अनुमाद्यासः। **नमस्यन्तः**– नमस् + क्यच् (पूजार्थक) शतृ प्रत्यय = नमस्यत्। **अस्थुः** –"ष्ठा गतिनिवृत्तौ" धातु से लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **सुभाषित :**– "**सूर्यस्य अश्वाः भद्राः अनुमाद्यासः**" सूर्य की किरणें कल्याण करने वाली और आनन्द देने वाली होती हैं।

तत्सूर्य॑स्य दे॒वत्वं तन्म॑हि॒त्वं म॒ध्या क॒र्तोर्वित॑तं॒ सं ज॑भार।
य॒देदयु॑क्त ह॒रित॑ः स॒धस्था॒दाद्रात्री॒ वास॑स्तनुते सि॒मस्मै॑॥ ४॥

अन्वयः– सूर्यस्य तत् देवत्वम् तत् महित्वम् कर्तोः मध्या विततम् सम् जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्रि सिमस्मै वासः तनुते।

शब्दार्थ – सूर्यस्य = सूर्य का, **तत्** = वही, **देवत्वम्** = देवत्व है, स्वामित्व, **तत्** = वही, **महित्वम्** = महिमा, महत्व है कि वह, **कर्तोः** = कार्य करने वाले का, **मध्या** = बीच में, **विततम्** = अपनी फैली हुई किरणों को, **संजभार** = समेट लेता है, अस्त हो जाता है। **यदा** = जब भी, **इत्** = निश्चय ही, **हरितः** = हरित नामक घोड़े को, **सधस्थात्** = अधिष्ठित स्थान से, **अयुक्त**

= खोलते हैं, **आत्** = इसके बाद, **रात्री** = रात, **सिमस्मै** = सारे विश्व को, **वास:** = आच्छादित करने वाले अन्धकार को, **तनुते** = विस्तृत कर देती है।

अनुवाद – सूर्य का वही देवत्व और महिमा है कि वह मनुष्य के काम के बीच से ही अर्थात् कार्यसमाप्ति के पहले ही अपनी किरणों को समेट लेते हैं अर्थात् अस्त होते हैं। जब भी यह सूर्यनारायण हरित नामक घोड़ों को अधिष्ठित स्थान से खोलते हैं, तो इसके बाद रात्रि सारे विश्व को आच्छादित करने वाले अन्धकार से व्याप्त कर देती है।

भावार्थ – सूर्य प्रकाश में सभी प्राणी अपना अच्छा कर्म करते हैं, पर यह सूर्य किसी के लिए नहीं ठहरते। समय पर यह अपनी किरणों को समेट कर अस्त हो जाते हैं। उसके बाद लोगों को अपने काम बन्द करने पड़ते हैं। अत: वे सूर्योदय तक विश्राम करते हैं। सूर्य अपनी किरणों को भूलोक से समेटते हैं, तब रात्री अपने काले वस्त्र से सारे विश्व को ढक देती है। तब सर्वत्र अन्धकार छा जाता है।

व्याकरण – **महित्वम्** – मह + इन् = महि, महि + त्व =महित्व। **मध्या**– मध्य शब्द का सप्तमी विभक्ति एकवचन का वैदिक रूप। लोक में मध्ये बनता है। **कर्तो:**– षष्ठी विभक्ति, एकवचन। **संजभार**– सम् उपसर्ग पूर्वक ''हृञ् हरणे'' धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष, एकवचन। 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' से ह को भ आदेश होकर संजभार बना। **अयुक्त** – ''युजिर् योगे'' धातु से लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन = युक्त। न युक्तं अयुक्तम्, नञ् समास। **सधस्थात्** – सह + स्था से ''घञर्थे कविधानम्'' से क प्रत्यय ''सधमाधस्योश्छन्दसि'' से सह को सध आदेश। **सिमस्मै** = सिम शब्द सर्वनाम है, और सर्वशब्द का पर्यायवाची है। चतुर्थी विभक्ति एकवचन। **रात्री**– रात्रि + 'ङीप्' इति।

सुभाषित – ''**कर्तो: मध्या विततं संजभार तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्**'' काम करने वालों का काम पूरा भी नहीं हो पाता कि सूर्यनारायण बीच में ही अपनी विस्तृत किरणों को समेट लेते हैं। यही सूर्य का देवत्व और महत्त्व है।

तन्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्याभि॒चक्षे॒ सूर्यो॑ रू॒पं कृ॑णुते॒ द्योरु॒पस्थे॑।
अ॒न॒न्तम॒न्यद्रुश॑दस्य॒ पाज॑: कृ॒ष्णम॒न्यद्ध॒रित॒: सं भ॑रन्ति॥ ५॥

अन्वयः – तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्योः उपस्थे रूपम् कृणुते। अस्य हरितः अनन्तम् रुशत् पाजः सम् भरन्ति अन्यत् कृष्णम्।

शब्दार्थः – तत् = वह, **मित्रस्य वरुणस्य** = मित्र और वरुण का (स्वरूप), **अभिचक्षे** = देखने के लिये, **सूर्यः** = सूर्य, **द्योः** = द्युलोक के, **उपस्थे** = मध्य में, **रूपम्** = अपना तेजोमय रूप, **कृणुते** = प्रकट करता है। **अस्य** = इसकी, **हरितः** = किरणें, या हरे रंग के घोड़े, **अनन्तम्** = अनन्त, अपार, **रुशत्** = तेजस्वी, **अन्यत्** = एक ऐसा रूप, **पाजः** = बल को, तेज को, **संभरन्ति** = धारण करती हैं या निष्पन्न करती हैं, **अन्यत्** = और दूसरा तेजसे भिन्न, **कृष्णम्** = काले अन्धकार का रूप धारण करती हैं।

अनुवाद – मित्र और वरुण का स्वरूप देखने के लिए सूर्यदेव, द्युलोक के मध्य में अपना तेजोमय रूप प्रकट करते हैं। इनकी किरणें या हरे रंग के अश्व एक ऐसा अनन्त तेजस्वी रूप धारण करती हैं। और दूसरा तेज से भिन्न कालारूप रात्रि के समय धारण करती हैं।

भावार्थ – द्युलोक पर आकर सूर्यदेव सर्वत्र प्रकाश करते है और अस्त होने के बाद सर्वत्र अन्धकार फैलाते हैं। प्रकाशमय दिन और अन्धकारमयी रात्रि ये दोनों रूप एक ही सूर्य के हैं। सूर्यदेव द्वारा होने वाले ये कालखण्ड हैं। अर्थात् दिन और रात्रि के चक्र को सूर्यदेव ही प्रवर्तित करते हैं।

टिप्पणी – यहाँ मित्र और वरुण शब्द सूर्य और चन्द्र के वाचक हैं। ये संसार में ओज और रस प्रदान करते हैं। वरुण शक्ति रस को संचित करता है तथा मित्र शक्ति उसका ओषधियों में विस्तार करती है। **व्याकरण** – **अभिचक्षे** – अभि उपसर्ग पूर्वक "चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि" धातु से क्विप् प्रत्यय। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। **द्योः** = द्यो शब्द की षष्ठी विभक्ति का एकवचन। यह वैदिक रूप है। **उपस्थे** – उप उपसर्ग पूर्वक "ष्ठा गतिनिवृत्तौ" धातु से 'क' प्रत्यय = उपस्थ। सप्तमी विभक्ति एकवचन। **पाजः** = "पा" रक्षणे धातु से असुन् प्रत्यय पा + असुन् "पातेर्बलेर्जुट्" से जुट् का आगम। पाति रक्षति स्वं स्वीयान् वा इति पाजः। **रुशत्** – "रुश् दीप्तौ" + शतृ प्रत्यय।

अ॒द्या दे॑वा॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ निरंह॑सः पिपृता निर॑व॒द्यात्।
तन्नो॑ मि॒त्रो व॑रुणो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥६ ॥

अन्वयः – देवाः। अद्य सूर्यस्य उदिता अंहसः अवद्यात् निष्पिपृता। नः तत् मित्रः वरुणः, अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्

शब्दार्थः – देवाः = हे देवो! या हे प्रदीप्त होती हुई सूर्य की किरणो! **अद्य** = आज, **सूर्यस्य** = सूर्य के, **उदिता** = उदय होने पर, **अंहसः** = पाप से, **अवद्यात्** = निन्दा योग्य कर्म से हमारी, **निष्पिपृत** = रक्षा करो, **नः तत्** = हमारी, इस प्रार्थना का, **मित्रः** = मित्र (हिंसा से रक्षा करने वाले सूर्य), **वरुणः** = वरुण (आवरणशक्ति से युक्त वरुणदेव), **अदितिः** = अदिति (अखण्डनीय शक्ति सम्पन्ना देवमाता), **सिन्धुः** = सिन्धु (जलाभिमानी देवी) **पृथिवी** = पृथ्वी (भूलोक की धारणशीला शक्ति), **उत** = और, **द्यौः** = द्युलोक की अधिष्ठात्री शक्ति, **मामहन्ताम्** = अनुमोदन करें।

अनुवाद – हे देवो! या हे प्रदीप्त होती हुई सूर्य की किरणो! आज सूर्योदय होने पर पाप और निन्द्य कर्म से हमारी रक्षा करो। हमारी इस प्रार्थना का मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक की अधिष्ठात्री शक्ति अनुमोदन करें।

भावार्थ – सूर्यदेव मानवों के संरक्षक हैं। वे आपत्तियों और संकटों से हमारी रक्षा करते हैं। अतः यह सबके लिए उपासना योग्य हैं। सूर्य जैसे सबको प्रकाश का मार्ग दिखाते हैं, उसी प्रकार वेदवित् विद्वान् सबको सच्ची उन्नति का मार्ग दिखावे। मानव के सामने सूर्यदेव का आदर्श वेद ने रखा है। सावित्री की उपासना का भी यही तत्त्व है।

व्याकरण – 1. अद्या = यहाँ "निपातस्य च" सूत्र से दीर्घ हुआ। **2. उदिता** = उत् उपसर्ग पूर्वक इण् गतौ धातु से क्त प्रत्यय उत् + इण् + क्त = उदित। सप्तमी विभक्ति, एकवचन का वैदिक रूप = उदिता। **3. अंहसः** = अम् + अहन्+ असुन् = अंहस्। पञ्चमी विभक्ति, एकवचन। **4. पिपृता** = "पृ पालनपूरणयोः" धातु से, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **5. मामहन्ताम्** = "मह पूजायाम्" धातु से लोट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

ooo

५. विष्णु सूक्त

मण्डल १ सूक्त-१५४
ऋषि-दीर्घतमा देवता-विष्णु छन्द-त्रिष्टुप्

संहिता-पाठ :

विष्णो॒र्नु कं॑ वी॒र्या॑णि॒ प्र वो॑चं॒ यः पार्थि॑वानि विम॒मे रजां॑सि।
यो अस्क॑भाय॒दुत्त॑रं स॒धस्थं॑ विचक्रमा॒णस्त्रे॒धोरु॑गा॒यः ॥ १ ॥

अन्वयः– यः पार्थिवानि रजांसि विममे उरुगायः यः त्रेधा विचक्रमाणः उत्तरम् सधस्थं यः अस्कभायत् विष्णोः वीर्याणि कं नु प्रवोचम् ॥

शब्दार्थः-**यः**= जिसने, **पार्थिवानि** = पृथ्वी के, पृथ्वी सम्बन्धी, **रजांसि** = रजकणों को, लोकों को, **विममे** =विशेष रूप से बनाया, **उरुगायः**=महान् व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित या स्तुत्य, **यः**=जिस देव ने (श्रीविष्णु ने) **त्रेधा**=तीन प्रकार से या तीन कदमों में, **विचक्रमाणः**=लांघते हुए, **उत्तरं सधस्थम्**=अत्युत्कृष्ट द्युलोक को, पृथ्वी आदि सप्तलोकों को, **अस्कभायत्**=स्तम्भित किया या थाम रखा, **विष्णोः**=उस (श्रीविष्णु) व्यापक देव के, **वीर्याणि**=पराक्रमों को, वीर कार्यों को, **कम्**=अतिशीघ्र, **प्रवोचम्**=कहता हूँ।

अनुसार – जिसने पृथ्वी के लोकों को विशेषरूप से बनाया तथा महान् व्यक्यिों द्वारा प्रशंसित या स्तुत्य जिस देव (श्रीविष्णु) ने तीन प्रकार से या ३ कदमों से त्रिलोकी को लाँघते हुए अत्युत्कृष्ट पृथ्वी आदि सातलोकों को थाम रखा है। उन व्यापक देव (श्रीविष्णु) के पराक्रमों का मैं दीर्घतमा अतिशीघ्र वर्णन करता हूँ।

भावार्थ – द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक यह सारे लोक श्रीविष्णु

पर आधारित हैं और इसी के कारण टिके हुए हैं। श्रीविष्णु बड़े पराक्रमी हैं। इनके पराक्रमों का वर्णन एवं उनका अनुसरण करना चाहिए।

टिप्पणी- मैं विष्णु के वीरता-पूर्ण कार्य का शीघ्र ही कीर्त्तन करूँगा उन्होंने वामनावतार में तीनों लोकों को मापा था। उन्होंने सत्यलोक को स्तम्भित किया था। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था। संसार उनकी बहुत स्तुति करता है।

व्याकरण- **विष्णोः**- ''विष्लृ व्याप्तौ धातु'' से विष् + नु = विष्णु। षष्ठी विभक्ति एकवचन। **प्रवोचम्** – प्र उपसर्गपूर्वक वच् धातु, लङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **पार्थिवानि** – पृथ्वी + अण् आदि वृद्धि = पार्थिव। **विचक्रमाणः** – वि उपसर्ग + क्रम् धातु। **उरुगायः** – ''उरुभिः गीयते'' अर्थ में उरु + गै + अच् = उरुगायः।

प्र तद् विष्णु॑ः स्तवते वी॒र्ये॑ण मृगो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः।
य॒स्योरुषु॑ त्रि॒षु विक्रम॑णेष्वधिक्षियन्ति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑॥२॥

अन्वयः - यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति तत् विष्णुः वीर्येण कुचरः गिरिष्ठाःभीमः मृगः नः प्रस्तवते।

शब्दार्थः – **यस्य** = जिस श्रीविष्णु के, **उरुषु** = अत्यन्त विस्तृत, **त्रिषु** =तीन, **विक्रमणेषु** = कदमों में, **विश्वा** =समस्त, सम्पूर्ण, **भुवनानि** =भुवन, लोक, **अधिक्षियन्ति** =रहते हैं, **तत्**=वह, **विष्णुः** = व्यापक देव, **वीर्येण** = अपने पराक्रम से, **कुचरः** = हिंसादि कुत्सित कर्म करने वाले, या दुर्गम स्थान पर जाने वाले, **गिरिष्ठाः** = पर्वत आदि ऊँचे स्थानों में रहने वाला, पर्वतचारी, **भीमः** =भयानक, **मृगः न** =सिंह, शेर के समान, **प्रस्तवते** = सर्वत्र स्तुत होता है। अर्थात् उनकी स्तुति की जाती है।

अनुवाद = जिन भगवान् विष्णु के अत्यन्त विस्तृत तीन कदमों में समस्त भुवन (लोक) रहते हैं, वह (श्रीविष्णु) व्यापक देव अपने पराक्रम से हिंसादि कुत्सित कर्म करने वाले या दुर्गम स्थान पर जाने वाले, पर्वतचारी, भयानक शेर के समान सर्वत्र स्तुत होता है।

भावार्थ- यह व्यापकदेव तीन कदमों में सारे भुवनों को व्याप लेता है। उदय के समय वामनरूपी भगवान् विष्णु अर्थात् सूर्य अपनी किरणों से द्यु-अन्तरिक्ष और भू इन तीनों लोकों को व्याप कर प्रकाशित करता है। सूर्य विश्व का आधार है। इसी से संसार प्राणशक्ति प्राप्त करता है। अतः यह विश्व का आत्मा है। यह अपने पराक्रम के कारण सर्वत्र उसी प्रकार प्रशंसित होता है, जैसे गुफाओं में रहने वाला भयंकर सिंह।

व्याकरण- स्तवते ='ष्टुञ् (स्तु) स्तुतौ' धातु से कर्म कारक में लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **कुचरः** =कु + चर् +ट = कुचरः। **मृगः** = मार्ष्टि गच्छतीति अन्विषतीति मृगः। मृज् +क =मृग वा मृ+ गम् + अ =मृग। **गिरिष्ठाः** = गिरिषु तिष्ठतीति गिरिष्ठाः। गिरि +स्था +क्विप् = गिरिष्ठ। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। **विश्वा** = प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। लोक में विश्वानि रूप होगा।

सुभाषित- **''यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते''**-जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं, वे श्रीविष्णु अपने पराक्रम से सर्वत्र प्रशंसित होते हैं।

प्र विष्ण॑वे शू॒षमे॑तु मन्म॑ गिरि॒क्षित॑ उरुगा॒याय॒ वृष्णे॑।
य इ॒दं दी॒र्घं प्रय॑तं स॒धस्थ॒मेको॑ वि॒ममे त्रि॒भिरित् प॒देभिः॑ ॥३॥

अन्वयः- यः एकः त्रिभिः पदेभिः इत इदम् दीर्घम् प्रयतम् सधस्थम् विममे, गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे शूषम् मन्म प्र एतु।

शब्दार्थ- यः एकः=जिन्होंने अकेले ही, **त्रिभिः** =तीन, **पदेभिः** =कदमों से, **इदम्**=इस, **दीर्घम्**=विस्तृत, **प्रयतम्**=नियत, या नियमों में बंधा हुआ, **सधस्थम्**=सभी के सम्मिलित स्थान त्रिलोक को, **विममे**=नाप लिया था, **गिरिक्षिते**=वाग्देवता, पर्वतवत् ऊँचें प्रदेशों में रहने वाले, **उरुगायाय**=बहुतों से प्रशंसित या स्तुत, **वृष्णे** =सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले या जल बरसाने वाले, **विष्णवे** =भगवान् विष्णु के लिए हमारे, **शूषम्**=बल से युक्त, **मन्म**=स्तुति योग्य, मननीय, **स्तोत्र प्र एतु** =पहुँचे।

अनुवाद – जिन्होने अकेले ही तीन कदमों से इस विस्तृत एवं नियत, नियमों से बँधे हुए सभी के सम्मिलित स्थान त्रिलोक को नापा था। उन

वाग्देवता या पर्वत की तरह उन्नत प्रदेशों में निवास करने वाले, बहुतों से प्रशंसित या स्तुत, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु के लिए हमारी यह बलयुक्त स्तुति पहुँचे।

भावार्थ – जिस प्रकार उदित सूर्य त्रिलोक को माप लेता है। अर्थात् अपनी किरणों से प्रकाशित करता है। उसी प्रकार त्रिलोकी को मात्र तीन कदमों से मापने वाले, उन महान् भगवान् विष्णु की मैं दीर्घतमा अपनी पूरी शक्ति से स्तुति करता हूँ।

व्याकरण– **शूषम्** = शूष् + घञ् = शूष। **मन्म** = मन् ज्ञाने धातु से मनिन् प्रत्यय = मन् + मनिन् । **गिरिक्षते** =गिरि + क्षि + क्विप् =गिरिक्षित्। **वृष्णे** = वेद में चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **सुभाषित– ''एकः इत् इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं विममे–''** यह श्रीविष्णु अकेले ही इस लम्बे चौड़े विशाल एवं व्यापक द्युलोक को या लोकत्रय को नाप लेते हैं।

यस्य॒ त्री पूर्णा मधु॑ना प॒दान्यक्षी॑यमाणा स्व॒धया॒ मद॑न्ति।
य उ॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीमुत द्यामेको॑ दा॒धार॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑॥४॥

अन्वयः यस्य मधुना पूर्णा त्री पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति, यः त्रिधातु पृथिवीम् उत द्याम् विश्वा भुवनानि एकः दाधार ।

शब्दार्थः–यस्य = जिस भगवान् विष्णु के, **मधुना** =दिव्य अमृत से, **पूर्णा** = पूर्ण, **त्री पदानि** = तीन कदम, **अक्षीयमाणा** =कभी नष्ट न होते हुए, **स्वधया** =अन्न के द्वारा या स्व तेजोबल से युक्त, **मदन्ति**=आनन्दित करते हैं। **यः**=जो, अकेले ही। **त्रिधातु** = पृथिवी–जल–तेज तीन धातुओं से युक्त बनाता हुआ, **पृथिवीम्** =पृथ्वीलोक को, **उत**=और, **द्याम्** =द्युलोक को, **विश्वा**=सम्पूर्ण, **भुवनानि**=भुवनों को, **एकः** =अकेला ही, **दाधार**=धारण करता है।

अनुवाद – जिस भगवान् विष्णु के दिव्य अमृत से पूर्ण, तीन कदम कभी नष्ट न होते हुए अन्न के द्वारा या स्वतेजो बल से आनन्दित करते हैं। जो पृथिवी–जल–तेज इन तीनों धातुओं से युक्त भूलोक और द्युलोक तथा सम्पूर्ण भुवनों को (अन्तरिक्षलोक सहित) अकेला ही धारण करता है।

भावार्थ – भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्षलोक यह भगवान् विष्णु के तीन कदम है। इन कदमों (पदों) से भगवान् विष्णु सर्वत्र सञ्चार करते हैं। वे भगवान् विष्णु सत्त्व-रज और तमोरूप, तीन धातुओं, पृथिवी द्यु आदि लोकों और सारे विश्वों को धारण करते हैं।

व्याकरण– 1. **त्री**- त्रि शब्द जस् प्रत्यय। त्रि + जस्, जस् का लोप। त्रि को दीर्घ=त्री। यह वैदिकरूप है। लौकिकरूप त्रीणि होगा। 2. **पूर्णा**- वैदिक व्याकरण के अनुसार पूर्णा होगा। लोक में पूर्णानि बनेगा। 3. **मदन्ति**-'मद हर्षे' धातु से लट् लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन। यह वैदिकरूप है। लोक में मदयन्ति रूप बनेगा। 4. **विश्वा**- यह वैदिक रूप है लोक में विश्वानि होगा। **सुभाषित**– **''मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति''** भगवान् विष्णु के अमृत से भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए, अपनी धारण शक्ति से हर्षित होते हैं।

तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अ॒श्यां न॒रो यत्र॑ दे॒वयवो मद॑न्ति।
उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था विष्णो॑ः पदे प॑र॒मे मध्व॒ उत्स॑ः ॥५॥

अन्वयः – देवयवः नराः यत्र मदन्ति, अस्य तत् प्रियम् पाथः अश्याम् इत्था उरुक्रमस्य बन्धूः विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः।

शब्दार्थः- **देवयवः** = भगवान् विष्णु के भक्त, **नराः** =मनुष्य, **यत्र**=जहाँ **मदन्ति** = आनन्दित होते हैं, ऐसे **अस्य**=इन श्रीविष्णु के, **तत्**=उस, **प्रियम्**=प्रिय, **पाथः**=लोक को, मैं **अश्याम्**=प्राप्त करूँ। **इत्था**=ऐसे यह श्रीविष्णु, **उरुक्रमस्य**=परम पराक्रमी व्यक्ति का, **बन्धूः**=बन्धु होता है, **विष्णोः**=श्रीविष्णु के, **परमे पदे**=परम स्थान में, **मध्वः उत्सः**=अमृत का झरना बहता है।

अनुवाद–भगवान् विष्णु के भक्त मनुष्य जहाँ आनन्दित होते हैं, मैं उस प्रिय विष्णुलोक को प्राप्त करूँ। श्रीविष्णु परमपराक्रमी व्यक्ति के बन्धु होते हैं। उनके परमधाम में अमृत का झरना बहता है।

भावार्थ –भगवान् विष्णु के परमधाम में केवल वे ही लोक जा सकते हैं, जो देवत्व प्राप्त कर लेते हैं। इसी को मोक्ष कहते हैं। इस लोक को प्राप्त करके व्यक्ति मोक्षानन्द या ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति विष्णुलोक

में जाने का उद्योग करता है, उसकी सहायता भगवान् विष्णु स्वयं करते हैं। विष्णुलोक में अमृत का कोष है, अतः देव की कृपा और अपने उद्योगों से जो विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है, वह अमर हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है।

सुभाषित- **1. देवयवः नराः यत्र मदन्ति, अस्य तत् प्रियं पाथः अश्याम्**=देवत्व को प्राप्त करने वाले मनुष्य जहाँ आनन्दित होते हैं, श्रीविष्णु के उस प्रिय स्थान को हम भी प्राप्त करें। **2. उरुक्रमस्य बन्धुः** -श्रीविष्णु पराक्रम करने वाले उद्योगियों के सहायक होते हैं। **3. विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः**- श्रीविष्णु धाम या उत्तम स्थान में अमृत का झरना बहता है। **व्याकरण**- **पाथः**- पा + असुन्। **देवयवः** देव + यु + क्विप् =देवयु। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। **इत्था** = 'इत्थम्' का वैदिक रूप।

तां वां॒ वास्तू॑न्युश्मसि॒ गम॑ध्यै॒ यत्र॒ गावो॒ भूरि॑शृङ्गा अ॒यास॑ः।
अत्राह्॒ तदु॑रुगा॒यस्य॒ वृष्ण॑ः प॒रमं प॒दमव॑ भाति॒ भूरि॑॥६ ॥

अन्वयः- वाम् गम॒ध्यै ता वास्तूनि उश्मसि यत्र भूरिशृङ्गाः गावः अयासः। अत्र अह उरुगायस्य वृष्णः तत् परमम् पदम् भूरि अव भाति।

शब्दार्थः-हे यजमान दम्पती। **वाम्**=तुम दोनों के, **गमध्यै**=जाने के लिए, चलने फिरने के लिए या निवास हेतु हम, **ता**=ऐसे, **वास्तूनि**=घर, या निवास योग्य स्थान, **उश्मसि**=चाहते हैं, **यत्र**=जहाँ, **भूरिशृङ्गा**=बड़े-2 सीगों वाली, या अनेक प्रकार से फैलने वाली, **गावः**=गौएँ, किरणें, **अयासः**=रहती है, या प्रकाश से युक्त हैं। **अत्र**=यहाँ, **अह**=निश्चय से ऐसे ही घरों में, **उरुगायस्य वृष्णः**=अनेकों उपासकों द्वारा स्तुत बलवान् श्रीविष्णु का, **तत्**=वह, **परमम्**=परम **पदम्**=धाम, स्थान, **भूरि**=अत्यन्त, **अवभाति**=प्रकाशित हो रहा है।

अनुवाद- हे यजमान दम्पती! तुम दोनों के निवास हेतु या चलने फिरने के लिए ऐसे घरों की हम कामना करते हैं, जहाँ बड़े-2 सीगों वाली गौएं या अनेक प्रकार से फैलने वाली किरणें रहती हैं। यहाँ निश्चय से अनेकों उपासकों द्वारा स्तुत बलवान् श्रीविष्णु का वह परमधाम अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है।

भावार्थ–मनुष्यों के रहने हेतु ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ सूर्य की किरणें स्वच्छन्दता से आ सकें। जहाँ सूर्य की किरणें आती हैं उस घर में रहने वालों का स्वास्थ्य उत्तम रहता है। क्योंकि सूर्य किरणों में रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति होती है। घरों में गायों के रहने का भी उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उस घर के निवासी दूध और घृत से हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहे। जिस घर में सूर्य की किरणें और गौएँ रहती हैं, वहाँ के लोग हृष्ट पुष्ट और उद्योगी होते हैं। ऐसे स्थान पर व्यापक देव श्रीविष्णु विराजते हैं।

व्याकरण- 1. **ता**=तत् शब्द का यह वैदिकरूप है। लोक में तानि होगा। 2. **गमध्यै**=''गम्लृ गतौ'' धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में वैदिक अध्यैन् प्रत्यय। 3. **उश्मसि**=''वश् कान्तौ'' धातु से लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। यह वैदिक रूप है। 4. **अयासः** = 'इण् गतौ' धातु। इण्+अच्=अय। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। यह वैदिकरूप है। **सुभाषित**- **''वां गमध्यै ता वास्तूनि यत्र भूरिशृङ्गा गावः अयासः''**-हे दम्पती! तुम्हारे निवास के लिए ऐसे घर हों जहाँ अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें प्रविष्ट हो सकें अथवा जहाँ उत्तम सींगों वाली गायें रह सकें। 2. **अत्र अह वृष्णः परमं पदम् अवभाति**-ऐसे उत्तम घरों में बलशाली भगवान् विष्णु का वह श्रेष्ठ स्थान (परमधाम या गोलोकधाम) प्रकाशित होता है।

०००

मण्डल द्वितीय

६. इन्द्र सूक्त

मण्डल २ **सूक्त १२**

ऋषि-गृत्समद **देवता-इन्द्र** **छन्द त्रिष्टुप्**

यो जा॒त ए॒व प्र॑थ॒मो मन॑स्वान्, दे॒वो दे॒वान्क्रतु॑ना प॒र्यभू॑षत्।
यस्य॒ शुष्मा॒द्रोद॑सी॒ अभ्य॑सेतां, नृम्णस्य॑ म॒ह्ना स ज॑ना॒स इन्द्र॑ः॥१॥

अन्वय– हे जनासः! यः मनस्वान् देवः प्रथमः जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत् यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्, नृम्णस्य मह्ना स इन्द्रः।

शब्दार्थ– जनासः = हे मनुष्यो! या हे असुरो। **यः** = जिस। **मनस्वान्** = मनस्वी, **देवः** = दिव्य गुणों से युक्त देव ने, **प्रथमः** = पहले पहल (प्रमुख, परम)। **जातः एव** = उत्पन्न होते ही। **क्रतुना** = अपने कर्म से (वृत्रासुर के वधादि कर्मों से) समस्त। **देवान्** = देवताओं को। **परि अभूषत्** = भूषित कर दिया अर्थात् अलङ्कृत किया। **यस्य** = जिस इन्द्र के, **शुष्मात्** = शारीरिक बल से, **रोदसी** = दोनों लोक (द्युलोक और पृथिवी लोक)। **अभ्यसेतां** = डरते थे, कांपते थे, अपने **नृम्णस्य** = बल के, या सेना के। **मह्ना** = प्रभाव से प्रसिद्ध यही, **सः** = वह इन्द्र है।

अनुवाद– हे मनुष्यो! अथवा हे असुरो! जिस मनस्वी दिव्य गुणों से युक्त देव ने पहले पहल उत्पन्न होते ही अपने कर्म से अर्थात् वृत्रासुर के वधादि कर्मों से समस्त देवताओं को भूषित कर दिया अर्थात्–अलङ्कृत किया था, जिस इन्द्र के शारीरिक बल से दोनों लोक अर्थात् द्युलोक और पृथिवीलोक काँपते थे, (डरते थे,) अपने बल के या सेना के प्रभाव (महत्त्व) से प्रसिद्ध यही वह इन्द्र है।

भावार्थ– बल पराक्रम में इन्द्र की समता करने वाला कोई देवादि नहीं है। इन्द्र अपनी शक्ति से दोनों लोकों (द्युलोक और पृथिवीलोक) को वश में

रखता है। वह अपने बल पराक्रम के कारण ही इन्द्र है। दूसरों के बल के कारण वह इन्द्र नहीं बनता।

टिप्पणी– 1. मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत् = मनस्वी मानव उत्पन्न होते ही अपने कर्म से देवों अर्थात् विद्वज्जनों को अति प्रसन्न करता है। **2. यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्** = जिस इन्द्र के बल एवं पराक्रम के प्रभाव से पृथिवीलोक एवं द्युलोक थरथर काँप (डर) उठते हैं। **3. नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः** = अपने बल के प्रभाव के कारण ही वह इन्द्र है। बल और शक्ति के कारण ही मनुष्य प्रभावशाली होता है। यह इन्द्र सभी प्रकार के युद्धों में अपना बल प्रदर्शित करता है, इसीलिए यह सब देवताओं का राजा है। इसी प्रकार जो मनुष्य शत्रुओं के साथ होने वाले युद्ध में अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है, वही राजा होने योग्य है।

परिचय– इन्द्र सूक्त की रचना के सम्बन्ध में कुछ प्राचीन कथाएँ 'बृहद् देवता' और महाभारत में उपलब्ध होती हैं–महाभारत के अनुसार–गृत्समद ऋषि की यज्ञशाला में इन्द्र अकेला ही आया। अकेला समझ कर दैत्यों ने उसका घेराव कर दिया। तब गृत्समद ऋषि का रूप धारण कर इन्द्र यज्ञशाला से निकल गया। इन्द्र को कुछ समय तक बाहर न निकलता देख दैत्य अन्दर यज्ञशाला में घुस गये। पहले एक गृत्समद को बाहर गया देखकर उन्होंने समझा कि गृत्समद तो पहले चले गये हैं। अब उनका रूप धारण करके यह इन्द्र यहाँ है। अब गृत्समद को इन्द्र समझकर दैत्यों ने उनको पकड़ लिया। तब गृत्समद ने इस सूक्त के द्वारा दैत्यों को इन्द्र का परिचय दिया।

इन्द्रादि देवता राजा वैन्य के यज्ञ में गये। गृत्समद ऋषि भी उसी यज्ञ में पहुँचे। इन्द्र को मारने की इच्छा लिए दैत्य वहाँ आये। दैत्यों को देखते ही इन्द्र ने गृत्समद का रूप धारण किया और वहाँ से निकल गये। राजा वैन्य से सत्कार प्राप्त करके गृत्समद भी वहाँ से निकले। गृत्समद को इन्द्र समझकर दैत्यों ने उनको आ घेरा। तब गृत्समद ने प्रस्तुत सूक्त के द्वारा उनको इन्द्र की गरिमा बताई। "बृहद् देवता" के अनुसार– गृत्समद ऋषि ने महान् तप किया और वे इन्द्र के समान ही महामहिमशाली शरीर वाले हो गये। धुनि और चुमुरि नामक दो शक्तिशाली दैत्य इनको इन्द्र समझकर मारने के लिए आये। उनके अभिप्राय को समझकर गृत्समद ऋषि ने इस सूक्त के मन्त्रों द्वारा उनको इन्द्र का परिचय दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– जनासः = यहाँ वैदिक रूप का प्रयोग है, लोक में जनाः होगा। जन शब्द का प्रथमा बहुवचन। **मनस्वान्** = मनस्+मतुप् = मनस्वत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन। **जातः** = जन्+क्त। **पर्यभूषत्** = परि+भूष् धातु लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **मह्ना** – 'मह् पूजायाम्' धातु से **'इ' प्रत्यय** = महि। तृतीया एकवचन। **अभ्यसेताम्**–भ्यस् धातु (आत्मनेपद) लङ् लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥

अन्वय– जनासः! यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः वरीयः अन्तरिक्षम् विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात् स इन्द्रः।

शब्दार्थ– जनासः = हे लोगो। **यः** = जिसने। **व्यथमानाम्** = काँपने वाली, हिलती हुई। **पृथिवीं** = पृथिवी को। **अदृंहत** = स्थिर कर दिया, दृढ़ किया। **यः** = जिसने। **प्रकुपितान्** = क्रोधित, कुपित हुए, इच्छानुसार इधर–उधर स्वच्छन्द विचरण करते हुए। **पर्वतान्** = पर्वतों को। **अरम्णात्** = नियमित कर दिया था, स्थिर किया। **यः** = जिसने। **वरीयः** = विस्तृत। **अन्तरिक्षं** = आकाश को। **विममे** = माप दिया और। **यः** = जिसने। **द्याम्** = द्युलोक को। **अस्तभ्नात्** = थामा हुआ है। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र ही है।

अनुवाद– हे असुरो! जिसने हिलती हुई अर्थात् काँपने वाली पृथिवी को और उस पर रहने वाले प्राणियों को दृढ़कर दिया अर्थात् स्थिरता प्रदान की थी। जिसने क्रोधित अर्थात् इच्छानुसार इधर–उधर स्वच्छन्द विचरण करते हुए पंखों से युक्त पर्वतों को अपने–अपने स्थान पर स्थिर कर दिया था, जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष की रचना की थी या विस्तार किया था और जिसने द्युलोक को थामा हुआ है, वही इन्द्र है।

भावार्थ– इन्द्र पृथिवी को बसने योग्य करता है, पर्वतों को रमणीय करता है, वह इतना विस्तृत है कि विस्तृत आकाश को भी नाप देता है, और द्युलोक को व्यवस्थित रखता है, वही इन्द्र है।

टिप्पणी– इन्द्र के विषय में इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं कि सृष्टि

के प्रारम्भिक काल में पृथिवी पर बहुत भूकम्प आते थे, इन्द्र ने उनको शान्त किया। पौराणिक कथाओं के अनुसार पहले पर्वत पंखों से युक्त थे। वे उड़कर इधर-उधर चले जाते थे। इससे पृथिवीलोक में हाहाकार हो रहा था। इन्द्र ने पर्वतों को काटकर उनको एक स्थान पर नियमित कर दिया। पर्वतों के वे पंख बादलों के रूप में परिवर्तित हो गये। इसीलिये बादल पर्वतों की ओर जाते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अदृंहत् = दृह् धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अरम्णात्** = अन्तर्भावित ण्यर्थं रम् धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **व्यथमानाम्** = व्यथ् + शानच् (शप् और मुक् का आगम)। **प्रकुपितान्** = प्र+कुप्+(इट्)+क्त = प्रकुपित। **अस्तभ्नात्** = स्तम्भु रोधने, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **वरीयः** = उरु+ईयसुन्। 'उरु' को 'वर' आदेश।

यो ह॒त्वाहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धून् यो गा उ॒दाज॑दपधा ब॒ळस्य॑।
यो अश्म॑नोर॒न्तर॒ग्निं ज॒जान॑ सं॒वृक्स॒मत्सु स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥३॥

अन्वय– जनासः! यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्, यः बलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान, समत्सु संवृक् स इन्द्रः।

शब्दार्थ– जनासः = हे लोगो। **यः** = जिसने। **अहिम्** = मेघ को, वृत्र को, जल रोकने वाले पर्वत को। **हत्वा** = मारकर, हटाकर। **सप्त** = सात। **सिन्धून्** = नदियों को। **अरिणात्** = बहाया। **बलस्य** = बल नामक असुर की। **अपधा** = छिपाई हुए, रोकी गयी। **गाः** =गायों को। **उदाजत्** = बन्धन से मुक्त कर बाहर निकाला था। **यः** = जिसने। **अश्मनोः** = दो पत्थरों के, मेघों के। **अन्तः** = बीच में। **अग्निम्** = अग्नि को। **जंजान** = उत्पन्न किया। **समत्सु** = युद्धों में शत्रुओं का। **संवृक्** = नाशक होता है या विनाश किया था। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र ही है।

अनुवाद– हे असुरो! जिस इन्द्र ने वृत्र को मारकर अर्थात् जल को रोकने वाले पर्वतों को हटाकर सात नदियों को बहाया था, जिसने बल नामक असुर के द्वारा गुफा में छिपाई हुई गायों को बन्धन से मुक्त कर बाहर निकाला था, जिसने दो पत्थरों या मेघों के बीच में अग्नि को उत्पन्न किया था और जो युद्धों में शत्रुओं का नाशक होता है, या जिसने युद्धों में शत्रुओं का नाश किया था वही इन्द्र है।

भावार्थ– इन्द्र अहि असुर को मार कर जल बहाता और बल को मार कर उसकी अधीनता से गायों को छुड़ाता है, वही अग्नि का उत्पादक है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी–हत्वा = हन्+क्त्वा। **अरिणात्** = 'रीङ् प्रस्रवणे' धातु लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **उदाजत्** = 'उत् +अज्' धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अपधा** = अप+धा+अङ्। **अश्मनोः** = अश्+मनिन्= अश्मन्। षष्ठी विभक्ति का द्विवचन। **जजान** = 'जनी प्रादुर्भावे' धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **संवृक्** = सम्+वृज्+क्विप्।

येने॒मा विश्वा॒ च्यव॑ना कृ॒तानि॒, यो दासं॒ वर्ण॒मध॑रं॒ गुहाकः॑।
श्व॒घ्नीव॒ यो जि॑गी॒वाँल्ल॒क्षमाद॑द्, अ॒र्यः पु॒ष्टानि॒ स ज॑ना॒स इन्द्रः॑ ॥४॥

अन्वय– येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि, यः दासम् वर्णम् अधरम् गुहा अकः, यः लक्षम् जिगीवान्, यः अर्यः पुष्टानि श्वघ्नी इव आदत्, जनासः स इन्द्रः।

शब्दार्थ– येन = जिसने। **इमा** = ये। **विश्वा** = सारे लोक। **च्यवना**= हिलने वाले, नश्वर। **कृतानि** = बनाये हैं। **यः** = जिसने। **दासं** = दास। **वर्णं** = वर्ण को। **अधरम्** = नीचे। **गुहा** = गुप्त स्थान में। **अकः** = कर दिया है, डाल दिया है। **लक्षम्** = अभीष्ट को। **जिगीवान्** = जीत लिया है। **श्वघ्नी इव** = कुत्तों द्वारा शिकार करने वाले व्याध के समान। **अर्यः** = शत्रु के। **पुष्टानि** = पुष्टिकारक पदार्थों को, धनों को। **आदत्** = छीन लिया है। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है।

अनुवाद– हे असुरो! जिसने ये सारे लोक बनाये हैं अर्थात् इन सम्पूर्ण नश्वर भुवनों को स्थिर किया है, जिसने दास अर्थात् शूद्र आदि वर्णों को गुफा आदि गुप्त स्थानों में डाल दिया है। अर्थात् गुप्त स्थानों में स्थापित कर दिया है, अथवा हिंसा करने वाली असुर जाति को नरक में डाल दिया है, जिसने अपने अभीष्ट को अर्थात् लक्ष्य को जीत लिया है और जिसने पुष्टिकारक पदार्थों को शत्रुओं के धनों को छीन लिया है, कुत्तों द्वारा शिकार करने वाले व्याध के समान यह वही इन्द्र है।

भावार्थ– इन्द्र सम्पूर्ण भुवनों को बनाने वाला है और असुरों को नीची

दशा में पहुँचाने वाला है। वह एक बार जो अपना उद्देश्य निर्धारित कर लेता है अथवा लक्ष्य निश्चित कर लेता है, उसे वह प्राप्त कर ही लेता है।

टिप्पणी–यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः– जो अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है, वही ऐश्वर्यवान् हो सकता है। इस प्रकार जो अपने निश्चित लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है वही ऐश्वर्य को भी प्राप्त कर सकता है। अपने शत्रुओं को पराजित कर ऐश्वर्य प्राप्ति ही इन्द्र का अभीष्ट लक्ष्य है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अकः** = कृ धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **आदत्** = वैदिक रूप है। आ+दा धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **इमा, विश्वा** = इमानि तथा विश्वानि का छान्दस रूप। **च्यवना** = च्यु+ल्युट् (अन) = च्यवन। प्रथमा विभक्ति बहुवचन (नपुंसकलिङ्ग) लोक में च्यवनानि बनेगा। **श्वघ्नी** = श्व+हन्। **पुष्टानि** = पुष्+क्त=पुष्ट। **अर्यः** = अरि शब्द, षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **गुहा** = सप्तमी विभक्ति का एकवचन। **जिगीवान्** = 'जि जये' धातु से क्वसु प्रत्यय।

यं स्मा॑ पृ॒च्छन्ति॒ कुह॒ सेति॑ घो॒रम् उ॒तेमा॑हु॒र्नैषो अ॒स्तीत्ये॑नम्।
सो अ॒र्यः पु॒ष्टीर्विज॑ इ॒वा मि॑नाति॒ श्रद॑स्मै धत्त॒ स ज॑नास॒ इन्द्र॑ः ॥५॥

अन्वय– कुह सः इति यम् घोरम् पृच्छन्ति स्म, उत ईम् एषः न अस्ति इति आहुः, सः विजः इव अर्यः पुष्टीः आ मिनाति, श्रत् अस्मै धत्त, जनासः स इन्द्रः।

शब्दार्थ– (लोग) **यं स्म** = जिस। **घोरं** = भयदायक इन्द्र के सम्बन्ध में। **पृच्छन्ति** = पूछते हैं। **सः** = वह। **कुह इति** = कहाँ है ? **उत** = और। **ईम् एनम्** = और निश्चय से जिसके विषय में। **आहुः** = कहते हैं। **एषः** = यह। **न अस्ति इति** = नहीं है। **सः** = वह इन्द्र। **विजः इव** = वीर के समान, विजेता के समान। **अर्यः** = शत्रुओं की। **पुष्टीः** = पोषक सम्पत्तियों को। **आ मिनाति**= नष्ट करता है। **जनासः** = हे लोगो। **अस्मै** = इसके लिए। **श्रत्** = श्रद्धा का भाव। **धत्त**= धारण करो।

अनुवाद– वह कहाँ है? इस प्रकार जिस भयदायक इन्द्र के सम्बन्ध में लोग पूछते रहते हैं और निश्चय ही जिसके विषय में यह नहीं हैं, इस प्रकार

कहते हैं। वह वीर के समान उस इन्द्र के न मानने वाले शत्रुओं की पुष्टि देने वाली अर्थात् पोषक सम्पत्तियों को नष्ट करता है। हे लोगो! इस इन्द्र के लिए श्रद्धा को धारण करो। हे असुरो वही इन्द्र है।

भावार्थ– असुर लोग इन्द्र को नहीं मानते, न उसकी पूजा करते हैं। इसलिये वह उन अविश्वासियों का धन और बल नष्ट कर देता है। इसलिए मनुष्यों को चाहिये कि वे इन्द्र पर श्रद्धा रखें।

टिप्पणी– सः इन्द्रः अर्यः पुष्टीः आ मिनाति–वह इन्द्र शत्रुओं की धन सम्पत्ति को नष्ट कर देता है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अर्यः** = अरि शब्द, षष्ठी विभक्ति। वैदिक रूप। **सेति** = सः + इति। 'सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्' सूत्र से पादपूर्त्ति के लिए विसर्ग का लोप। **कुह** = किम् + ह (वैदिक प्रत्यय) **पुष्टीः** = पुष+क्तिन्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। **मिनाति** = 'मीञ् हिंसायाम्' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यो र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो नाध॑मानस्य की॒रेः।
यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शिप्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑ना॒स इन्द्र॑ः ॥६ ॥

अन्वय– यः रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यः नाधमानस्य कीरेः ब्रह्मणः सुशिप्रः यः युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य अविता जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ– यः = जो। **रध्रस्य** = धन-सम्पन्न और। **चोदिता** = प्रेरक है। **यः** = जो। **कृशस्य** = दरिद्र का तथा। **यः** = जो। **नाधमानस्य** = भक्त या याचना करने वाले। **कीरेः** = कवि का, स्तुति करने वाले का। **ब्रह्मणः** = ब्राह्मण का, ज्ञानी का। **सुशिप्रः** = सुन्दर शिरस्त्राण धारण करने वाला, सुन्दर ठोड़ी वाला। **यः** = जो। **युक्त ग्राव्णः** = अभिषव करने के लिए पत्थरों को तैयार रखकर। **सुतसोमस्य** = सोम बनाने वाले यजमान का। **अविता** = रक्षक है। **जनासः** = हे लोगो! **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है ।

अनुवाद– हे लोगो! जो धन-सम्पन्न अर्थात् समृद्धिशाली व्यक्ति को प्रेरणा देने वाला है, जो दरिद्र अर्थात् निर्धन को प्रेरणा देने वाला है, जो याचना करने वाले और स्तुति करने वाले ज्ञानी को प्रेरणा देने वाला है और जो सुन्दर शिरस्त्राण धारण करने वाला, अर्थात् सुन्दर बेड़ी वाला जो अभिषव करने के

लिए पत्थरों को तैयार रखकर, सोमरस को निचोड़ने वाले यजमान की रक्षा करता है, वह इन्द्र ही है।

भावार्थ– इन्द्र अपने स्तोता का प्रेरक है और सोमयाग बनाने वाले का रक्षक है। वह अपने साथियों का सदा ध्यान रखता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– कृशस्य = कृश्+क (अ) = कृश। षष्ठी का एकवचन। **रध्रस्य** = रध हिंसासंराद्धयोः धातु से 'र' प्रत्यय। **चोदिता** = चुद् + (इट्) + तृच् = चोदितृ। प्रथमा का एकवचन। **ब्रह्मणः** = बृह्+मनिन् ब्रह्मन्। षष्ठी का एकवचन। **नाधमानस्य** = नाधृ+शानच् (मुक् का आगम) षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **कीरेः** = वैदिक रूप। कृ अथवा कीर्त् धातु से 'इ' प्रत्यय। **सुशिप्रः** = शोभनं शिप्रं यस्य सः। **युक्तग्राव्णाः** = युक्ताः ग्रावाणः येन तस्य। युज्+क्त = युक्त।

यस्याश्वा॑सः प्र॒दि॒शि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः।
यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां ने॒ता स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥७॥

अन्वय– अस्य प्रदिशि अश्वासः, यस्य गावः, यस्य ग्रामाः, यस्य विश्वे रथासः, यः सूर्यम्, य उषसम् जजान, यः अपाम् नेता, जनासः। स इन्द्रः।

शब्दार्थ– यस्य = जिसकी आज्ञा में। **प्रदिशि** = अनुशासन में। **अश्वासः** = घोड़े हैं। **यस्य** = जिसकी आज्ञा में। **गावः** = गायें हैं। **यस्य** = जिसकी आज्ञा में। **ग्रामः** = गाँव है। **यस्य** = जिसकी आज्ञा में। **विश्वे** = सारे, सब। **रथासः** = रथ हैं। **यः** = जिसने। **सूर्यम्** = सूर्य और। **यः** = जिसने। **उषसम्** = उषा को। **जजान** = उत्पन्न किया। **जो अपाम्** = जलों का। **नेता** = चलाने वाला, संचालक है। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है।

अनुवाद– हे लोगो! जिसकी आज्ञा में अथवा जिसके अनुशासन में घोड़े रहते हैं, जिसकी आज्ञा में गायें रहती हैं, जिसकी आज्ञा में अथवा अनुशासन में गांव रहते हैं, जिसकी आज्ञा में सारे रथ रहते हैं, जिसने सूर्य और उषा को उत्पन्न किया, तथा जो मेघों में से जलों को लाने वाला है, अर्थात् जलों का संचालक है, वही इन्द्र है।

तोल रखता है, अथवा सब पदार्थों का गुण-धर्म ठीक-ठाक जानता है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् को यथावत् जानने वाला है। वह बड़े-बड़े बलवानों को भी गिरा देता है, पछाड़ देता है। अर्थात् अचल को भी चल बनाने वाला है।

टिप्पणी– 1. **जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते**- वीर लोग इस इन्द्र की सहायता के बिना विजय नहीं पा सकते। 2. **यः अच्युतच्युत् स इन्द्रः**– जो अपने स्थान से न हटने वाले वीर को हटा देता है, वही इन्द्र है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– विजयन्ते** = वि+जि धातु, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **यस्माद् ऋते** = 'ऋते' के योग में पञ्चमी विभक्ति है। **हवन्ते** = 'हेञ्' या 'हू' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **प्रतिमानम्** = प्रति+मा+ल्युट् (अन) **अवसे** = अव+असे (तुमुन् के अर्थ में वैदिक 'असे' प्रत्यय) = अवसे। **युध्यमाना** = युध् + (श्यन्) + (मुक्) + शानच् = युध्यमाना। **अच्युतच्युत्** = अच्युतानां च्यावयिता। च्यु+क्त = च्युत्। न+च्युत = अच्युत+च्यु+क्विप् = च्युत्।

यः शश्व॑तो मह्येनो॒ दधा॑ना॒न् अम॑न्यमाना॒ञ्छर्वा ज॒घान॑।
यः शर्ध॑ते॒ नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥१०॥

अन्वय-यः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् शश्वतः शर्वा जघान, यः शर्धते शृध्याम् न अनुददाति, यः दस्योः हन्ता, जनासः! स इन्द्रः।

शब्दार्थ - शश्वतः = अनेक, बहुतों का। **महि**=बड़े, महान्, अत्यधिक। **एनः**=पाप! **दधानान्**=धारक, धारण करने वाले। **अमन्यमानान्**=विरोधी शत्रु, अवज्ञा करने वाला। **शर्वा**=हिंसक वज्र। **जघान**=मारा, वध कर दिया था। **शर्धते**=हिंसा करने वाले थे, अहंकारी, चुनौती देने वाले को। **शृध्याम्**= गर्व का अवसर उत्साह से युक्त कर्म। **अनुददाति**=देता है। **दस्योः**=दस्यु का। **हन्ता**=नाशक, मारने वाला। **हे जनासः** = लोगो। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है।

अनुवाद-जिसने अत्यधिक पाप को धारण करने वाले और अपनी अवज्ञा करने वाले बहुत से व्यक्तियों अथवा विरोधी शत्रुओं का वज्र से वध कर दिया था, जो हिंसा करने वाले अहंकारी या चुनौती देने वाले व्यक्तियों को उत्साह से युक्त कर्म को नहीं देता है अथवा गर्व का अवसर नहीं देता है, जो दस्युओं का नाशक है, वही इन्द्र है।

भावार्थ–इन्द्र ऐसे बड़े अपराधियों को मार देता है जो उसे न मानकर उसकी आज्ञा को भंग करते हैं। अहंकारियों अथवा अभिमानियों का अभिमान तोड़ता है और दुष्टकर्म करने वाले को दण्ड देता है।

टिप्पणी – यः शर्धते न अनुददाति–यह इन्द्र अंहकारी को कुछ भी नहीं देता। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी–दधानान्** = धा+शानच्। द्वितीया का बहुवचन। **अमन्यमानान्** = मन्+(श्यन्)+(मुक्)+शानच्=मन्यमान। **न+मन्यमान** = अमन्यमान। **शर्वा** = 'शरु' शब्द, तृतीया विभक्ति का एकवचन। **जघान** = हन् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **हन्ता** = हन्+तृच्+हन्तृ=प्रथमा का एकवचन। **शृध्याम्** = शृध्+क्यप्+टाप्=शृध्या। **शर्धते** = शृधु (शृध) + शतृ=शर्धत् चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

शब्दार्थ– यः = जिसने। **महि**=बड़े, महान्, अत्यधिक। **एनः** = पाप। **दधानान्** = धारक, धारण करने वाले। **अमन्यमानान्** = विरोधी शत्रु, अवज्ञा करने वाला। **शश्वतः** = अनेक, बहुतों का। **शर्वा** = हिंसक, वज्र। **जघान** = मारा, वध कर दिया था। **यः** = जो। **शर्धते** = हिंसा करने वाले को, अहंकारी, चुनौती देने वाले को। **शृध्याम्** = गर्व का अवसर, उत्साह से युक्त कर्म। **न**=नहीं। **अनुददाति** = देता है और। **यः** = जो। **दस्योः** = दस्यु का। **हन्ता** = नाशक, मारने वाला है। **जनासः** = हे लोगों। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है।

यः शम्ब॑रं॒ पर्व॑तेषु क्षि॒यन्तं॑ चत्वरिं॒श्यां श॒रद्य॒न्वविन्दत्।
ओ॒जा॒यमा॑नं॒ यो अहिं॑ ज॒घान॒ दानुं॒ शया॑नं॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः ॥११॥

अन्वय – यः पर्वतेषु क्षियन्तम् शम्बरम् चत्वारिंश्याम् शरदि अन्वविन्दत्, यः ओजायमानम् अहिम् दानुम् शयानम् जघान, जनासः। सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – यः=जिसने। **पर्वतेषु**=पर्वतों में। **क्षियन्तम्** = छिपे हुए, निवास करने वाले। **शम्बरम्**=शम्बर नाम के असुर को। **चत्वारिंश्याम्** = चालीसवीं। **शरदि** = शरद ऋतु में। **अन्वविन्दत्** = ढूँढ लिया, खोज कर पा लिया था। **यः** = जिसने। **ओजायमानम्**=बल दिखाने वाले, बल का प्रदर्शन करते हुए। **शयानम्**=सोये हुए को। **अहिम्**=प्रहार करने वाले। **दानुम्** = दनु के पुत्र दानव को। **जघान** = मारा। **जनासः** = हे लोगो। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है

अनुवाद - जिसने अपने डर से पर्वतों में छिप कर निवास करने वाले शम्बर नाम के असुर को चालीसवीं शरद ऋतु में ढूंढ लिया था, और जिसने बल का प्रदर्शन करने वाले उस दनु के पुत्र दानव को सोये हुए को या लेटे हुए को मारा था, वही इन्द्र है।

भावार्थ - इन्द्र के भय से भाग कर शम्बर पर्वत में छिप गया था, वह चालीस वर्ष के बाद पकड़ा गया। वृत्र जल को रोक कर सोया था, उसे इन्द्र ने मारा।

परिचय - यहाँ दिवोदास की कथा का संकेत मिलता है, जिसमें इन्द्र ने दिवोदास को शम्बर नामक असुर से बचाया था। शम्बर के अनेक दुर्गों का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, जिनको इन्द्र ने नष्ट कर दिया था। इन्द्र के अनेक शत्रुओं में शम्बर का नाम मिलता है। कुछ विद्वज्जन शम्बर को वृत्र का पर्यायवाची मानते हैं तो कुछ के मतानुसार ये दोनों असुर अलग-अलग हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-क्षियन्तम् = क्षि+शतृ=क्षियत् द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **चत्वारिंश्याम्** = चत्वारिंशताम् अर्थ में 'तस्य पूरणे डट्'। **ओजायमानम्** = ओजस्+क्यङ् + शानच् = ओजायमान। 'ओजसोऽप्सरसो-नित्यम्' से 'स्' का लोप। **दानुम्** = दनोः अपत्यम् अर्थ में दनु+अण्। **शयानम्** = शी+शानच्+शयान।

यः स॒प्तर॑श्मिर्वृष॒भ स्तुवि॑ष्मान् अ॒वासृज॒त्सर्त॑वे स॒प्त सिन्धू॑न्।
यो रौ॑हि॒णमस्फु॒र॒द्वज्र॑बाहु॒र्द्याम॒रोह॑न्तं स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१२॥

अन्वय-सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् यः सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्। वज्रबाहुः यः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम् अस्फुरत्, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ - सप्तरश्मिः = सात प्रकार के मेघों का नियन्ता, सात किरणों वाले। **वृषभः**=बलवान्, वर्षा करने वाला। **तुविषमान्**=ओजस्वी, शक्तिशाली, बुद्धिमान्। **सर्तवे**=बहने के लिये। **यः** = जिस। **सप्त** = सात। **सिन्धून्**=सिन्धुओं को, जलों को। **अवासृजत्**=बहाया, प्रवाहित किया था। **वज्रबाहु**=हाथ में वज्र रखने वाले। **द्यां** = द्युलोक पर। **आरोहन्तम्**=चढ़ते हुए। **रौहिणम्**=रौहिण नाम के असुर को। **अस्फुरत्**=नष्ट कर दिया, मार दिया। **जनासः** = हे लोगो। **सः** = वह। **इन्द्रः** = इन्द्र है।

अनुवाद - सात प्रकार के मेघों के नियन्ता, वर्षा करने वाले, ओजस्वी या शक्तिशाली और बलवान् जिसने बहने के स्वभाव वाले जलों को बहने के लिए बहाया था अथवा प्रवाहित किया था, और वज्र को हाथ में उठाकर जिस इन्द्र ने द्युलोक में चढ़ते हुए रौहिण नाम के असुर को नष्ट कर दिया था, अथवा मार दिया था, यह वही इन्द्र है।

भावार्थ-इन्द्र ने सात नदियों को बहाया और द्युलोक को घेरने वाले रौहिण नामक असुर को मार दिया। इन्द्र में सात रश्मियां है।

परिचय-वह इन्द्र सात पर्जन्यों का नियन्ता है। तैत्तिरीय आरण्यक में उन सात मेघों का नाम इस प्रकार है- वराहव, स्वतपस्, विद्युन्महस्, धूपि, श्वापि, गृह-मेघ, शिमिविद्वष्। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अस्फुरत्** = स्फुर् धातु, लड़् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **तुविष्मान्** = 'तु गतौ' धातु से 'असुच्' प्रत्यय=तुविष्। तुविष्+मतुप्। **सर्तवे** = 'सृ' धातु से 'तुमुन्' के अर्थ में वैदिक प्रयोग। **आरोहन्तम्** = आ+सह्+शतृ=आरोहत्। द्वितीया का एकवचन।

द्यावा॑ चिदस्मै पृथि॒वी न॑मेते शुष्मा॑च्चिदस्य॒ पर्व॑ता भयन्ते।
यः सो॑मपा नि॑चि॒तो वज्र॑बाहुर्यो वज्रह॑स्त॒ः स ज॑नास॒ इन्द्र॑ः ॥१३॥

अन्वय - अस्मै द्यावा चित् पृथिवी नमेते, अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते। यः सोमपा निचितः वज्रबाहुः, यः वज्रहस्तः, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ = **अस्मै** = इस इन्द्र के लिए। **द्यावा**=द्यौ। **पृथिवी चित्**=और पृथिवी। **नमेते** = झुकती हैं। **अस्य**=इसके। **शुष्मात् चित्**=बल से। **पर्वताः**=पर्वत। **भयन्ते**=डरते हैं। **यः** = जो। **सोमपाः**=सोम पीने वाला। **निचितः**=बलवान्, दृढ़ अङ्गों वाला। **वज्रबाहुः**=वज्र के समान भुजा वाला। **यः**=जो। **वज्रहस्तः**=हाथ में वज्र रखता है। **जनासः**=हे लोगो। **सः**=वह। **इन्द्रः**=इन्द्र है।

अनुवाद- हे लोगो! इस इन्द्र के लिये द्युलोक और पृथिवीलोक भी प्रणाम करने के लिये स्वयं झुक जाते हैं। इस बल से पर्वत भी डरते हैं। जो इन्द्र सोमरस को पीने वाला है, दृढ अङ्गों वाला है, वज्र के समान कठोर भुजाओं वाला है और जो हाथ में वज्र को धारण करता है, वही इन्द्र है।

भावार्थ– इन्द्र द्युलोक, पृथिवी और पर्वतों का भी स्वामी है। सभी लोक इसकी शक्ति को देखकर डरकर उसके सामने झुक जाते हैं। वह हाथ में सदा वज्र रखता है।

टिप्पणी– 1. **द्यावा पृथिवी अस्मै नमेते**=द्युलोक और पृथिवीलोक इस इन्द्र की शक्ति के आगे झुक जाते हैं। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– सोमपाः** = सोमं पिबति अर्थ में सोम+पा+क्विप्। **निचितः** = नि+चि+क्त। **द्यावा चिदस्मै पृथिवी** = द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिवी। द्वन्द्व समास। वैदिक व्यत्यय के अनुसार समस्त पदों के बीच में 'चिदस्मै' पद आ गये हैं। **भयन्ते** = 'भी भये' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन में वैदिक प्रयोग। लोक में 'बिभ्यति' रूप होगा।

यः सुन्वन्त॒म॑वति॒ यः पच॑न्तं॒ यः शंस॑न्तं॒ यः श॑शमा॒नमू॒ती।
यस्य॒ ब्रह्म॒ वर्ध॑नं॒ यस्य॒ सोमो॒ यस्ये॒दं राध॒ः स जना॑स॒ इन्द्र॑ः ॥१४॥

अन्वय– यः सुन्वन्तम् अवति, यः पचन्तम्, यः ऊती शंसन्तम्, यः शशमानम्, ब्रह्म यस्य वर्धनम्, यस्य सोम, यस्य इदम् राधः, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ– यः=जो। **सुन्वन्तम्**=सोमरस निकालने वाले को। **अवति**=रक्षा करता है। **यः**=जो। **पचन्तम्**=हवियों को पकाने वाले की। **यः**=जो। **ऊति**=रक्षा साधनों से। **शंसन्तम्**=स्तोत्र बोलने वाले, स्तुति करने वाले की। **यः**=जो **शशमानं**=उत्तम वाणी का प्रयोग करने वाली की, यज्ञ करने वाले की। **ब्रह्म**=ब्रह्म नामक स्तोत्र। **यस्य**=जिसका। **वर्धनम्**=बढ़ाने का साधन। **यस्य**=जिसका। **सोमः**= सोम। **यस्य**=और जिसका। **इदम्**=वह। **राधः**=धन। **जनासः**=हे लोगो। **सः**=वह। **इन्द्रः**=इन्द्र है।

अनुवाद– जो सोम का रस निचोड़ने वाले अथवा निकालने वाले यजमान की रक्षा करता है। जो पुरोडाश आदि हवियों को पकाने वाले यजमान की रक्षा करता है, जो स्तोत्र पढ़ने वाले या यज्ञ करने वाले यजमान की रक्षा करता है, वृद्धि करने वाले ब्रह्म नामक स्तोत्र जिसको बढ़ाते हैं, सोमरस जिसका बढ़ाने वाला है, यह सब पुरोडाश आदि अन्न जिसके हैं, वही इन्द्र है।

भावार्थ– इन्द्र सोम के सोता, पाचक और अपने स्तोता की रक्षा करता है। स्तोत्र, सोम और दूसरे प्रकार के दान इन्द्र की शक्ति को बढ़ाते है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **पचन्तम्, शंसन्तम्** = पच् और शंस् धातु+शतृ= पचत् और शंसत्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **सुन्वन्तम्** = सु+शतृ (श्नु का आगम और नु के उ को व्), द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **वर्धनम्** = वृध्+ ल्युट् (अन) वर्धन। **राधः** = राध्+असुन्=राधस्। **ऊती** = 'अव रक्षणे' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय और निपातनात् 'ऊति'। चतुर्थी का एकवचन वैदिकरूप। **शशमानम्** = शम्+कानच्।

यः सु॑न्व॒ते प॑च॒ते दु॒ध्र आ चि॒द् वाजं॒ दर्द॑र्षि॒ स कि॒ला॑सि स॒त्यः।
व॒यं त॑ इन्द्र वि॒श्वह॑ प्रि॒यास॑ः सु॒वीरासो वि॒द॒थ॒मा व॑देम॥१५॥

अन्वय– दुध्रः य सुन्वते पचते चित् वाजम् आदर्दर्षि, किल सः सत्यः असि। इन्द्र! वयम् ते प्रियासः सुवीरासः विश्वह् विदर्थम् आ वदेम्।

शब्दार्थ– **दुध्रः**=दुर्धर, अत्यन्त शक्तिशाली, असह्य प्रभाव वाला। **यः** = जो इन्द्र। **सुन्वते**= सोम का यज्ञ करने वाले, सोम का अभिषव करने वाले के लिए। **पचते चित्** = हवियों को पकाने वाले के लिये। **वाजम्**= धन, बल। **आदर्दर्षि**=दान देता है। **सः किल**=निश्चय वह तू। **सत्यः**-सत्य। **असिः** = है। **इन्द्र**=हे इन्द्र देवता। **वयम्**=हम। **प्रियासः**-आपके प्रियपात्र होते हुए। **सुवीरासः** = उत्तम वीरों वाले, श्रेष्ठ पुत्र-पौत्रों से युक्त होते हुए। **विश्वह**=सब दिनों में। **ते**=तेरी। **विदर्थम्**=कीर्ति, स्तुति को। **आ वदेम**=बोला करें, अच्छी तरह से गाते रहें।

अनुवाद– दुर्धर अर्थात् असह्य प्रभाव वाला होता हुआ जो इन्द्र सोम का यज्ञ करने वाले और पुरोडाश आदि हवियों को पकाने वाले यजमान के लिए धन, अन्न या बल को प्रदान करता है, निश्चय से वह तू सत्य ही है, अर्थात् तेरी सत्ता वास्तविक है, अथवा तू सत्य व्यवहार करने वाला है। उत्तम वीरों वाले तुम्हारे प्रियजन अथवा उत्तम पुत्र-पौत्रों से युक्त होते हुए सब दिनों में अर्थात् हम सब तुम्हारी कीर्ति को बोला करें, अथवा तुम्हारी स्तुति को अच्छी प्रकार से गाते रहें।

भावार्थ– इन्द्र सत्य है, उसकी सत्ता है, 'वह नहीं है' ऐसा नहीं कह

सकते। उसका व्यवहार भी सत्यरूप है। वह स्तोताओं और याज्ञिकों को अर्थात् यज्ञ करने वालों को सदा धन अथवा बल दिया करता है।

परिचय – इस प्रस्तुत मन्त्र में वर्णन किया गया है कि इस प्रकार गृत्समद ऋषि की स्तुतियों से प्रसन्न होकर इन्द्र उनके समक्ष प्रस्तुत हुए।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी – **दर्दर्षि** = यङ्लुगन्त, 'दृ' धातु लट् लकार, मध्यमपुरूष, एकवचन। **सत्यः** = अस्+शतृ। अस् के अ का लोप=सत्। सत्+य=सत्य। **प्रियासः, सुवीरासः** = प्र० बहुवचन। वैदिकरूप। लौकिक संस्कृत में प्रियः तथा सुवीराः बनता है। **विदथम्** = 'विद्' धातु वैदिक निपातनात् रूप बना।

ooo

७. रुद्र सूक्त

मण्डल २ **सूक्त ३३**

ऋषि-गृत्समद देवता-रुद्रः छन्द त्रिष्टुप्

आ ते॑ पितर्मरुतां सु॒म्नमे॑तु॒ मा न॒ः सूर्य॑स्य सं॒दृशो॑ युयोथाः।
अ॒भि नो॑ वी॒रो अर्व॑ति क्षमेत॒ प्र जा॑येमहि रुद्र प्र॒जाभि॑ः ॥१ ॥

अन्वय– मरुताम् पितः ते सुम्नम् आ एतु। न सूर्यस्य सदृंशः मा युयोथाः। अर्वति नः वीरः अभिक्षमेत। रुद्र प्रजाभिः प्रजायेमहि।

शब्दार्थ– **मरुताम् पितः** = हे मरुतों के पालक रुद्र!, हे मरुत नामक देवताओं के पिता। **ते सुम्नम्** = तेरा सुख। **आ एतु** = हमें प्राप्त होवे। **सूर्यस्य संदृशः** = हमें सूर्य की उत्तम दृष्टि से। **मा युयोथाः** = दूर न करो, वियुक्त मत करो। **नः वीरः** = हमारे वीर पुत्र। **अर्वति** = शत्रुओं को युद्ध में। **अभिक्षमेत** = परास्त करने में समर्थ हों। **रुद्र** = हे रुद्र। **प्रजाभिः** = प्रजाओं से, सन्तानों के द्वारा। **प्रजायेमहि** = हम विस्तृत हों।

अनुवाद– हे मरुतों के पालक रुद्र! तेरा सुख हमें प्राप्त हो अथवा तुम्हारे द्वारा हमें देने योग्य सुख हम को प्राप्त होवें। तुम हमें सूर्य की उत्तम दृष्टि

अथवा दर्शन से दूर मत करो। शत्रुओं के सम्बन्ध में हमारे वीरपुत्र उनका अभिभव करने में समर्थ हों अर्थात् हमारे वीर पुत्र युद्ध में शत्रुओं को परास्त करें। हे रुद्र! प्रजाओं अथवा सन्तानों के द्वारा हम वृद्धि को प्राप्त होवें।

भावार्थ– हे मरुतों के पालक रुद्र! तेरा सुख हमें हो। तेरे बताये हुए मार्ग पर चलकर हम सुखी हों। हम सूर्य के प्रकाश से कभी दूर न हों। हमें कभी अन्धकार में न रखो। हमारे वीर और पुत्रादि युद्ध में शत्रुओं को परास्त करें। तथा ऐसे वीर पुत्रों के द्वारा हम अपने वंश का विस्तार करते रहें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– पितः = पितृ शब्द, सम्बोधन, एकवचन। **एतु** = इण् गतौ धातु, लोट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **युयोथाः** = 'यू मिश्रणामिश्रणयोः' धातु लङ् लकार, मध्यमपुरुष का एकवचन। छान्दस रूप। **क्षमेत** = क्षम् धातु, विधिलिङ् प्रथमपुरुष, एकवचन। **जायेमहि** = जन् धातु विधिलिङ् उत्तमपुरुष, बहुवचन।

त्वाद॑त्तेभी रुद्र॒ शंत॑मेभिः श॒तं हिमा॑ अशीय भेष॒जेभि॑ः।
व्या१॒॑स्मद्द्वेषो॑ वि॒तरं॒ व्यंहो॒ व्यमी॑वाश्चातयस्वा॒ विषू॑चीः ॥२॥

अन्वय– रुद्र! त्वादत्तेभिः शंतमेभिः शतं हिमाः अशीय। अस्मत् द्वेष विचातयस्व, अंहः वितरम् विषूचीः अमीवाः॥

शब्दार्थ– त्वादत्तेभिः = तुम्हारे द्वारा दिए गए। **शंतमेभि** = सुखकारक, अत्यधिक कल्याण करने वाली। **भेषजेभि** = ओषधियों से। **हिमाः** = हेमन्त ऋतुओं तक। **अशीय** = व्याप्त करें, कर्म करते रहें। **अस्मत् द्वेष** = हमारे द्वेष भावों का, द्वेष करने वालों को। **वितरम्** = दूर करो। **अंहः** = पाप को। **विषूचीः** = नाना प्रकार से शरीर में व्याप्त होने वाले। **अमीवाः** = रोगों को। **विचातयस्व** = नष्ट कर दो।

अनुवाद– हे रुद्र! तेरे दिए गए सुखकारक औषधों से मैं सौ वर्ष कर्म करता रहूँ। अर्थात् तुम्हारे द्वारा दी गई अत्यधिक कल्याण करने वाली औषधियों से हम सौ हेमन्त ऋतुओं तक जीवित रहें। हमसे द्वेषभावों को दूर करो। अथवा तुम हमसे द्वेष करने वालों को नष्ट कर दो, पाप को दूर करो और सारे शरीर में व्याप्त होने वाले रोगों को दूर करके नष्ट कर दो।

भावार्थ– हे रुद्र! तेरे द्वारा दिए गए औषधों से मैं बलवान् बनकर सौ वर्ष तक कर्म करता रहूँ। मैं अन्न आदि खाकर पुष्ट होऊं, और उत्तम कर्म करता रहूँ, और इस प्रकार हर तरह के रोगों से मैं दूर रहूँ, तथा द्वेष और पाप आदि दुर्भावनाओं से भी दूर रहूँ।

सुभाषित –(1) त्वादत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः शतंहिमाः अशीय = हे रुद्र! तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधों से सौ वर्ष तक मैं कर्म करता रहूँ। **(2) अस्मत् द्वेषः अंहः विषूचीः अमीवा चातयस्व** = हमसे द्वेष, पाप तथा सारे शरीर में व्याप्त होने वाले रोगों को दूर करो। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– त्वादत्तेभिः** = त्वया दत्तैः। छान्दस रूप। **अशीय** = अश् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन। **शंतमेभिः, भेषजेभिः** = तृतीया के बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में शंतमैः, भेषजैः रूप बनेंगे। **द्वेषः** = द्विष् + विच् = द्वेष्। द्वितीया का बहुवचन। **विचातयस्व** = णिजन्त चत् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

श्रेष्ठो॑ जा॒तस्य॑ रुद्र श्रियासि॑ त॒वस्त॑मस्त॒वसां वज्रबाहो।
पर्षि॑ णः पा॒रमंह॑सः स्व॒स्ति विश्वा॑ अ॒भी॑ती॒ रप॑सो युयोधि॥३॥

अन्वय– रुद्र! जातस्य श्रिया श्रेष्ठः असि। वज्रबाहो! तवसां तवस्तमः। नः अंहसः पारम् स्वस्ति पर्षि। रपसः विश्वाः अभीतीः युयोधि।

शब्दार्थ– जातस्य = उत्पन्न हुए इस सम्पूर्ण जगत् में। **श्रिया** = अपने ऐश्वर्य से। **तवस्तमः** = सबसे अधिक बलवान् अथवा बलशाली। **तवसाम्** = बलवान् में अथवा बलशाली व्यक्तियों में। **वज्रबाहो** = हाथों में वज्र को धारण करने वाले। **पर्षि** = पार करा दो। **अंहसः** = पापों से। **स्वस्ति** = कल्याणपूर्वक। **विश्वाः** = सभी। **अभीतीः** = आगमनों मार्गों को। **रपसः** = पाप के तरफ जाने वाले। **युयोधि** = पृथक् कर दो, दूर करो।

अनुवाद– हे रुद्र! तुम अपने ऐश्वर्य से सभी उत्पन्न हुए पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ हो। हाथों में वज्र को धारण करने वाले हे रुद्र! तुम बलवान् व्यक्तियों में सबसे अधिक बलवान् हो। तुम हमको पापों से कल्याणपूर्वक पार करा दो और पाप की तरफ जाने वाले सभी मार्गों अथवा आगमनों को हमसे दूर कर दो, अर्थात् पृथक् कर दो।

भावार्थ– यह रुद्र अपने ऐश्वर्य के कारण सबसे श्रेष्ठ है। जो अपनी शक्ति से ही ऐश्वर्यवान् बनता है, वही सर्वश्रेष्ठ बन सकता है, वही बलवानों में बलवान् एवं बलशाली बन सकता है तथा जो पाप की तरफ जाने वाले मार्ग पर कदम नहीं रखता, वही पापों से पार जा सकता है।

सुभाषित– (1) **श्रिया जातस्य श्रेष्ठः असि** = रुद्र अपने ऐश्वर्य के कारण ही उत्पन्न हुए प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। (2) **तवसां तवस्तमः** = बलशालियों में बलशाली है। (3) **रपसः विश्वाः अभीतीः युयोधि** = पाप की तरफ जाने वाले सभी मार्ग हमसे दूर हों। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– जातस्य** = जन् +क्त = जात। षष्ठी एकवचन। **तवस्तमः** = तवस् + तमप् = तवस्तम। **पर्षि** = पृ धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन, वैदिक रूप। **अभीतीः** = अभि + इ + क्तिन् = अभीति। द्वितीया का बहुवचन।

मा त्वा॑ रुद्र चुक्रुधामा॒ नमो॑भि॒र् मा दुष्टु॑ती वृषभ॒ मा सहू॑ती।
उन्नो॑ वी॒राँ अ॑र्पय भेष॒जेभि॑र् भि॒षक्त॑मं त्वा भि॒षजां॑ शृणोमि॥४॥

अन्वय– रुद्र! त्वा नमोभिः मा चुक्रुधाम। वृषभ! दुष्टुती मा सहूती मा। नः वीरान् उत् भेषजेभिः अर्पय। त्वा भिषजाम् भिषक्तमम् शृणोमि।

शब्दार्थ– रुद्र! हे रुद्र। **त्वा नमोभिः** = हम तुझे झूठे नमस्कारों से, अनुचित प्रकार से किये गये नमस्कारों से। **मा चुक्रुधाम** =क्रोधित न करें। **दुष्टुतीः** = बुरी स्तुतियों द्वारा भी तुझे क्रोध युक्त न करें। **वृषभ** = कामनाओं की वर्षा करने वाले, बलवान् इन्द्र। **सहूती मा** = अन्य साधारण लोगों से बुलाकर, छोटे देवताओं के साथ तुम्हारा आह्वान करके भी तुझे क्रोधित न करें। **भेषजेभि नः** = औषधियों से हमारी। **वीरान्** = सन्तानों को, पुत्रादि को। **उत् अर्पय** = संयुक्त करो, बलयुक्त करो। **त्वां भिषजाम् भिषक्तमम्** = तुझे मैं श्रेष्ठ चिकित्सक, उत्तम वैद्यों में उत्तम वैद्य। **शृणोमि** = सुनता हूँ।

अनुवाद– हे रुद्र! हम तुम्हें झूठे नमस्कारों अर्थात् अनुचित प्रकार से किये गये नमस्कारों से क्रोधित न करें। कामनाओं की वर्षा करने वाले, हे रुद्र! हम बुरी स्तुतियों से भी तुमको क्रोधयुक्त अथवा क्रोधित न करें, अन्य साधारण लोगों से बुलाकर अर्थात् अन्य छोटे देवताओं के साथ तुम्हारा आह्वान करके तुमको क्रोधित न करें। तुम हमारे पुत्र आदियों को अथवा हमारी सन्तानों

को औषधियों से बलयुक्त करो, संयुक्त करो। हे रुद्र! मैं तुमको चिकित्सकों अथवा वैद्यों में श्रेष्ठ चिकित्सक अथवा उत्तम वैद्य सुनता हूँ।

भावार्थ– हे रुद्र! हम कभी भी दिखावे के लिए तुझे प्रणाम न करें, अथवा झूठे मन से कभी तुम्हारी स्तुति न करें और इस प्रकार तुम्हें क्रोधित न करें। ढोंग से स्तुति करने पर ईश्वर नाराज होता है, इसलिए परमात्मा की स्तुति हमेशा शुद्ध और पवित्र मन से ही करनी चाहिए। तब वह रुद्र स्तोता एवं उपासक की सन्तानों की हर तरह से रक्षा करता है। परमात्मा सभी वैद्यों से उत्तम वैद्य है, अतः अपनी रक्षा के लिए उसकी शरण में जाना चाहिए।

सुभाषित– (1) त्वा नमोभिः दुष्टुती मा चुक्रुधाम = हे रुद्र! हम तुझे झूठे नमस्कार करके तथा बुरी स्तुतियों द्वारा कभी भी क्रोधित न करें। (2) **त्वां भिषजां भिषक्तमं श्रृणोमि** = हम तुम्हें वैद्यों में उत्तम वैद्य समझते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी – चुक्रुधाम = क्रुध् धातु, लुङ् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **दुष्टुती** = दुस् + ष्टुञ् अभिषवे धातु = दुष्टुती। **सहूती** = ह्वे + क्तिन् = हुति। समाना हुतिः = सहूति। तृतीया का एकवचन, वैदिक रूप। **भेषजेभिः** = भेषज का तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **अर्पय** = णिजन्त ऋ धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

हवी॑मभि॒र्हव॑ते॒ यो ह॒विर्भि॒र व स्तोमे॑भी रु॒द्रं दि॑षीय।
ऋ॒दूद॑रः सु॒ह॒वो मा नो॑ अ॒स्यै बभ्रुः सुशिप्रो॑ रीरधन्म॒नायै॑ ।।५ ।।

अन्वय–.यः हविर्भिः हवीमभिः हवते रुद्रम् स्तोमेभिः अवदिषीय। ऋदूदरः सुहवः बभ्रुः सुशिप्रः अस्यै मनायै नः मा रीरधत्।

शब्दार्थ– हविर्भिः हवीमभिः = हवियों और स्तुतियों से, आह्वानों से। **हवते** = बुलाया या स्तुति किया जाता है। **स्तोमेभिः** = स्तुतियों के द्वारा, स्तोत्रों से। **अवदिषीय** = खण्डित करता हूँ, क्रोध रहित करता हूँ, शान्त करता हूँ। **ऋदूदरः** = कोमल हृदय वाला, कोमल उदर वाला। **सुहवः** = उत्तम प्रकार से बुलाये जाने योग्य। **बभ्रुः** = भरण पोषण करने वाला। **सुशिप्रः** = सुन्दर हनु (ठोडी) वाला। **अस्यै मनायै** = ईर्ष्या के हाथों में देकर। **नः मा रीरधत्** = हमारी हिंसा न करे।

अनुवाद– जो रुद्र हवियों वाले आह्वानों और स्तुतियों से बुलाया जाता है, उस रुद्र को मैं स्तोत्रों से शान्त करता हूँ अर्थात् क्रोधरहित करता हूँ। कोमल हृदयवाला, उत्तम प्रकार से बुलाये जाने योग्य, धारण पोषण करने वाला या भूरे रंग का और सुन्दर हनु वाला, अर्थात् उत्तम रीति से रक्षण करने वाला रुद्र देवता, इस विचार से कि मैं इसको मार डालूँ, वशीभूत होकर हम लोगों की हिंसा न करें।

भावार्थ– जो अनेक प्रकार की हवियों के द्वारा और स्तुतियों के द्वारा बुलाया जाता है, उस रुद्र के क्रोध को मैं शान्त करूं। वह बहुत कोमल हृदय वाला है, अतः जो भी शुद्ध और पवित्र मन से उसकी प्रार्थना करता है, उस पर वह प्रसन्न हो जाता है। ऐसा पवित्र हृदयवाला मनुष्य कभी भी ईर्ष्या के वश में नहीं होता। ईर्ष्या एक ऐसा मानसिक रोग है, जो मनुष्य की हिंसा करता है, पर परमात्मा का उपासक कभी भी ईर्ष्या के वश में नहीं होता, इसलिए वह कभी भी नष्ट नहीं होता।

सुभाषित–**ऋदूदरः अस्यै मनायै नः मा रीरधत्** = कोमल हृदयवाला वह ईर्ष्या के हाथों में हमें सौंपकर हमारी हिंसा न करें। "ऋदूदरो मृदूदरः" (निरु. 6/4) **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– हवते** = ह्वे धातु (कर्मवाच्य), लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **स्तोमेभिः** = स्तोम शब्द, तृतीया विभक्ति, बहुवचन। वैदिक रूप। **दिषीय** = 'दिङ्' 'क्षये' या दो 'अवखण्डने' धातु, लिङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप है। **ऋदूदरः** = ऋदु उदरं यस्य सः। **रीरधत्** = 'रध् हिंसासंराद्धयोः' धातु, लिङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन का ण्यन्त रूप।

उन्मा॑ ममन्द वृष॒भो म॒रुत्वा॑न् त्वक्षी॑यसा वय॒सा नाध॑मानम्।
घृणी॑व च्छा॒या॑मर॒पा अ॑शीया वि॑वासेयं रु॒द्रस्य॑ सु॒म्नम्॥६॥

अन्वय– वृषभः मरुत्वान् नाधमानम् या त्वक्षीयसा वयसा उत् ममन्द। अरपाः घृणीव छायाम् रुद्रस्य सुम्नम् अशीय आविवासेयम्।

शब्दार्थ– वृषभः = बलवान्, कामनाओं की वर्षा करने वाला। **मरुत्वान्** = मरुतों से युक्त। **त्वक्षीयसा** = दीप्तिमान्, तेजस्वी। **वयसा** = अन्न से आयु से। **नाधमा नममा** = याचना करने वाले मुझे। **उत ममन्द** = तृप्त करें।

घृणियाम् = सूर्य की किरणों से सन्तप्त मनुष्य छाया का आश्रय। **इव** = जैसे। **अरपाः** = पाप से रहित होकर। **रुद्रस्य सुम्नम् अशीय** = रुद्र के सुख को प्राप्त करूँ। **आविवासेयम्** = सेवा करूँ।

अनुवाद– बलवान् अर्थात् कामनाओं की वर्षा करने वाला और मरुतों से युक्त रुद्र मांगने वाले मुझ को तेजस्वी अन्न से या आयु से उत्कृष्ट रूप से तृप्त करें। जिस प्रकार सूर्य से संतप्त अर्थात् धूप से पीड़ित व्यक्ति छाया का आश्रय लेता है, उसी प्रकार मैं भी पाप से रहित होकर उस रुद्र के सुख को प्राप्त करूँ और रुद्र की सेवा अथवा परिचर्या करूँ।

भावार्थ– वह बलवान् रुद्र अन्न की याचना करने वाले मुझको दीप्तिमान् अन्न देकर तृप्त करे तथा जिस प्रकार कोई धूप से पीड़ित व्यक्ति मनुष्य छाया में बैठकर सुख प्राप्त करता है, उसी प्रकार मैं पाप से रहित होकर रुद्र की कृपा से सुख को प्राप्त करूँ और रुद्र की सेवा करूँ। मनुष्य सुख या ऐश्वर्य प्राप्त करके घमण्डी न हो जाए, अपितु उस समय भी वह पवित्र मन से भगवान् की भक्ति करें।

सुभाषित–(1) अरपाः रुद्रस्य सुम्नं अशीय = पाप से रहित होकर रुद्र के सुख को प्राप्त करूँ। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– ममन्द** = मदि (मन्द्) धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **मरुत्वान्** = मरुतः अस्य सन्ति। मरुत् +मतुप् (वत्) = मरुत्वत्। **त्वक्षीयसा** = त्वक्ष् + ईयसुन् = त्वक्षीयस् तृतीया का एकवचन। **नाधमानम्** = नाध् + (शप्) + मुक् + शानच् = नाधमान। **अशीय** = अश् धातु, विधिलिङ् , उत्तमपुरुष, एकवचन। **विवासेयम्–वि** + वास् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

क्व॑ १॒स्य॑ ते॑ रुद्र मळ॒याकु॒र्हस्तो॒ यो अस्ति॑ भेष॒जो जला॑षः।
अ॒प॒भ॒र्ता र॒प॑सो॒ दैव्य॑स्या॒भी नु मा॑ वृषभ चक्षमीथाः॥७॥

अन्वय– रुद्र! ते मृळयाकुः स्यः हस्त क्व यः भेषजः जलाषः अस्ति। वृषभ। दैव्यस्य रपसः अपभर्ता मा नु अभिचक्षमीथाः।

शब्दार्थ– ते यः = तेरा जो। **मृळयाकुः** = सुखकारक। **भेषजः** = चिकित्सा करने वाला। **जलाषः** = सुखदायी। **हस्त स्य क्व** = हाथ कहाँ है।

अपभर्ता = दूर करने वाला, नष्ट करने वाला। **दैव्यस्य रेपसः** = दैवीपाप को। **मा अभिचक्षमीथाः** = मेरे अपराधों को शीघ्र क्षमा करो।

अनुवाद– हे रुद्र! तुम्हारा जो रोग दूर करके जीवन देने वाला तथा सुख कारक हाथ है, अर्थात् चिकित्सा करने वाला और सुखदायी है, वह हाथ कहाँ है ? इस हाथ के द्वारा आप मेरी रक्षा करें, यह भाव है। हे बलवान्! अथवा कामनाओं की वर्षा करने वाले हे रुद्र! देवताओं के द्वारा किए गए पाप को नष्ट करने वाले होते हुए आप मेरे अपराधों को शीघ्र क्षमा कर दो।

भावार्थ– रुद्र का हाथ रोगों को दूर करने वाला, जीवन देने वाला, तथा सुखकारक है। रुद्र भगवान् की जिस पर कृपा होती है, वह कभी भी रोगी नहीं होता, अपितु उत्तम जीवन बिताता हुआ सुख से रहता है। दैवी आपत्तियां भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। वह अपने उपासक के अपराध शीघ्र ही क्षमा कर देता है।

सुभाषित– (1) **भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः** = रुद्र का हाथ रोग दूर करने वाला, जीवन देने वाला तथा सुख देने वाला है। **(2) दैव्यस्य रपसः अपभर्ता** = दैवी आपत्तियों को यह दूर करने वाला है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– स्यः** = सर्वनाम त्यद् शब्द, पुल्लिङ्ग, प्रथमा का एकवचन। **जलाषः** = लडयोरभेदः नियम से 'जलं जडतां स्यति खण्डयति' अर्थ में जल + षो अन्तकर्मणि + क = जलाष। **अपभर्त्ता** = अप् + भृ + तृच्। **चक्षमीथाः** = 'क्षमूष् सहने' धातु आत्मनेपदी, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन, वैदिक रूप।

प्र ब॒भ्रवे॑ वृष॒भाय॑ श्विती॒चे म॒हो म॒हीं सु॑ष्टुतिमीर॑यामि।
न॒म॒स्या क॑ल्म॒ली॒कि॒नं नमो॑भिर् गृ॒णी॒मसि॑ त्वे॒षं रु॒द्रस्य॒ नाम॑ ॥८॥

अन्वय – बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महः महीम् सुष्टुतिम् प्र ईरयामि। कल्मलीकिनम् नमोभिः, नमस्य। रुद्रस्य त्वेषम् नाम गृणीमसि।

शब्दार्थ– बभ्रवे = धारण–पोषण करने वाले, भूरे रंग के। **श्वितीचे** = श्वेत रंग को धारण करने वाले। **महः महीम्** = बड़ी से बड़ी, महान् से भी महान्। **सुष्टुतिम्** = सुन्दर स्तुति का। **प्र ईरयामि** = उच्चारण करता हूँ। **नमस्य**

= पूजन कर। **कल्मलीकिनम्** = कान्तिमान्, तेज से प्रदीप्त होने वाले। **गृणीमसि** = स्तुति, संकीर्तन करते हैं। **त्वेषम्** = तेजस्वी, प्रकाशमान्।

अनुवाद– संसार का धारण पोषण करने वाले, या भूरे रंग के, बलवान् अथवा कामनाओं की वर्षा करने वाले और तेजस्वी अथवा श्वेत रंग को धारण करने वाले रुद्र के लिए हम बड़ी से बड़ी सुन्दर स्तुति का उच्च स्वर से उच्चारण करते हैं। हे स्तोता! तुम तेज से प्रदीप्त होने वाले उस रुद्र का नमस्कारों के द्वारा पूजन करके प्रसन्न होवें। हम भी उस रुद्र के उस तेजस्वी नाम की स्तुति करते हैं।

भावार्थ– सब का भरण–पोषण करने वाले बलवान् तथा तेजस्वी पदार्थों में व्याप्त होने वाले रुद्र को महान् से भी महान् स्तुति से प्रसन्न करना चाहिए। वह नमस्कारों से प्रसन्न होता है। वह अग्नि के समान तेजस्वी अथवा कान्तिमान् है। उसके प्रकाशवान् नामों का ध्यान करना चाहिए।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– शिवतीचे = 'शिवता वर्णे' धातु से औणादिक 'इन्' प्रत्यय = शिवति। शिवतिम् अञ्चति अर्थ में क्विन् प्रत्यय = शिवतीचे। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **ईरयामि** = णिजन्त ईर् धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। **कल्मलीकिनम्** = कल्मलीक + इनि = कल्मलीकिन्। द्वितीया का एकवचन। **गृणीमसि** = 'गृ संशब्दने' धातु लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

स्थि॒रेभि॒रङ्गैः॑ पु॒रु॒रूप॑ उ॒ग्रो ब॒भ्रुः शु॒क्रेभिः॑ पिपि॒शे हिर॑ण्यैः।
ईशा॑नाद॒स्य भुव॑नस्य॒ भू॒रेर् न वा उ॑ योषद्रु॒द्राद॑सु॒र्य॑म् ॥९॥

अन्वय– स्थिरेभिः अङ्गैः पुरुरूपः उग्रः बभ्रुः शुक्रेभिः हिरण्यैः पिपिशे। अस्य भुवनस्य भूरे ईशानात् रुद्रात् असुर्यम् न वै उ योषत्।

शब्दार्थ– स्थिरेभिः अङ्गैः = दृढ़ अङ्गों से युक्त। **पुरुरूपः** = अनेक रूपों से युक्त, यजमान आदि आठ मूर्तियों वाला। **उग्रः बभ्रुः** = प्रचण्ड, तेजस्वी। **शुक्रेभिः** = दीप्तिमान्। **हिरण्यैः** = स्वर्णालङ्कारों से। **पिपिशे** = प्रदीप्त होता है। **अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात्** = इस भुवन का भरण पोषण करने वाले तथा सब पर शासन करने वाले। **रुद्रात्** = ईश्वर रुद्र से। **असुर्यम्** = असुरों

को मारने वाला बल। **न वै उ योषत्** = अलग नहीं होता।

अनुवाद– दृढ़ अङ्गों से युक्त, अनेक रूपों से युक्त अर्थात् यजमान आदि आठ मूर्तियों वाला, तेजस्वी और धारण-पोषण करने वाला या भूरे रंग का वह रुद्र पवित्र तेजों से प्रदीप्त स्वर्णालङ्कारों से चमकता है। इस भुवन का भरण-पोषण करने वाले तथा सब पर शासन करने वाले, अथवा इस लोक का पालन करने वाले सबके ईश्वर रुद्र से असुरों को मारने वाला बल निश्चय ही कभी अलग नहीं होता, अर्थात् वह सदा शक्तिशाली बना रहता है।

भावार्थ– दृढ़ अङ्गों वाला, अनेक रूपों वाला, तथा प्रचण्ड रुद्र अपने पवित्र तेजों के कारण और अधिक दीप्तिमान् होता है। वह रुद्र इस भुवन का पालन करने वाला तथा शासक है, अतः उसमें सदा शक्ति रहती है, अर्थात् वह सदा बलिष्ठ रहता है।

सुभाषित–(1) **अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात् असुर्यं न योषत्** = इस भुवन का पालन करने वाले सबके शासक रुद्र से असुरों का विनाशक बल कभी अलग नहीं होता। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– पिपिशे** = 'पिश्' धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **योषत्** = 'यू मिश्रणामिश्रणयोः' धातु से लेट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **असुर्यम्** = 'असु क्षेपणे' धातु 'उर्न्' प्रत्यय अस् + उरन् (उर) = असुर। असुरे साधुः अर्थ में 'तत्र साधुः' से यत् प्रत्यय = असुर्य।

अर्ह॑न् बिभर्षि॒ साय॑कानि॒ धन्वार्ह॑न्निष्कं॒ य॑ज॒तं वि॒श्वरू॑पम्।
अर्ह॑न्नि॒दं द॑यसे॒ विश्व॒मभ्वं॒ न वा ओजी॑यो रुद्र॒ त्वद॑स्ति॥१०॥

अन्वय– अर्हन् सायकानि धन्व बिभर्षि। अर्हन् यजतम् विश्वरूपम निष्कम्। अर्हन् इदम् विश्वम् अभ्वम् दयसे। रुद्र! त्वत् ओजीयः वै न अस्ति।

शब्दार्थ– अर्हन् = योग्यता से। **बिभर्षि** = धारण करता है। **सायकानि** = बाणों को। **धन्व** = धनुष को। **अर्हन् यजतम्** = तू पूजा के योग्य। **निष्कम्** = सोने को धारण करता है। **विश्वरूपम्** = अनेक रूपों वाले। **दयसे** = रक्षा करता है। **विश्वम्** = सम्पूर्ण। **अभ्वम्** = विस्तृत जगत्। **ओजीयः** = अधिक तेजस्वी, ओजस्वी। **त्वत्** = तुम से। **न अस्ति** = और कोई नहीं।

अनुवाद– हे रुद्र! योग्य होते हुए तुम बाणों और धनुष को धारण करते हो। योग्य होते हुए तुम पूजनीय और अनेक रूपों वाले सोने के हार को धारण करते हो। योग्य होते हुये तुम इस सारे विस्तृत जगत् की रक्षा करते हो। हे रुद्र! तुम से अधिक तेजस्वी और कोई नहीं है।

भावार्थ– यह रुद्र बहुत योग्य है, वह धनुष बाण धारण करके धन प्राप्त करता है और अनेक रूपों वाले सोने को प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण अति विस्तृतं जगत् की रक्षा करता है। इसलिए निश्चय ही उससे बढ़कर ओजस्वी और कोई नहीं है।

सुभाषित– (1) अर्हन् इदं विश्वं अभ्वं दयसे = वह योग्य रुद्र इस सम्पूर्ण विस्तृत विश्व की रक्षा करता है। **(2) त्वत् ओजीयः न अस्ति** = इस रुद्र से अधिक ओजस्वी और कोई नहीं है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अर्हत्** = अर्ह् + शत् = अर्हत्। प्रथमा का एकवचन। **यजतम्** = यज्+अतच्= यजत्। **दयसे** = दय् धातु, लट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

ओजीयः = ओजस् + ईयसुन् = ओजीयस्।

स्तु॒हि श्रु॒तं ग॑र्त॒सदं॒ युवा॑नं मृ॒गं न भी॒ममु॑पह॒त्नुमु॒ग्रम्।
मृ॒ळ ज॑रि॒त्रे रु॑द्र॒ स्तवा॑नो॒ऽन्यं ते॑ अ॒स्मन्नि व॑पन्तु सेना॑ः ॥११॥

अन्वय– श्रुतम् गर्तसदम् युवानम् मृगम् न भीमम् उपहत्नुम् उग्रम् स्तुहि। रुद्र! स्तवानः जरित्रे मृळ। ते सेनाः अस्मत् अन्यम् नि वपन्तु।

शब्दार्थ– स्तुहि = स्तुति करो। **श्रुतम्** = प्रसिद्ध। **गर्तसदम्** = रथ में बैठने वाले। **युवानम्** = तरुण, नित्य युवा। **मृगं न भीमम्** = सिंह के समान भयंकर। **उपहत्नुम्** = शत्रु को मारने वाले। **उग्रम्** = वीर, उग्र स्वरूप वाले। **मृळः** = सुखी करो। **जरित्रे** = स्तुति करने वाले को। **स्तवानः** = स्तुति किया जाता हुआ। **ते सेनाः** = तेरी सेनायें। **अस्मत्** = हमसे भिन्न। **अन्यम्** = दूसरे को। **निवपन्तु** = मारें, नष्ट कर दें।

अनुवाद– हे स्तुति करने वाले! तुम प्रसिद्ध रथ में बैठने वाले, तरुण, सिंह के समान भयङ्कर, शत्रु को मारने वाले और उग्र स्वरूप वाले अथवा वीर रुद्र की स्तुति करो। हे रुद्र! स्तुति किए जाते हुए तुम स्तुति करने वाले को

सुखी करो। तेरी सेनायें हमसे भिन्न दूसरे शत्रुओं को ही मारें, अथवा नष्ट कर दें।

भावार्थ– वह रुद्र सर्वत्र प्रसिद्ध, रथ पर आसीन, नित्य युवा और सिंह के समान भयङ्कर है। यह शत्रु को मारने वाला और वीर है, इसकी लोग स्तुति करते हैं, और यह भी स्तुति किया जाता हुआ स्तोता को सुखी करता है। ऐसा रुद्र हमें कभी न मारे, इसके विपरीत जो हमारे शुत्र हैं, उन्हें नष्ट करें।

सुभाषित–(1) ते सेनाः अस्मत् अन्यः नि वपन्तु = तेरी सेनायें हमसे भिन्न जो दूसरे शत्रु हैं, उन्हें ही मारें। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– श्रुतम्** = श्रु + क्त = श्रुत। **गर्तसदम्** = गर्ते सीदति। गर्त + सद् + अच् = गर्तसद। **जरित्रे** = 'जृ' + तृच् (इट् का आगम्) = जरितृ। चतुर्थी का एकवचन। **स्तवानः** = स्तू + शानच् = स्तवान। **वपन्तु** = वप् धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

कु॒मार॑श्चित्पि॒तरं॒ वन्द॑मानं॒ प्रति॑ नानाम रुद्रोप॒यन्त॑म्।
भूरे॑र्दा॑तारं सत्प॑तिं गृणीषे स्तु॒तस्त्वं भे॑ष॒जा रा॑स्यस्मे ॥१२॥

अन्वय– वन्दमानम् पितरम् कुमारः चित्रुद्र! उपयन्तम् प्रति नानाम। भूरेः दातारम् सत्पतिम् गृणीषे। स्तुतः त्वम् भेषजा अस्मे रासि।

शब्दार्थ– पितरम् कुमारः चित् = पिता को पुत्र प्रणाम करता है। **वन्दमानम्** = वन्दना के योग्य, आशीर्वचन देते हुए। **प्रतिनानाम्** = प्रणाम करता है। **उपयन्तम्** = समीप आने वाले। **भूरेः** = अत्यधिक। **सत्पतिम्** = सज्जनों के स्वामी। **गृणीषे** = स्तुति करता हूँ। **स्तुतः** = स्तुति किया गया। **त्वम् अस्मे भेषजा रासि** = तू हमें औषधियां दे।

अनुवाद– हे रुद्र! जिस प्रकार वन्दना के योग्य अर्थात् आशीर्वचन देते हुए पिता को पुत्र प्रणाम करता है, उसी प्रकार समीप आने वाले तुझे मैं प्रणाम करता हूँ। अत्यधिक धन को देने वाले और सज्जनों के स्वामी अर्थात् पालन करने वाले रुद्र मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। हमारे द्वारा स्तुति किये गये तुम हमें औषधियों को दो।

भावार्थ– जिस प्रकार कोई बालक वन्दना के योग्य पिता की वन्दना करता है, उसी प्रकार हम रुद्र को प्रणाम करते हैं अर्थात् प्रार्थना करते हैं, वह रुद्र बहुत अधिक धन देने वाला तथा सज्जनों का पालक है, स्तुत होकर वह रुद्र हर तरह की औषधियां हमें दें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– वन्दमानम् = वन्द् + (शप्) + शानच् = वन्दमान। द्वितीया का एकवचन। **नानाम** = नम् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। पूर्वे का छान्दस दीर्घ। **उपयन्तम्** = उप + इ + शतृ। द्वितीया का एकवचन। **सत्पतिम्** = सतां पालयितारम्। षष्ठी समास। **गृणीषे** = गृ धातु, लट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। छान्दस रूप। **रासि** = रा धातु, लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **अस्मे** = अस्मभ्यम् का वैदिक रूप।

या वो॑ भेष॒जा म॑रुत॒ः शुची॑नि॒ या शंत॑मा वृषणो॒ या म॑यो॒भु।
यानि॒ मनु॒रवृ॑णीता पि॒ता न॒स्ता शं च॒ योश्च॑ रु॒द्रस्य॑ वश्मि॥१३॥

अन्वय– वृषणः मरुतः या वः भेषजा शुचीनि या शंतमा य मयोभु, यानि नः पिता मनुः अवृणीत, ता रुद्रस्य शम् च योश्च वश्मि।

शब्दार्थ– वृषणः मरुतः = हे बलवान् मरुतो। **वः या शुचीनि भेषजा** = तुम्हारी जो शुद्ध, पवित्र औषधियाँ हैं। **या शंतमा** = कल्याण करने वाली हैं। **या मयोभु** = सुख देने वाली है। **यानि नः पिता मनुः** = जिन औषधियों को हमारे पिता मनु ने। **अवृणीत** = स्वीकार किया था, वरण किया था। **शम्** = कल्याण करने वाले, रोगों को शान्त करने योग्य। **योः** = रोगों को दूर रखने वाले। **वश्मि** = चाहता हूँ।

अनुवाद– हे बलवान् मरुतो! जो तुम्हारी शुद्ध या पवित्र औषधियाँ हैं, जो कल्याणकारी हैं और अत्यधिक सुख देने वाली हैं, जिन औषधियों को हमारे पिता मनु ने हमारे लिये वरण किया था। उन रुद्र देवता के कल्याण करने वाले अथवा रोगों को शान्त करने योग्य तथा रोगों को दूर करने वाली औषधियों को मैं चाहता हूँ।

भावार्थ– कामनाओं की वर्षा करने वाले हे मरुत देवताओ! तुम्हारी जो पवित्र, निर्मल, कल्याणकारी और सुखदायक औषधियाँ हैं, जिन्हें मननशील विद्वान् अपने उपयोग में लाते हैं, उन कल्याण की भावना

उत्पन्न करने वाली तथा रोगों को दूर करने वाली औषधियों को मैं चाहता हूँ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **वः** = युष्माकम् का दूसरा रूप। **या, भेषजा, शंतमा** = प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, वैदिकरूप, लोक में यानि, भेषजानि, शंतमानि रूप होगा। **मयोभु** = मयम् + भू + क्विप्। **अवृणीत** = वृ धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **वश्मि** = वश् धातु, लट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

परिणो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ॥१४॥

अन्वय– रुद्रस्य हेतिः न परिवृज्याः। त्वेषस्य मही दुर्मतिः परि गात। मीढ्वः ! स्थिरा मघवद्भ्यः अवतनुष्व। तोकाय तनयाय मृळ।

शब्दार्थ– **रुद्रस्य** = रुद्र के। **हेतिः** = शस्त्रास्त्र। **नः परिवृज्याः** = हमें छोड़ दें। **त्वेषस्य** = तेजस्वी। **दुर्मतिः** = क्रोधवाली, दुःख देने वाली बुद्धि। **मही** = महान्। **परिगात्** = दूसरी जगह चली जाए। **स्थिरा** = दृढ़। **मघवद्भ्यः** = ऐश्वर्य से युक्त, हविरूप धन से सम्पन्न यजमानों के प्रति। **अव तनुष्व** = शिथिल कर दो, विस्तृत मत करो। **मीढ्वः** = सुख देने वाले। **तोकाय** = पुत्रों के लिये। **तनयाय** = पौत्रों के लिये। **मृळ** = सुखी करो।

अनुवाद– रुद्र के शस्त्रास्त्र हमें छोड़ दें, अर्थात् हमारी हिंसा न करें। उस तेजस्वी अर्थात् दीप्तिमान् रुद्र की महान् क्रोध अथवा दुःख देने वाली बुद्धि हमें छोड़ कर दूसरी जगह चली जाए। हे सुख देने वाले रुद्र! अपने दृढ़ रहने वाले धनुषों को ऐश्वर्य से युक्त, अर्थात् हवि रूपी धन से सम्पन्न यजमानों के लिए शिथिल कर दो। हमारे पुत्रों और पौत्रों को सुखी करो।

भावार्थ– रुद्र के शस्त्र हमारी हिंसा न करें, वे हमसे दूर ही रहें तथा जिनके कारण रुद्र क्रोधित हो, वह बुद्धि भी हमसे दूर ही रहे। हम कोई भी काम ऐसा न करें कि जिससे रुद्र क्रोधित हो। इस प्रकार वह हमें मारने के लिए कभी भी अपने धनुष को तैयार न करें। उसके धनुष हमारे प्रति विस्तृत न हों अपितु शिथिल ही रहें, और उस रुद्र के आश्रय में हमारे पुत्र और पुत्रों के पुत्र, अर्थात् पौत्र सदा सुखी रहें।

सुभाषित– (1) रुद्रस्य हेतिः नः परि वृज्याः = रुद्र के शस्त्र हमें छोड़ दें। **(2) त्वेषस्य मही दुर्मतिः परिगात्** = उस दीप्तिमान् रुद्र को क्रोधित करने वाली बुद्धि हमें छोड़ कर दूर चली जाए। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– वृज्याः** = वृज् धातु, विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन वैदिक रूप। **गात्** = गा धातु, लेट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **मघवद्भ्यः** = मघ + मतुप् =मघवत्। चतुर्थी का बहुवचन। **तनुष्व** = तन् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **मीढ्वः** = 'मिह् सेचने' धातु से क्वसु प्रत्यय। **तोकाय** = तुच् +घञ् = तोक।

एवा ब॑भ्रो वृषभ चेकिता॒न यथा॑ दे॒व न हृ॑णी॒षे न हंसि॑।
ह॒व॒न॒श्रु॒न्नो॑ रु॒द्रेह बो॑धि बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सुवीरा॑ः॥१५॥

अन्वय– बभ्रो वृषभ चेकितान देव यथा एव न हृणीषे न हंसि हवनश्रुत् रुद्र इह नः बोधि। विदथे सुवीराः बृहत् वदेम।

शब्दार्थ– बभ्रो वृषभ चेकितान देव = संसार का धारण–पोषण करने वाले, बलवान्, सर्वज्ञ, तेजस्वी। **यथा एव न हृणीषे न हंसि**=जिस प्रकार तू हम पर क्रोधित न होकर और न हमें मारे वह उपाय। **हवनश्रुत् रुद्र**= प्रार्थनाओं को सुनने वाले रुद्र। **इह् नः बोधि**=यहाँ तू हमें बता। **विदथे** = यज्ञ में। **सुवीराः** =उत्तम पुत्र–पौत्रों से युक्त होकर। **बृहत् वदेम** = तेरी उत्तम स्तुति करें।

अनुवाद– हे जगत् का धारण पोषण करने वाले, बलवान् अर्थात् कामनाओं की वर्षा करने वाले, सर्वज्ञ, तेजस्वी रुद्र! जिस प्रकार से तुम हम पर क्रुद्ध न हो और न हमें मारे, उस प्रकार से हमारी प्रार्थनाओं को सुनने वाले हे रुद्र! इस स्थान पर स्थित हमें तुम जानो, अर्थात् वह उपाय तुम हमें यहाँ बताओ। हम भी यज्ञ अथवा घर में शोभन पुत्र–पौत्रों से युक्त होकर हम तुम्हारे प्रति अत्यधिक अर्थात् उत्तम स्तुति करें।

भावार्थ– हे जगत् का पालन करने वाले, बलवान् दीप्तिमान् , सब कुछ जानने वाले तथा पुकार अर्थात् आह्वानों को सुनने वाले रुद्र! हमें यह उपाय अथवा मार्ग ब्रताओ ताकि तुम हम पर कभी भी क्रुद्ध न हो, और न हमारी कभी हिंसा करो। हम भी अपने परिवारों के साथ मिलकर तेरी उत्तम और महान् स्तुति किया करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– चेकितान = कित् ज्ञाने धातु से कानच् प्रत्यय। हृणीषे = हृणी धातु, लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **हंसि** = 'हन्' धातु, लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **हवनश्रुत्** = हवन +श्रु + (तुक्) + क्विप्। हवनं श्रृणोति इति सः। **बोधि** = बुध् धातु, लोट् मध्यमपुरुष, एकवचन वैदिकरूप।

○○○

८. नद्यः सूक्त

मण्डल ३ **सूक्त ३३**

ऋषि-विश्वामित्र ४, ६, देवता-नदियाँ छन्द त्रिष्टुप् १३ अनुष्टुप
८ और १० मन्त्रों की
ऋषिका - नदी

प्र पर्वतानामुशती उपस्था दश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१ ॥

अन्वय– पर्वतानाम् उपस्थात् विपाट् शुतुद्री उशती अश्वे इव विषिते हासमाने गावा इव शुभ्रे मातरा रिहाणे पयसा प्रजवेते।

शब्दार्थ– विषिते = बन्धन से मुक्त होने वाली। **हासमाने** = प्रसन्नता से। **अश्वे इव** = घोड़ियों की तरह। **रिहाणे** = बछड़ों को चाटती हुई। **शुभ्रे** = सफेद वर्णवाली। **मातरा** = माता। **गावा इव** = गाय के समान। **विपाट्** = विपाट् नामक नदी। **शुतुद्री** = शुतुद्री नामक नदी। **उपस्थात्** = समीप में से निकलकर। **उशती** = समुद्र की ओर जाने की इच्छा करती हुई। **पयसा** = जल से भरपूर होकर। **प्रजवेते** = प्रवाह से बहती है।

अनुवाद– पर्वतों की गोद से निकलकर समुद्र की ओर जाने की इच्छा करती हुई परस्पर स्पर्द्धा से दौड़ती हुई, खुले बाग वाली दो घोड़ियों की तरह अथवा अपने बछड़ों को चाटती हुई दो सफेद माता गायों की तरह विपाट् (आधुनिक व्यास) और शुतुद्री (आधुनिक सतलुज) अपने वेग से बह रही हैं।

भावार्थ– विपाट् और शुतुद्री ये दोनों नदियां पहाड़ से निकलकर जल से भरपूर होकर समुद्र के तेज प्रवाह से मिलने उसी प्रकार दौड़ी जा रही है, जिस प्रकार दो घोड़ियां बन्धन मुक्त होकर प्रसन्नता से हिनहिनाती हुई इधर–उधर वेग से भागती हैं अथवा दो गायें अपने बछड़ों की तरफ तेजी से दौड़ती हैं।

परिचय– यह सूक्त संवादात्मक है। कुशिक पुत्र विश्वामित्र घूमते हुये विपाट् और शुतुद्री नदियों के किनारे पहुंचे। ये दोनों नदियां अगाध जल से भरी हुई थीं। अतः इन नदियों को पार करने की इच्छा होने के कारण विश्वामित्र ने नदियों से प्रार्थना की। इस मंत्र में विश्वामित्र ने नदियों की स्तुति की है।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे॥२॥

अन्वय– इन्द्रेषिते प्रसवम् भिक्षमाणे सम् आराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने शुभ्रे रथ्या इव समुद्रम् अच्छा याथः, वाम् अन्या अन्याम् अप्येति।

शब्दार्थ– इन्द्रेषिते = इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर। **प्रसवं** = उन उपजाऊ क्षेत्रों में। **भिक्षमाणे** = अन्नादि की उत्पत्ति को उत्तम बनाती हुई। **अच्छा** = सीधी। **रथ्या इव** = रथ द्वारा जाने वाले रथियों के समान। **याथः** = जाती हो। **समुद्रम्** = समुद्र की तरफ। **ऊर्मिभिः** = लहरों से आस पास के क्षेत्रों को। **पिन्वमाने** = तृप्त करती हुई। **अन्या** = एक। **अन्यां अपि** = दूसरी से। **शुभ्रे**= तेजस्वी। **वाम्** = तुममें से। **एति**=मिलती हो।

अनुवाद– इन्द्र द्वारा भेजी गई, बहने के लिये प्रार्थना करती हुई उपजाऊ प्रदेशों में धान्य की उत्पत्ति को उत्तम बनाती हुई, दो रथियों की तरह समुद्र की ओर जा रही हो। हे शुभ्रे! अथवा तेजस्वी एक साथ जाती हुई, लहरों से उमड़ती हुई अर्थात् लहरों द्वारा आस–पास के क्षेत्रों को तृप्त करती हुई, तुम में से एक दूसरी से मिलती हो।

भावार्थ– इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर ये दोनों नदियां आपस में मिलकर बहती हैं और अपनी लहरों से अर्थात् जल से आस पास के क्षेत्रों को उर्वरक बनाती हुई चलती हैं, और इन नदियों के कारण उन प्रदेशों में अन्न अथवा

धान्य की उत्पत्ति अधिक होती है। इस प्रकार क्षेत्रों को उपजाऊ बनाती हुई ये नदियां समुद्र की तरफ सीधी दौड़ती जाती हैं।

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥३॥

अन्वय– मातृतमाम् सिन्धुम् अच्छ अयासम् उर्वीम्, सुभगाम् विपाशम् अगन्म। मातरा वत्सम् इव संरिहाणे समानं योनिम् अनु संचरन्ती।

शब्दार्थ– वत्सम् = बछड़े को। **रिहाणे इव** = चाटती हैं। **समानम्** = एक ही। **योनिम्** = उद्दिष्ट स्थान। **मातृतमाम्** = अत्यन्त स्नेह से युक्त। **उर्वी** = अति विशाल। **सुभगाम्** = उत्तम ऐश्वर्यवाली। **अयासम्** = पास आया हूँ।

अनुवाद– श्रेष्ठ नदी माता शुतुद्री के पास आया हूँ। चौड़ी तथा सुन्दर विपाट् नदी के पास आया हूँ। बछड़े को चाटती हुई दो माताओं की तरह, एक ही स्थान समुद्र को लक्ष्य करके बहती हुई शुतुद्री और विपाट् नदी के पास आया हूँ।

भावार्थ– जिस प्रकार दो माता गायें अपने बछड़े को प्रेम से चाटने के लिए उसकी तरफ भागती हैं, उसी तरह ये दोनों नदियां अपने एक ही उद्दिष्ट स्थान समुद्र की तरफ भागती हैं। ये दोनों ही माता के समान अत्यन्त प्यार से युक्त होकर लोगों का पालन करती हैं। ये अति विशाल और उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं।

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति॥४॥

अन्वय– एना पयसा पिन्वमानाः वयम् देवकृतम् योनिम् अनुचरन्तीः। सर्गतक्यः प्रसवः न वर्तवे किंयुः विप्रः नद्यः जोहवीति॥

शब्दार्थ– वयं = हम नदियाँ। **एना** = इस। **पयसा** = पानी से। **पिन्वमानः** = क्षेत्रों को तृप्त करती हुई। **अनुचरन्तीः** = चली जा रही हैं। **विप्रः** = ब्राह्मण। **देवकृतम्** = देवराज इन्द्र द्वारा निर्मित। **योनिम्** = उद्दिष्ट स्थान। **सर्गतक्तः** = बहने के कार्य में रत रहने वाली। **प्रसवः** = अपने उद्योग से।

जोहवीति = स्तुति कर रहा है।

अनुवाद– ऐसी हम लोग अपनी धारा से उमड़ रही हैं, तथा इन्द्र के द्वारा निर्मित स्थान पर चल रही हैं। स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हम लोगों की गति रुकने के लिए नहीं है, अर्थात् हम कभी विश्राम नहीं लेतीं। किस इच्छा से ऋषि विश्वामित्र नदियों की बार-बार स्तुति कर रहे हैं।

भावार्थ– ये नदियाँ अपने जल से आसपास के प्रदेशों को उपजाऊ बनाती हुई परमात्मा के द्वारा निर्मित उद्दिष्ट स्थान समुद्र की तरफ बहती चली जाती हैं, ये हमेशा बहती रहती हैं, इनका बहना कभी बन्द नहीं होता। अर्थात् बहने के काम में रत रहने वाली ये अपने उद्योग में कभी विराम नहीं लेतीं।

रम॑ध्वं मे॒ वच॑से सो॒म्याय॒ ऋता॑वरी॒रुप॑ मुहूर्तमेवै॑ः।
प्र सिन्धु॒मच्छा॑ बृह॒ती म॑नी॒षा ऽव॒स्युर॑ह्वे कुशि॒कस्य॑ सू॒नुः ।।५।।

अन्वय– ऋतावरी मे सोम्याय वचसे मुहूर्तम् एवैः उप रमध्वं बृहती मनीषा अवस्युः कुशिकस्य सूनुः सिन्धुम् अच्छ प्र अह्वे ॥

शब्दार्थ– अवस्युः = अपनी रक्षा की इच्छा करने वाला। **ऋतावरी** = जल से भरी हुई नदियाँ। **बृहती** = उत्तम। **मनीषा** = स्तुति से। **कुशिकस्य** = कुशिक का। **सूनुः** = पुत्र। **एवैः** = अपनी गति को। **वचसे** = मान कर। **सोम्याय** = विनम्र प्रार्थना को। **रमध्वम्** = रोक दो रुक जाओ।

अनुवाद– हे पवित्र जल से भरी हुई नदियो! मेरी विनम्र प्रार्थना को मानकर अपनी गति को अर्थात् अपनी यात्रा से थोड़ी देर के लिए रुक जाओ। अपनी सहायता का इच्छुक मैं कुशिक पुत्र (विश्वामित्र) अपनी ऊँची स्थिति से अर्थात् उत्तम स्तुति से नदियों की प्रार्थना करता हूँ।

भावार्थ– हे जल से भरपूर नदियो! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं पार उतरना चाहता हूँ, अतः तुम मेरी विनम्र प्रार्थना को सुनो और कुछ क्षण के लिए बहना बन्द कर दो, ताकि मैं पार उतर सकूं।

परिचय– इस मंत्र में कुशिक पुत्र विश्वामित्र नदियों से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए प्रार्थना कर रहे हैं।

इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑र॒दद् वज्र॑बाहु॒रपा॑हन् वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म्।
दे॒वो॑ऽनयत् सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥६॥

अन्वय– वज्रबाहुः इन्द्रः नदीनाम् परिधिम् वृत्रम् अप अहन् अस्मान् अरदत्। सुपाणिः सविता देवः अनयत् उर्वीः वयम् तस्य प्रसवे यामः॥

शब्दार्थ– वज्रबाहुः = वज्र को हाथों में धारण करने वाले। **अरदत्** = खोदा। **परिधिम्** = सीमित करने वाले। **अपाहन्** = मारा। **सविता** = सबको उत्पन्न करने वाला। **सुपाणिः** = उत्तम हाथ वाला। **प्रसवे** = आज्ञा में। **उर्वीः** = पानी से परिपूर्ण। **यामः** = बहती हैं।

अनुवाद– हे विश्वामित्र! वज्र को हाथों में धारण करने वाले इन्द्र ने हमें खोदकर बाहर निकाला है। उसने नदियों को सीमित करने वाले अर्थात् घेरने वाले वृत्र को मारा। उत्तम अर्थात् सुन्दर हाथ वाले, सबको उत्पन्न करने वाले अर्थात् सवितृ देव ने हमें आगे लाया। हम उसकी आज्ञा से जल से परिपूर्ण होकर निरन्तर बहती हैं।

भावार्थ– हे विश्वामित्र! हमें तो इन्द्र ने खोदकर बहाया है। उसी ने हमारा मार्ग निश्चित किया है। वृत्र ने हमें घेरकर सीमित करने का प्रयत्न किया था, पर इन्द्र ने उसे मार दिया, और हमें फिर से प्रवाह युक्त बनाया। हम उसी की आज्ञा से बह रही है, अतः हमारी गति कैसे रुक सकती है ? अर्थात् हम कैसे विश्राम कर सकती हैं?

प्र॒वाच्यं॑ शश्व॒धा वी॒र्यं॑ १॒॑ तदिन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ यदहिं॑ विवृ॒श्चत्।
वि वज्रे॑ण परि॒ष॒दो॑ जघा॒ना ऽऽय॒न्नापोऽय॑नमि॒च्छमा॑नाः ॥७॥

अन्वय– इन्द्रस्य तद् वीर्यं कर्म शश्वधा प्रवाच्यम् यद् अहि विवृश्चत् परिषदः वज्रेण विजघान अयनम् इच्छमानाः आपः आयन्॥

शब्दार्थ– विवृश्चत् = मारा। **वीर्यम्** = बल। **शश्वधा** = अनेक तरह से। **प्रवाच्यम्** = वर्णन करने योग्य। **परिषदः** = चारों ओर स्थित। **विजघान** = मारा। **आपः** = जल प्रवाह। **अयनम्** = अपने स्थान समुद्र की। **इच्छामानाः** = इच्छा करते हुए। **आयन्** = बहने लगे।

अनुवाद– इन्द्र का वह अर्थात् पराक्रम युक्त कार्य, जो उसने अहि नामक राक्षस को मारा, वह अवश्य वर्णन करने योग्य अर्थात् कहने योग्य है। इन्द्र ने अपने वज्र से जल के प्रति बन्धकों को काट डाला अर्थात् चारों ओर स्थित असुरों को मारा, तब जल प्रवाह अपने स्थान समुद्र की इच्छा करते हुए बहने लगे, अर्थात् जल अपना मार्ग खोजता हुआ प्रवाहित हुआ।

भावार्थ– जब असुरों ने नदियों को सीमित कर दिया, तब नदियों का प्रवाह रुक गया, तो इन्द्र ने नदियों को घेरने वाले असुरों को मारा और जल प्रवाहों को समुद्र की तरफ बहने के लिए छोड़ दिया, उसका यह बल से युक्त कर्म प्रशंसनीय है। अतः जब इन्द्र हमारे रुकने के विरुद्ध है, तो उसकी आज्ञा में रहने वाली हम तुम्हारे लिए किस तरह अपनी गति रोक सकती हैं? अर्थात् इन्द्र की अवज्ञा कैसे कर सकती हैं ?

ए॒तद् वचो॑ जरित॒र्मापि॑ मृष्ठा॒ आ यत् ते॒ घोषा॒नुत्त॑रा यु॒गानि॑।
उ॒क्थेषु॑ कारो॒ प्रति॑ नो जुषस्व॒ मा नो॒ नि कः॑ पुरुष॒त्रा नम॑स्ते ॥८ ॥

अन्वय– वचः मा अपि मृष्ठाः यत् उत्तरा युगानि ते जरितः एतद् आघोषान् कारो। उक्थेषु नः प्रति जुषस्व न पुरुषत्रा मा नि कःते नमः॥

शब्दार्थ– **जरितः** = स्तुति करने वाला। **वचः** = स्तुति। **मृष्ठाः** = भूलना। **युगानि** = समय में। **उत्तरा** = आगे आने वाले। **घोषान्** = प्रसिद्ध होगी। **कारो** = स्तुति करने वाले। **उक्थेषु** = यज्ञों में। **जुषस्व** = प्रशंसा करना। **पुरुषत्रा** = पुरुषों के द्वारा किए गए कर्मों में। **नः मा निकः** = अनादर मतकर।

अनुवाद– हे विश्वामित्र! इस वचन को कभी भी मत भूलो भावि युगों के लोग तुम्हारे इस वचन को सुन सकें। अर्थात् अपनी ये स्तुति कभी मत भूलना क्योंकि आगे आने वाले समय में यह स्तुति प्रसिद्ध होगी। हे स्तोता! यज्ञों में हमारी प्रंशसा करो। अर्थात् अपनी स्तुतियों में हमारा आदर रखो। पुरुषों के द्वारा प्रवर्तित कर्मों में हमारा अनादर मत करो। हमारा तुम्हें नमस्कार है।

भावार्थ– हे विश्वामित्र! हमारे संवाद को भूलना मत, क्योंकि भविष्य में यह संवाद प्रसिद्ध होगा। यज्ञों में हमारी स्तुति करना, आदर करना, कभी भी हमारा अनादर नहीं करना। हम लोगों को मनुष्य कोटि में नीचे मत लाना। नदियों का कभी भी अनादर नहीं करना चाहिए।

ओ षु स्व॑सारः का॒रवे॑ शृणोत य॒यौ वो॑ दू॒रादन॑सा॒ रथे॑न।
नि षू न॑मध्वं॒ भव॑ता सु॒पा॒रा अ॑धोअ॒क्षाः सि॑न्धवः स्रो॒त्याभिः॑ ॥९॥

अन्वय– ओ स्वसार सिन्धवः कारवे सुश्रृणोत्। अनसा रथेन दूरात् वः ययौ सु निनमध्वम् सुपाराः भवत स्रोत्यभिः अधः अक्षाः॥

शब्दार्थ– स्वसारः = भगिनीरूप नदियो! **श्रृणोत** = सुनो। **दूरात्** = बहुत दूर से। **अनसा** = गाड़ी से। **रथेन** = रथ से। **ययौ** = आया हूँ। **कारवे** = स्तोता के लिए। **स्रोत्याभिः** = अपने प्रवाहों के साथ। **नमध्वम्** = झुक जाओ। **सुपाराः** = आसानी से पार होने योग्य। **अधो** = नीचे। **अक्षाः** = धुरा।

अनुवाद– हे भगिनीरूप नदियो ! मुझ स्तुति करने वाले की बात अच्छी तरह सुनो क्योंकि मैं तुम्हारे पास बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ से आया हूँ। तुम मुझ स्तोता के लिए अपने प्रवाहों के साथ अच्छी तरह झुक जाओ, आसानी से पार होने योग्य हो जाओ, अपनी जलधारा से रथ की धुरा से नीचे हो जाओ।

भावार्थ–हे नदियो ! मैं बहुत दूर से गाड़ी और रथ पर बैठकर तुम्हारे पास आया हूँ, अतः तुम नीची हो जाओ, इतनी झुक जाओ कि तुम्हारे प्रवाह मेरे रथ की नाभि से भी नीचे हो जाए, ताकि मैं आसानी से तुम्हें पार कर जाऊँ।

आ ते॑ कारो शृणवा॒मा॒ वचां॑सि य॒याथ॑ दूरादन॑सा॒ रथे॑न।
नि ते॑ नंसै पीप्याने॒व योषा॒ मर्या॑येव क॒न्या॑ शश्व॒चै ते॑ ॥१०॥

अन्वय– कारो! ते वचांसि श्रृणवाम् दूरात् अनसा रथेन आ पयाथ ते नि नंसै पीप्याना इव योषा कन्या मर्याय इव शश्वचै ते॥

शब्दार्थ–कारो = हे स्तोता! **वचांसि** = प्रार्थना को। **दूरात्** = दूर से। **पीप्याना** = शिशु को दूध पिलाने वाली। **योषा** = माता, स्त्री। **मर्याय** = पुरुष को, प्रेमी को। **शश्वचै** = आलिंगन करने के लिए। **नंसे** = झुक जाती है।

अनुवाद–हे स्तुति करने वाले! हम तेरी प्रार्थना को सुनती हैं, क्योंकि तुम बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ के साथ आये हो। हम तुम्हारे लिए नीचे झुक

जाती हैं, जैसे शिशु को दूध पिलाने वाली माता अर्थात् दूध से भरे स्तन वाली स्त्री अपने पुत्र के लिए, तथा जैसे कोई युवती अपनी प्रेमी का आलिंगन करने के लिए झुकती है, अथवा विनम्र हो जाती है।

भावार्थ–हे स्तोता! हमने तेरी प्रार्थना को सुन लिया है, हम यह भी जानती हैं कि तुम दूर से गाड़ी और रथ के द्वारा आए हो, इसीलिए जिस प्रकार बच्चे को दूध पिलाने वाली माता नम्र हो जाती है। अथवा कोई कन्या पुरुष को आलिंगन देने के लिए नम्र हो जाती है, उसी प्रकार हम तेरे लिए झुक जाती हैं।

यद॒ङ्ग त्वा॑ भर॒ताः सं॒तरे॑यु॒र्ग॒व्यन् ग्राम॑ इषि॒त इन्द्र॑जूतः।
अ॒र्षादह॑ः प्रस॒वः सर्ग॑तक्त॒ आ वो॑ वृणे सुम॒तिं य॒ज्ञिया॑नाम्॥११॥

अन्वय– अङ्ग यत् भरताः त्वा संतरेयुः गव्यन् इषितः इन्द्रजूतः ग्रामः अह सर्गतक्तः प्रसवः अर्षात् यज्ञियानाम् वः सुमतिम् आवृणे॥

शब्दार्थ–**अङ्गः** = हे नदियों! **भरताः** = भरण पोषण करने वाले, भरतवंशी। **सन्तरेयुः** = पार करना। **इषितः** = इच्छा से प्रेरित। **गव्यन्** = पार करने की। **इन्द्रजूतः** = इन्द्र से प्रेरित। **ग्रामः** = भरतवंशियों का समूह, झुण्ड। **अहः** = प्रतिदिन। **सर्गतक्तः** = बहने वाले। **प्रसवः** = प्रवाह। **अर्षात्** = पार करे। **यज्ञियानां** = पूजा के योग्य। **सुमति** = उत्तम बुद्धि। **आवृणे** = समर्थन चाहता हूँ, मांगता हूँ।

अनुवाद–हे नदियो! चूंकि तुम्हारी अनुमति मिल गई है, इसलिए भरण पोषण करने वाले मनुष्य अथवा हम भरतवंश तुम्हें पार करने की इच्छा से प्रेरित होकर, अथवा इन्द्र द्वारा भेजा गया भरतवंशियों का समूह प्रतिदिन बहने वाले प्रवाह को पार करे। मैं पवित्र नदियो तुम्हारी उत्तम बुद्धि को मांगता हूँ।

भावार्थ–विश्वामित्र कहते हैं–हे नदियो! जब भरण-पोषण करने वाले मनुष्य तुम्हें पार करने की इच्छा करने वाले और इन्द्र से प्रेरित होकर तुम्हें पार करना चाहें तब वे तुम्हारे प्रवाहों को पार कर लें। तुम्हारा प्रवाह अपनी स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता हुआ बहे। तुम पूजा के योग्य हो इसलिए पवित्र नदियों का मैं समर्थन चाहता हूँ।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्रपिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥१२॥

अन्वय– गव्यवः भरताः अतारिषु विप्रः नदीनां सुमतिम् सम् अभक्त। इषयन्तीः सुराधाः प्रपिन्वध्वम् वक्षणा आ पृणध्वम् शीभं यात।

शब्दार्थ–गव्यवः = पार जाने की इच्छा वाले। **अतारिषु** = पार कर लिया। **विप्रः** = ब्राह्मण। **अभक्त** = प्राप्त कर लिया। **सुराधाः** = सुन्दर धनवाली, उत्तम ऐश्वर्य वाली। **इषयन्तीः** = अन्न पैदा करके। **वक्षणाः** = नहरों को, स्रोतों को। **पिन्वध्वं** = जल से भर दो। **पृणध्वं** = पूर्ण कर दो। **शीभं** = वेग से, गति से। **यात** = बहो।

अनुवाद–पार जाने की इच्छा करने वाले मनुष्य पार हो गए और ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी विश्वामित्र भी तुम्हारी उत्तम बुद्धि को प्राप्त कर चुके हैं। अतः हे नदियो! अब तुम उत्तम अन्नों को उत्पन्न करके लोगों के ऐश्वर्य को बढ़ाती हुई बहो और नहरों को जल से भरपूर कर दो, उन्हें अच्छी तरह से पूर्ण कर दो और वेग से बहती रहो।

भावार्थ–पार जाने की इच्छा वाले भरतवंशियों ने पार कर लिया। ब्राह्मण ने नदियों का समर्थन प्राप्त कर लिया। सुन्दर धन वाली तुम लोग धन लाती हुई अपनी जगह पर प्रवाहित हो तो, जल से भर जाओ और शीघ्रता से बहो।

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम्॥१३॥

अन्वय– आपः वःऊर्मिः शम्याः उद्हन्तु योक्त्राणि मुञ्चत विएनसा अदुष्कृतौ अघ्न्यौ शून मा आ अरताम्॥

शब्दार्थ–ऊर्मिः = लहरें। **शम्याः** = यज्ञस्तम्भ से। **हन्तु** = टकराती रहें। **अघ्न्यौ** = हिंसा के अयोग्य। **वि एनसा** = पापरहित। **अदुष्कृतौ** = दुष्टकर्म न करने वाली। **शूनं अरताम्** = समृद्धि दूर न जाए। **आपः** = जल। **योक्त्राणि** = बैल के जुओं को। **मुंचत** = मुक्त करें।

अनुवाद–हे नदियो! तुम्हारी लहरें यज्ञ स्तम्भ से टकराती रहें, तुम्हारा जल बैल के जुओं को मुक्त करता रहे और इस प्रकार कभी भी दुष्टकर्म न

करने वाली, पाप से रहित और हिंसा के अयोग्य नदियो! तुमसे समृद्धि दूर न जाये।

भावार्थ–हे नदियो! तुम्हारी लहरें यज्ञस्तम्भ से टकराती रहें अर्थात् तुम्हारे किनारों पर सदा यज्ञ चलते रहें, तुम्हारे जल बैल के जुओं को मुक्त करते रहें, अर्थात् तुम्हारे किनारे पर कृषक लोग कृषि करते रहें, तुम पापरहित तथा तिरस्कार न करने योग्य हमेशा वृद्धि को प्राप्त करो। नदियों की हिंसा नहीं होनी चाहिए, उनके जल का दुरुपयोग करना ही उनकी हिंसा है।

०००

९. मित्र सूक्त

मण्डल ३ **सूक्त ५९**

ऋषि-विश्वामित्र **देवता-मित्र** **छन्द १-५ त्रिष्टुप् ६-९ गायत्री**

मि॒त्रो जना॑न् यातयति ब्रु॒वा॒णो मि॒त्रो दा॑धार पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
मि॒त्रः कृ॒ष्टीरनि॑मिषा॒भि च॑ष्टे मि॒त्राय॑ ह॒व्यं घृ॒तव॑ज्जुहोत॥१॥

अन्वय – ब्रुवाणः मित्रः जनान् यातयति। मित्रः पृथिवीम् उत् द्याम् दाधार। मित्रः अनिमिषा कृष्टीः अभिचष्टे। तस्मै मित्राय घृतवत् हव्यम् जुहोत।

शब्दार्थ – मित्रः = सूर्य, मित्र देव। **जनान्** = कृषक आदि मनुष्यों को। **यातयति** = कार्यों में नियुक्त करता है। **ब्रुवाणः** = आज्ञा देता हुआ, स्तुति किया जाता हुआ। **मित्रः पृथिवीम् उत धाम् दाधार** = मित्र ही पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है। **कृष्टीः** = कृषकों, मनुष्यों को न करें। **अनिमिषा** = पलक न मारने वाली आँखों से, अनुग्रह की दृष्टि से। **अभिचष्टे** = कामों को। सब ओर से देखता है। **मित्राय** = हे लोगो! मित्र के लिए। **घृतवत्** = घी से युक्त। **हव्यम् जुहोत** = हवि प्रदान करो।

अनुवाद – मित्रदेव अथवा सूर्य आज्ञा देता हुआ, अर्थात् स्तुति किया जाता हुआ कृषक आदि मनुष्यों को अपने कार्यों में नियुक्त करता है। मित्र ही पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है। मित्र ही पलक न मारने वाली आँखों से अर्थात् अनुग्रह की दृष्टि से कृषक आदि मनुष्यों के कामों को सब

और से देखता है। हे मनुष्यो अथवा ऋत्विजो! उस मित्र के लिए घी से युक्त हवि प्रदान करो।

भावार्थ – यह मित्र अर्थात्, सूर्य आज्ञा देते हुए मनुष्यों को अपने काम में लगाता है। यही सब लोकों को धारण करता है तथा वह सदा ही मनुष्य के कार्यों को देखता रहता है, इससे कोई भी काम छुपा नही रहता।

सुभाषित – 1. मित्रः अनिमिषाभिः कृष्टीः अभि चष्टे = मित्र अथवा सूर्यदेव कभी भी पलक न मारते हुए निमेषरहित दृष्टि से मनुष्यों के कामों को देखता रहता है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी–यातयति** = ण्यन्त यती प्रयत्ने धातु , लट् लकार। **ब्रुवाणः** = ब्रू + शानच् (उवङ् आदेश) ब्रुवाण। **दाधार** = धृ धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन, वैदिक व्यत्यय से लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है। **कृष्टीः** = कृष् + क्तिन् = कृष्टि। द्वितीया का बहुवचन। **हव्यम्** = हु + यत् = हव्य। **घृतवत्** = घृ + मतुप् = घृतवत्।

प्र स मि॑त्र॒ मर्तो॑ अस्तु॒ प्रय॑स्वा॒न् यस्त॑ आदि॒त्य शिक्ष॑ति व्र॒तेन॑ ॥
न ह॑न्यते॒ न जी॑यते॒ त्वो॑तो॒ नैन॒मंहो॑ अ॒श्नोत्यन्ति॑तो॒ न दू॒रात् ॥२ ॥

अन्वय– आदित्य ! यः ते व्रतेन शिक्षति, मित्र! सः मर्तः प्रयस्वान् प्र अस्तु। त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते। एनम् अंहः न अन्तितः न दूरात् अश्नोति।

शब्दार्थ– मर्तः = मनुष्य। **प्रयस्वान्** =धनवान्, अन्न वाला। **शिक्षति** = आचरण करता है, हवि प्रदान करता है। **व्रतेन** = नियम के अनुसार, यज्ञ से युक्त हुआ। **हन्यते** = मारा जाता है। **जीयते** = जीता जाता है। **त्वेतः** = तुम से रक्षित हुआ मनुष्य। **अंहः** = पाप। **अश्नोति** = प्राप्त होता है। **अन्तितः** = समीप से। **न दूरात्** = न दूर से।

अनुवाद – हे अदितिपुत्र मित्र! जो मनुष्य यज्ञ से युक्त हुआ तुम्हारे लिये हवि प्रदान करता है। अर्थात् जो तेरे नियम के अनुसार आचरण करता है, वह मनुष्य, अन्न वाला अथवा धनवान् बने तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ मनुष्य न तो कभी मारा जाता है और न किसी के द्वारा जीता जाता है। इस मनुष्य को पाप न तो पास से अर्थात् समीप से और न दूर से प्राप्त होता है।

भावार्थ– जो मनुष्य आदित्य के समान हित करने वाले परमेश्वर के नियमों

के अनुसार चलता है, वह ऐश्वर्यवान् होता है। उसे कोई भी शत्रु न तो मार सकता है और न ही जीत सकता है और वह कोई भी पाप कर्म नहीं करता।

सुभाषित– 1. मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु = हे मित्र! जो तेरे नियम का पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है। **2. त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते** = तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हुआ मनुष्य न तो मारा जाता है और न ही किसी के द्वारा जीता ही जाता है। **3. एनं अंहः न अश्नोति** = इसे पाप नहीं छू सकता। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी – अस्तु** = अस् धातु, लोट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **प्रयस्वान्** = प्रयस् + मतुप् = प्रयस्वत्। प्रथमा का एकवचन। **शिक्षति** = शिक्षतिर्दानकर्मा। व्यत्ययेन परस्मैपदम्। **जीयते** = जि (कर्मवाच्य), लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **त्वोतः** = त्वया ऊतः। अव् रक्षणे + क्त। अव् को ऊठ् आदेश = ऊत। वैदिक नियम से युष्मद् को त्वा आदेश। त्वा + ऊत् = त्वोत।

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः॥
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम॥३॥

अन्वय – अनमीवासः इळया मदन्तः पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः आ वयम् आदित्यस्य व्रतम् उपक्षियन्तः मित्रस्य सुमतौ स्याम।

शब्दार्थ– अनमीवासः = रोगरहित। **इळया** = अन्न से, सुख से। **मदन्तः** = आनन्दित होते हुये। **मितज्ञवः** = नम्र होकर चलने वाला। **वरिमन्** = विस्तीर्ण क्षेत्रों में। **आ वयम्** = यथेच्छ रूप से आते हुये। **व्रतम्** = नियम के अनुसार। **उपक्षियन्तः** = आचरण करने वाले। **मित्रस्य सुमतौ स्याम** = मित्र उत्तम बुद्धि में रहें।

अनुवाद– हे सूर्य! रोगरहित, अन्न या सुख से आनन्दित होने वाले, इस पृथिवी के विस्तीर्ण क्षेत्रों में परिमित गति वाले अर्थात् विनम्र होकर चलने वाले, यथेच्छ रूप से आते हुये हम सूर्य के नियम के अनुसार आचरण करने वाले हम मित्र देवता की उत्तम बुद्धि में बने रहें।

भावार्थ– रोग से रहित होकर अन्न अथवा सुख से हर्षित होने वाले तथा विनम्रतापूर्वक व्यवहार करने वाले एवं सूर्य के नियमों के समीप रहने वाले हम मित्र देवता की सुमति में बने रहें, अर्थात् उसकी कृपा के पात्र बने रहें।

सुभाषित– 1. पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ = पृथिवी पर विनम्र होकर चलने वाले मनुष्य मित्र की सुमति में रहते हैं। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– मदन्तः** = मर्दी हर्षे + शतृ = मदत्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **मितज्ञवः** = मिताः जानवः येषां ते। जानु के स्थान पर छान्दस सु आदेश। **वरिमन्** = 'उरु' शब्द से इमनिच् प्रत्यय तथा 'उरु' को 'वरः' आदेश। **उपक्षियन्तः** = उप + क्षि + शतृ = उपक्षियत्। प्रथमा के बहुवचन। **स्याम** = अस् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

अ॒यं मि॒त्रो न॑म॒स्य॑ः सु॒शेवो राजा॑ सुक्ष॒त्रो अ॑जनिष्ट वे॒धाः।
तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म॥४॥

अन्वय– अयम् मित्रः नमस्यः सुशेवः राजा सुक्षत्रः वेधाः अजनिष्ट। यज्ञियस्य तस्य सुमतौ भद्रे सौमनसे अपि वयम् स्याम।

शब्दार्थ– नमस्य = नमन करने योग्य। **सुशेवः** = सेवा के योग्य अच्छा सुख देने वाला। **राजा** = तेजस्वी या स्वामी। **सुक्षत्रः** उतम बल वाला। **अजनिष्ट** = उदय हुआ है। **वेधाः** अत्यन्त बुद्धिमान्, संसार की रचना करने वाला। **यज्ञियस्य** = पूजनीय, यज्ञ के योग्य। **सुमतौ** = उतम बुद्धि के और। **भद्रे** = कल्याणकारी। **सौमनसे** = प्रसन्न मन में। **अपि वयम् स्याम्** = हम अनुकूल रहें।

अनुवाद–नमन करने योग्य, अच्छी प्रकार से सेना के योग्य अथवा सुख देने वाला, तेजस्वी अथवा सारे जगत् का स्वामी है, उत्तम बल वाला है और अत्यन्त बुद्धिमान् है। अर्थात् सारे संसार की रचना करने वाला है। सबका मित्र रूप यह सूर्य उदय हो गया है। उस पूजनीय सूर्य के उत्तम बुद्धि के और कल्याणकारी उत्तम मन के अनुकूल रहें। अर्थात् यज्ञ के योग्य उस सूर्य की उत्तम बुद्धि में और कल्याण करने वाले प्रसन्न मन में भी हम यजमान बने रहें। सूर्य हमें सदा अपने ध्यान में रखें और हम पर कृपालु बना रहे।

भावार्थ– उदय होता हुआ सूर्य नमस्कार करने योग्य, सेवा किए जाने योग्य, उत्तम बल से सम्पन्न तथा उत्तम बुद्धि वाला है, जो इसके अनुकूल आचरण करता है, वह हर तरह का कल्याण प्राप्त करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– नमस्यः = नमसि धातु अर्थ में "तत्र साधु" से यत् प्रत्यय। **अजनिष्ट** = जन् धातु, लुङ् लकार प्रथमपुरुष, एकवचन। **यज्ञियस्य** = यज्ञम् अर्हति। यज्ञ + घ (इय) = यज्ञिय। षष्ठी का एकवचन। **सौमनसे** = सुमनसः भावः। सुमनस् + अण् = सौमनस। सप्तमी का एकवचन।

म॒हाँ आ॑दि॒त्यो नम॑सोप॒सद्यो॑ या॒तय॑ज्जनो गृण॒ते सु॒शेव॑ः।
तस्मा॑ ए॒तत् पन्य॑तमा॒य जुष्ट॑ म॒ग्नौ मि॒त्राय॑ ह॒विरा जु॑होत ॥५॥

अन्वय– आदित्यः महान् नमसा उपसद्यः यातयज्जनः गृणते सुशेवः पन्यतमाय तस्मै मित्राय जुष्टम् एतत् हविः अग्नौ आ जुहोत।

शब्दार्थ– उपसद्यः = समीप, पास में जाने योग्य। **यातयत्** = कार्यों में प्रेरित करने वाला। **गृणते** = स्तुति करने वाले के लिये। **सुशेवः** = उत्तम सुख देने वाला, सरलता से पहुँचने के योग्य। **पन्यतमाय** = अत्यन्त स्तुति किये जाने के योग्य। **एतत् जुष्टम् हविः** = इस अत्यन्त प्रिय आनन्ददायक हवि की। **अग्नौ आ जुहोत** = अग्नि में आहुति दो।

अनुवाद– यह महान् आदित्य विनम्र होकर अर्थात् नमस्कार के द्वारा समीप जाने के योग्य है। मनुष्यों को अपने-अपने कामों में प्रवृत्त करने वाला यह सूर्य स्तुति करने वाले मनुष्य के लिए उत्तम सुख देने वाला अथवा सरलता से पहुँचने के योग्य है। उस अत्यन्त स्तुति किये जाने के योग्य मित्र अथवा सूर्य के लिये इस अत्यन्त प्रिय हवि की अग्नि में आहुति दो।

भावार्थ– यह आदित्यदेव महान् है, इसलिए इसके समीप लोग विनम्रतापूर्वक ही जाते हैं। यह सूर्य उत्पन्न होकर अर्थात् उदय होकर हम सबको अपने-अपने कार्यों में प्रेरित करता है। यह सूर्य स्तोता के लिए उत्तम सुख देने वाला है, ऐसे उस अत्यन्त स्तुत्य सूर्यदेव के लिये अग्नि में उत्तम आहुति देनी चाहिए।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– उपसद्यः = उप + सद् + यत् = उपसद्य। **यातयज्जनः** = ण्यन्त यती प्रयत्ने धातु से शतृ = यातयत्। यातयन् जनान् यः सः। **गृणते** = गृ + श्ना + शतृ = गृणत्। चतुर्थी का एकवचन। **पन्यतमाय** = पन् +

यत् = पन्य + तमप् = पन्यतम। चतुर्थी का एकवचन। **जुष्टम्** = जुष् + क्त = जुष्टं। **जुहोत** = हु धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

मि॒त्रस्य॑ चर्षणी॒धृतोऽवो॑ दे॒वस्य॑ सान॒सि।
द्यु॒म्नं चि॒त्रश्रवस्तमम्॥६॥

अन्वय– चर्षणीधृतः मित्रस्य देवस्य अवः सानसि। द्युम्नम् चित्रश्रवस्तमम्।

शब्दार्थ– चर्षणीधृत देवस्य मित्रस्य = मनुष्यों को धारण करने वाले इस दिव्य सूर्य की। **अवः** = रक्षात्मक कृपा, अन्न। **सानसि** = सबके द्वारा उपभोग के योग्य। **द्युम्न्म्** = धनदायक। **चित्रश्रवस्तमम्** = अनेक तरह के अन्न को प्रदान करने वाली, बहुत अधिक सुन्दर कीर्ति से युक्त है।

अनुवाद–अन्नों के उत्पादन के लिये वृष्टि करके मनुष्यों को धारण करने वाले इस दिव्य सूर्य का अन्न अर्थात् रक्षात्मक कृपा सब उपासकों द्वारा समान रूप से प्राप्त करने योग्य है, धनदायक और अनेक प्रकार के अन्न को प्रदान करने वाली है। अर्थात् उसका धन बहुत अधिक सुन्दर कीर्ति से युक्त है।

भावार्थ– जिस मनुष्य पर इस सूर्य देवता की कृपा हो जाती है, वह हर तरह के अन्न तथा धन एवं यश की प्राप्ति करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– चर्षणीधृतः = चर्षणी + धृ + (तुक्) + क्विप् = चर्षणीधृत्। छान्दस दीर्घ। षष्ठी का एकवचन। **अवः** = अव् + असुन् = अवस्। **सानसि** = सन् + असिच् = सानसि। निपातनात् उपधा को दीर्घ। **चित्रश्रवस्तमम्** = चित्रं श्रवः यस्य सः चित्रश्रवाः चित्रश्रवस् + तमप् = चित्रश्रवस्तम।

अ॒भि यो म॑हि॒ना दिवं॑ मि॒त्रो ब॒भूव॑ स॒प्रथाः॑।
अ॒भि श्रवो॑भिः पृथि॒वीम्॥७॥

अन्वय– यः मित्रः महिना दिवम् अभिबभूव सप्रथाः श्रवोभिः पृथ्विवीम् अभि।

शब्दार्थ– यः मित्र = जिस सूर्य ने। **महिना** = महिमा से। **दिवम्** = द्युलोक को। **अभिवभूव** = व्याप्त कर लिया है, अधिकार में है। **सप्रथाः** =

प्रसिद्ध कीर्ति वाला होता हुआ। **श्रवोभिः** = अन्नादि से। **पृथिवीम् अभि** = पृथिवी को व्याप लेता है।

अनुवाद– जो सूर्य अपनी महिमा से द्युलोक को व्याप लेता है, अर्थात् अपने अधिकार में रखता है, वह प्रसिद्ध यशवाला सूर्य वृष्टि द्वारा उत्पादित अन्नादि से पृथिवी को भी व्याप लेता है। अर्थात् पृथिवी को प्रचुर अन्न से भर देता है।

भावार्थ– अन्तरिक्ष में रहकर यह सूर्य अपने प्रकाश से अन्तरिक्ष को भर देता है, अर्थात् व्याप लेता है और जब वह अपनी किरणों से जल बरसाकर अन्न को उत्पन्न करता है, तो वह पृथिवी को भी अपनी महिमा से अपने अधिकार में रखता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **बभूव** = वर्तमान के अर्थ में लिट् लकार है। **सप्रथाः** = प्रथ् प्रख्याने + असुन् (अस्) = प्रथाः। प्रथसा सह, 'सह' को 'स' आदेश होकर सप्रथाः। **श्रवोभिः** = श्रूयते इति श्रू+अश्रुष् = श्रवस्। तृतीया का बहुवचन।

मि॒त्राय॒ पञ्च॑ येमिरे॒ जना॑ अ॒भिष्टि॑शवसे।
स दे॒वान् विश्वा॑न् बिभर्ति ॥८॥

अन्वय– पञ्च जनाः अभिष्टिशवसे मित्राय येमिरे। स विश्वान् देवान् बिभर्ति।

शब्दार्थ– **पञ्चजनाः** = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पाँच प्रकार के मनुष्य। **येमिरे** = आहुति देते हैं। **अभिष्टिशवसे** = शत्रुओं पर आक्रमण करने में बल से सम्पन्न। **सः विश्वान् देवान्** = वह सब देवों को। **बिभर्ति** = धारण करता है।

अनुवाद– शत्रुओं पर आक्रमण करने में बल से सम्पन्न सूर्य के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद अर्थात् पाँचों प्रकार के मनुष्य आहुति देते हैं। वह मित्र सब देवताओं को धारण करता है।

भावार्थ– यह मित्र सूर्य अत्यन्त बलशाली है, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पाँचों प्रकार के मनुष्य इसे हवि प्रदान करते हैं।

वह सूर्य सब देवताओं को धारण करता है या पालन करता है। **परिचय**– इस मन्त्र का अभिप्राय है कि सब मनुष्य और देवता सूर्य पर निर्भर हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– येमिरे = यम् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। **अभिष्टिशवसे** = इष + क्तिन् = इष्टि। अभि + इष्टि = पररूप होकर अभिष्टि। अभिष्टये शवः बलं यस्य तस्मै = अभिष्टिशवसे। **बिभर्ति** = भृ धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

मि॒त्रो दे॒वेष्वा॒युषु जना॑य वृ॒क्तब॑र्हिषे।
इष॑ इ॒ष्टव्र॑ता अकः ॥९॥

अन्वय– मित्रः देवेषु आयुषु वृक्तबर्हिषे जनाय इष्ट व्रताः इषः अकः।

शब्दार्थ– देवेषु = दीप्ति आदि गुणों से युक्त देवताओं में। **जनाय आयुषु** = आयु को धारण करने वाले मनुष्यों में। **वृक्तबर्हिषे** = आसन बिछाने वाले, कुश काटने आदि कर्मों के द्वारा हवि अर्पित करने वाले मनुष्य के लिये। **इष्टव्रताः** = कल्याणकारी चाहे जाने योग्य व्रतों को सिद्ध करने वाले के लिये। **इषः** अन्नों को, यज्ञों को। **अकः** = प्रदान करता है, सम्पादित करता है।

अनुवाद– मित्र दीप्ति आदि गुणों से युक्त देवताओं में और आयु को धारण करने वाले मनुष्यों में आसन बिछाने वाले मनुष्य के लिए अर्थात् कुश काटने आदि कर्मों के द्वारा सूर्य के लिये हवि अर्पित करने वाले मनुष्य के लिये व्रतों एवं नियमों का पालन करने वालों के द्वारा चाहे जाने योग्य अन्न को प्रदान करता है, अर्थात् कल्याणकारी यथेष्ट व्रतों को सिद्ध करने वाले अन्नों को या यज्ञों को सम्पादित करता है।

भावार्थ–यह सूर्य देवताओं और मनुष्यों में जो इस सूर्य का सत्कार आदि करता है अर्थात् हवि अर्पित करता है, उन्हीं को यह अन्न प्रदान करता है, कि इस अन्न को नियम का पालन करने वाले ही प्राप्त करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– वृक्तबर्हिर्षि = वृच् + क्त = वृक्त। बर्हिः येन तस्मै। **अकः** = 'कृ' धातु, लुङ् लकार प्र० पु० एकवचन।

* * *

१०. उषस् सूक्त

मण्डल 3 **सूक्त ६१**

ऋषि-विश्वामित्र **देवता-उषस्** **छन्द त्रिष्टुप्**

उषो॒ वाजे॒॑न वाजिनि॒ प्रचे॑ता॒ः स्तो॑मं॑ जुषस्व गृण॒तो म॑घोनि।
पुराणी दे॑वि युव॒तिः पुरं॑धि॒रनु॑ व्रतं॑ च॑रसि विश्ववारे॥ १॥

अन्वय– वाजेन वाजिनि मघोनि उषः। प्रचेताः गृणतः स्तोमम् जुषस्व। विश्ववारे देवि। पुराणी युवतिः पुरन्धिः व्रतम्। अनुचरसि।

शब्दार्थ – वाजेन = अन्न से। **वाजिनि** = अन्नवती। **मघोनि** = धन से सम्पन्न। **उषः**= हे उषा देवी ! **प्रचेताः** = प्रकृष्टज्ञान वाली। **गृणतः** = स्तुति करने वाले के। **स्तोमम्** = स्तोत्र को। **जुषस्व** = ग्रहण करो। **विश्ववारे** = विश्व के द्वारा वरणीय। **पुराणी** = पुरातनी। **पुरंधिः** = बहुत अधिक बुद्धिशालिनी। **अनुव्रतम्** = व्रत आदि नियमों को लक्ष्य करके। **चरसि** = विचरण करती हो।

अनुवाद – अन्न से अन्नवती हुई और धन से सम्पन्न हे उषा देवी! तुम प्रकृष्ट ज्ञान वाली होती हुई स्तुति करने वाले के स्तोत्र को ग्रहण करो। सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय दिव्यगुणों से युक्त हे उषा देवी। तुम पुरातनी युवती के समान हो, सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशालिनी हो, और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो। अर्थात् उनका पालन करती हो।

भावार्थ – इस मन्त्र में उषा देवी से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे उषा देवी! तुम धनेश्वरी और अन्न देने वाली हो। तुम श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त होकर अर्थात् अद्भुत ज्ञानवती होकर जो तुम्हारी स्तुति करता है उसके स्तोत्र को स्वीकार करो। हे उषा देवी! तुम सभी के द्वारा वरण करने योग्य हो तथा

दिव्य गुणों से सम्पन्न हो। तुम प्राचीनकालीन युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो। बहुत अधिक बुद्धिशालिनी हो और तुम हमारे यज्ञ और व्रत आदि नियमों को लक्ष्य करके विचरण करती हो, अर्थात् यज्ञ के नियमों का पालन करती हो। तुम पुरातनी युवती के समान सुशोभित तथा बहुतों के स्तोत्रों से युक्त होकर यज्ञानुष्ठान-निमित्त शीघ्र आओ।

व्याकरण – **चरसि**–चर् धातु लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन **वाजिनि**– वाजः अस्य अस्ति अर्थ में वाज + इनि +ङीप् सम्बोधन का एकवचन। **जुषस्व** – जुष् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **गृणतः**– गृ+श्ना+शतृ। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **मघोनि** – 'मघ' शब्द से 'मतुप्' के अर्थ में वैदिक 'वनिन्'प्रत्यय। 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण और ''ऋन्नेभ्यो ङीप्'' से ङीप् = मघोनी। सम्बोधन का एकवचन। **युवतिः**– युवन् + ति = युवतिः। न् का लोप। **पुरंधिः**– पुरम् धीः यस्याः अर्थ में 'कि' प्रत्यय। अथवा पुरु धीः यस्याः अर्थ में ''पृषोदरादित्वात्'' नियम से पुरु को 'पुरम्' आदेश। **विश्ववारे** – विश्व+वृ+ण (अ)+टाप्। सम्बोधन का एकवचन।

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २॥

अन्वय– उषः देवि ! अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृताः ईरयन्ती विभाहि। पृथुपाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरण्यवर्णाम् त्वा आवहन्तु।

शब्दार्थ– **देवि** = दिव्यगुण वाली। **अमर्त्या** = मरणधर्म से रहित। **विभाहि** = विशेषरूप से शोभायमान बनो। **चन्द्ररथा** = सुवर्णमय रथ पर आरूढ। **सूनृताः** = प्रिय सत्य वाणी को। **ईरयन्ती** = उच्चारण करती हुई। **सुयमासः** = अच्छी प्रकार से नियन्त्रित। **हिरण्यवर्णाम्** = स्वर्ण के समान दीप्तिमान्। **पृथुपाजसः** = अत्यधिक बलशाली।

अनुवाद– हे उषा देवी ! दिव्य गुणों वाली तुम मरणधर्म से रहित होती हुई, सुवर्णमय रथ पर आरूढ होती हुई, प्रिय और सत्य वाणियों का उच्चारण करती हुई, सूर्य की किरणों के सम्बन्ध से विशेष रूप से शोभायमान् बनो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियन्त्रित जो तुम्हारे स्वर्ण वर्ण के घोड़े हैं, स्वर्ण के समान दीप्तिमान् तुमको वे हमारे सम्मुख लायें।

भावार्थ–उषा देवी की स्तुति करते हुए कहा गया है कि हे उषा देवी! तुम दिव्य गुणों से सम्पन्न हो, मरणधर्म से मुक्त अर्थात् मृत्यु से परे हो, तुम्हारा रथ स्वर्णयुक्त है अर्थात् स्वर्ण के समान चक्र वाले रथ पर जब आरूढ होती हो। जब तुम आती हो तो चारों तरफ स्वर्णमयी आभा फैल जाती है, तुम्हारा आगमन होने पर वेद वाणियों का उच्चारण गूंजता है। अर्थात् तुम सत्यरूप वचनों का उच्चारण करने वाली हो। सूर्यनारायण की किरणों के प्रकाश से तुम विशेष प्रकार से शोभायमान् होती हो, अर्थात् सूर्य की किरणों की चमक से तुम सुवर्णमयी शोभा को प्राप्त करो। तुम्हारे बहुत बलशाली और अत्यधिक चमक वाले तथा सुनियन्त्रित जो लाल रंग के घोड़े हैं, वे सरलता से तुम्हारे रथ से जुड़ते हैं। वे तुम्हें आहूत करें। अर्थात् तुम्हारे आने पर अन्धकार की कालिमा दूर हो जाती है, चारों तरफ स्वर्ण के समान प्रकाश फैल जाता है।

व्याकरण– भाहि – भा धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **ईरयन्ती** – ईर्+णिच्+शतृ+ङीप्। **सुयमासः** – सु+यम्+खल् = सुयम। प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप **सूनृता** – सु+ऋतु+टाप् (नुट् का आगम और दीर्घ) **पृथुपाजसः** – पृथु पाजः येषां ते। पा+जुट् (ज)+असुन् (अस्)-पाजस्।

उष॑ः प्र॒तीची भुव॑नानि॒ विश्वोर्ध्वा ति॑ष्ठस्य॒मृत॑स्य के॒तुः।
स॒मा॒नमर्थं॑ चरणीयमा॑ना च॒क्रमि॑व नव्य॒स्या व॑वृत्स्व॥ ३॥

अन्वय– उषः! विश्वा भुवनानि प्रतीची अमृतस्य केतुः ऊर्ध्वा तिष्ठसि। नव्यसि। समानम् अर्थम् चरणीयमाना चक्रम् इव आववृत्स्व।

शब्दार्थ– भुवनानि विश्वा = सम्पूर्ण लोकों के। **प्रतीची** = सम्मुख जाती हुई। **अमृतस्य** = मरण से रहित सूर्य की। **केतुः** = ध्वजा, बोधन कराने वाला। **ऊर्ध्वा** = ऊपर आकाश में। **तिष्ठसि** = स्थित होती हो। **नव्यसि** = सदा नवीन रहने वाली। **समानम् अर्थम्** = एक ही मार्ग पर। **चरणीयमाना** = विचरण करती हुई। **चक्रम् इव** = चक्र के समान। **अववृत्स्व** = पुनः पुनः घूमती रहो।

अनुवाद – हे उषा देवी! तुम सम्पूर्ण लोकों के सम्मुख जाती हुई मरण-धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात् उसका बोधन कराने वाली ऊपर आकाश में स्थित होती हो। सदा नवीन रहने वाली हे उषा! तुम एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के पहिये के चक्र के समान पुनः पुनः घूमती रहो।

भावार्थ– उषा देवी को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे उषा देवी! तुम्हारा आगमन जब सब लोकों में होता है तो तुम मृत्यु से परे अर्थात् मरण से रहित तथा सूर्य को सूचना देने वाली, समान मार्ग में चलती हुई, उच्चाकाश में गमन करती हो। तुम सदा नवीन रहने वाली अर्थात् सनातन काल से युवती ही बनी रहने वाली सदैव एक ही मार्ग पर विचरण किया करो। अर्थात् अपने उद्देश्य के समक्ष दृढ़ रह कर सूर्य के पहिये के चक्र के समान बारम्बार उस मार्ग पर चलो। जिस प्रकार सूर्य प्रतिदिन सुबह उदय होता हो और शाम को अस्त हो जाता है, उसी प्रकार सूर्य की इस परिक्रमा के अनुरूप तुम भी पुनः पुनः, अर्थात् प्रतिदिन इस क्रिया को दोहराओ।

व्याकरण –**प्रतीची** – प्रति+अञ्चु+क्विन्। "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" से ङीप्। 'अञ्च्' के 'अ' और 'ञ्' का लोप तथा 'प्रति' के 'ई' को दीर्घ। **चरणीयमाना** – 'चरणम् इच्छति' अर्थ में चरण+क्यच्+शानच्+टाप्। **केतुः** – 'चाय् पूजायाम्' धातु से चाय+तुन्। 'चाय' को 'की' आदेश और गुण। **ववृत्स्व** – यङ् लुगन्त वृत् धातु लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **नव्यसि** – नव+ईयसुन्+ङीप्। 'नव' के 'अ' और प्रत्यय के 'ई' का वैदिक लोप = नव्यसी। सम्बोधन एकवचन। इस मन्त्र की तुलना ऋग्वेद के १/११३/३ से की जा सकती है। **समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे। न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥**

रात्रि और उषा दो बहने हैं जो एक ही मार्ग से चलती हैं। उस मार्ग का कभी किनारा नहीं मिलता। वे न कभी रुकती हैं और न ठहरती हैं। उनके विचार एक दूसरे के प्रति सहानुभूति से पूर्ण एक से हैं परन्तु उनका रूप परस्पर भिन्न है।

अव॒ स्यूमेव चिन्व॒ती म॒घोन्यु॒षा या॑ति स्वस॑रस्य॒ पत्नी॑।
स्व१॒र्जन॑न्ती सु॒भगा॑ सु॒दंसा॒ आन्ता॑द्दि॒वः प॑प्रथ॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥ ४॥

अन्वय – मघोनी स्वसरस्य पत्नी उषा स्यूम इव अवचिन्वती याति। 'स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसाः दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः आ पप्रथे।

शब्दार्थ – **मघोनी** = धन सम्पत्ति शालिनी। **स्वसरस्य** = सूर्य की, दिन की। **स्यूम् इव** = वस्त्र के समान। **अवचिन्वती** = आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई। **स्व : जनन्ती** = तेज को उत्पन्न करती हुई। स्वर्ग को सजीव करती हुई। **सुभगा** = सुन्दर घनों वाली। **सुदंसा** =सुन्दर यज्ञ रूप कर्मो वाली। **दिवः आ अन्तात्**=द्युलोक के अन्तिम किनारे से। **आ पृथिव्याः** = पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक। **आ पप्रथे**= फैल जाती है।

अनुवाद– धनसम्पत्तिशालिनी सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अपने वस्त्र से अन्धकार को फैंकती हुई चली जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई अथवा स्वर्ग को सजीव करती हुई, सुन्दर यज्ञ कर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथिवी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

भावार्थ– वस्त्र के समान ढकने वाली, घोर अन्धकार का नाश करने वाली तथा धन से युक्त उषा सूर्य की पत्नी के रूप में गमन करती है। वह अत्यन्त सौभाग्यवती, धनसम्पत्तिशालिनी और सत्कर्मों की साधिका है। वही उषा आकाश और पृथिवी की शोभा में प्रकाशित होती है। **व्याकरण – स्यूम** – 'षिवु तन्तुसन्ताने' धातु से मन् प्रत्यय। सिव्+म। सिव् के 'व्' को ''च्छ्वोः शूडनुनासिके च'' से ऊठ् और 'ई' को यणादेश = स्यूम। द्वितीया विभक्ति का एकवचन वैदिक रूप। **मघोनी** – मघ + वनिन् + ङीप् = मघोनी **जनन्ती** – णिजन्त 'जन्' धातु से शतृ। ''छन्दस्युभयथा'' से 'णिच्' का लोप। **स्वसरस्य** – 'सुष्ठु अस्यति क्षिपति तमः' अर्थ में 'सु + अस्' से 'अरक्' प्रत्यय = स्वसर। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **चिन्वती** – चि + (श्नु) + शतृ + ङीप् = चिन्वती।

अच्छा॑ वो दे॒वीमुषसं॑ विभा॒तीं प्र वो॑ भरध्वं॒ नम॑सा सुवृ॒क्तिम्।
ऊ॒र्ध्वं म॑धु॒धा दि॒वि पाजो॑ अश्रेत् प्ररो॑च॒ना रु॑रुचे र॒ण्वसं॑दृक्॥ ५॥

अन्वय– वः अच्छ विभातीम् देवीम् उषसम् वः नमसा सुवृक्तिम् प्रभरध्वम् मधुधा दिवि ऊर्ध्वम् पाजः अश्रेत् रण्वसंदृक् रोचना प्ररुरुचे।

शब्दार्थ– **अच्छ** = स्वच्छ रूप से। **विभातीम्** = प्रकाशित होती हुई। **सुवृक्तिम्** = उत्तम स्तुति। **प्रभरध्वम्** = करो। **मधुधा** = स्तुति, सोम या आदित्य को धारण करने वाली। **ऊर्ध्वम्** = ऊर्ध्व अभिमुख होकर। **पाजः** = तेज, बल। **अश्रेत्** = आश्रय लेती है। **रण्वसंदृक** = दर्शन वाली। **रोचना** = प्रकाशित होने वाले लोकों को। **प्ररुरुचे** = अतिशय रूप प्रकाशित करती है।

अनुवाद– हे स्तुति करने वालो! अपने सामने स्वच्छ रूप से प्रकाशित होती हुई देवी उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो। मधु अर्थात् स्तुतियों को या सोम को अथवा आदित्य को धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक से ऊर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेती है, और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोकों को अपने तेज से अतिशय रूप से प्रकाशित करती है।

भावार्थ–उषा देवी सब ओर स्वच्छ एवं निर्मल प्रकाश को फैलाती हुई तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष होती है। तुम स्वच्छ एवं पवित्र मन से तथा उत्तम वचनों द्वारा उसकी स्तुति करो। उन स्तुतियों को पुष्ट करने वाली उषा आकाश के उन्नत तेज और बल का धारण कर दिव्यरूप को प्राप्त कर सब लोकों को उत्कृष्ट एवं दिव्य तेज से परिपूर्ण प्रकाश प्रदान करती है। वह उषा अत्यन्त सुन्दर, सुशोभित तथा तेजस्विनी है।

व्याकरण– **विभातीम्** – वि+भा+शतृ+ङीप्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। यहाँ लोक में विभान्तीम् रूप भी बन सकता है। **भरध्वम्** – भृधातु (आत्मने पद) लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **रोचना** – रुच्+युन् (अन)+टाप्। **सुवृक्तिम्** – सु पूर्वक 'वृजी वर्जने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय। **अश्रेत्** – 'श्रिञ्' धातु, वर्तमान के अर्थ नें लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन (वैदिक रूप)। **रुरुचे**– रुच् धातु (आत्मनेपद), लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। लट् के अर्थ में लिट्। **मधुधा** – मधु दधाति अर्थ में मधु +धा +क्विप्। **रण्वसंदृक** – रवि (रण्व्) + अच् = रण्व। सम्+दृश्+क्विप् = संदृक। रण्वं संदृक् यस्याः सा = रण्वसंदृक्।

ऋ॒तावरी॑ दि॒वो अ॒र्कैर॑बो॒ध्या रे॒वती॒ रोद॑सी चि॒त्रम॑स्थात्।
आ॒य॒तीम॑ग्न उ॒षसं॑ वि॒भा॒तीं वा॒ममे॑षि॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणः ॥६ ॥

अन्वय– ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि, रेवती रोदसी चित्रम् आ अस्थात्। अग्ने! आयतीम् विभातीम् उषसम् भिक्षमाणः वामम् द्रविणम् एषि।

शब्दार्थ– ऋतावरी = सत्य से युक्त, सत्य नियमों का पालन करने वाली। **अर्कैः** = तेजः पुञ्ज से। **अबोधि** = जानी जाती है। **रेवती** = धन से युक्त। **चित्रम्** = नाना प्रकार के रूपों से युक्त। **आ अस्थात्** = व्याप्त करके स्थित होती है। **आयतीम्** = अपनी ओर आती हुई। **विभातीम्** = प्रकाशमान्। **द्रविणाम्** = धन। **भिक्षमाणः** = याचना करते हुये। **वामम्** = अभीष्ट बाँटने योग्य। **एषि** = प्राप्त करते हो।

अनुवाद – सत्य से युक्त सत्य नियमों का पालन कराने वाली उषा देवी द्युलोक से आने वाले अपने तेज पुञ्ज से जानी जाती है। धन से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथिवीलोक की नाना प्रकार के रूपों से युक्त होकर व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता ! अपनी ओर आती हुई प्रकाशमती उषा देवी से हवि की याचना करते हुये तुम अभीष्ट या बाँटने के योग्य धन को प्राप्त करते हो।

भावार्थ – उस सत्य. से युक्त उषा को आकाश में तेज के रूप से प्रकट होने पर सब जानते हैं। वह उषा धनैश्वर्य से युक्त हैं, और अनेक प्रकार से आकाश-पृथिवी से व्याप्त होते हैं। हे अग्ने ! उषा तुम्हारे सामने आती हैं। तुम उससे हवि की याचना करते हुए धनों को पाते हो।

व्याकरण – ऋतावरी – ऋत + वृ + ट (अ) + टाप्। 'त' के 'अ' को वैदिक दीर्घ। अथवा ऋत + वनिन् + ङीप् ''वनो र च'' से 'न्' 'र' आदेश। **अबोधि, अस्थात् –** बुध् और स्था धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **आयतीम् –** आ + इण् गतौ + शतृ + ङीप् 'इ' को 'य्' आदेश। **विभातीम् –** वि + भा + शतृ + ङीप् = विभाती। द्वितीया का एकवचन। **रेवती–** रयि + मतुप् + ङीप् ''रयेर्मतौ छन्दसि'' सूत्र से 'य्' को सम्प्रसारण पूर्वरूप और गुण होते है। 'मतुप्' के 'म्' को 'व' आदेश ''छन्दसीरः'' (पा०

8/2/15) से हुआ। **भिक्षमाणः** – भिक्ष् + (शप्) + (मुक्) + शानच् (आन) = भिक्षमाण।

ऋ॒तस्य॑ बु॒ध्न उ॒षसा॑मिष॒ण्यन्वृषा॑ म॒ही रोद॑सी॒ आ वि॑वेश।
म॒ही मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य मा॒या च॒न्द्रेव॑ भा॒नुं वि द॑धे पुरु॒त्रा॥ ७॥

अन्वय – वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन् मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुम् पुरुत्रा विदधे।

शब्दार्थ–वृषा = वर्षा करने वाला सूर्य। **ऋतस्य** = प्राकृतिक नियमों का, अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों का। **बुध्ने** = मूल में। **इषण्यन्** = प्रेरित करता हुआ, चाहता हुआ। **मही** = महान्। **आविवेश** = सब ओर से प्रविष्ट हो गया। **महीमाया** = महती माया, विचित्र शक्ति-रूपा उषा देवी। **चन्द्रा इव** = सुनहरी कान्ति के समान। **भानुम्** = सूर्य को। **पुरुत्रा** = बहुत से स्थानों में। **विदधे** = प्रसारित करती है।

अनुवाद – वर्षा करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों के अथवा अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभूत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या, उसको चाहता हुआ महान् द्युलोक और पृथिवीलोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया अर्थात् व्याप्त हो गया। मित्र देवता और वरुण देवता की महती माया अर्थात् विचित्र शक्तिरूपा उषा देवी सुनहली कान्ति के समान स्वर्णिम सूर्य को बहुत स्थानों में प्रसारित करती है।

भावार्थ – प्रस्तुत मन्त्र में कहा गया है कि आदित्य ही वृष्टि द्वारा जल गिराते हैं। वे सत्य रूप दिन के आरम्भ में उषा को भेजकर आकाश-पृथिवी के मध्य प्रविष्ट होते हैं फिर वह अत्यन्त महत्त्वशाली उषा मित्रावरुण की प्रभा के रूप में प्रकट होकर, सुवर्ण के समान अपनी प्रदीप्त में फैलती है।

व्याकरण – वृष – वृष् + कनिन् (अन्) = वृषन् **ऋतस्य** – ऋ + क्त = ऋत। षष्ठी का एकवचन। **बुध्ने** – बुध् + नङ् = बुध्न। सप्तमी विभक्ति का एकवचन। **इषण्यन्** – इच्छति इति इषन्। 'इषन्तमात्मानम् इच्छति' अर्थ

में निपातित 'इषण्य्' धातु से शतृ प्रत्यय। **मही** – महत् + ङीप् ('अत्' का वैदिक लोप)। **विवेश** – विश् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **दधे** – धा धातु (आत्मनेपद), लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **पुरुत्रा** – 'पुरु' शब्द से ''देवमनुष्यपुरुष.'' सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय।

○○○

११. सविता सूक्त

मण्डल ४ **सूक्त ५४**

ऋषि-वामदेव **देवता-सविता** **छन्द-जगती**

अन्तिम मन्त्र में-त्रिष्टुप्

अ॑भूद् दे॒वः स॑वि॒ता वन्द्यो॒ नु न॑ इदा॒नीमह्न॑ उप॒वाच्यो॒ नृभिः॑।
वि यो रत्ना॒ भज॑ति मान॒वेभ्य॒ः श्रेष्ठं नो॒ अत्र॒ द्रवि॑णं॒ यथा॒ दध॑त्॥१॥

अन्वय- सविता देवः अभूत्। नु नः वन्द्यः। इदानीम् अह्नः नृभिः उपवाच्यः। यः मानवेभ्यः रत्ना विभजति। अत्र नः श्रेष्ठम् द्रविणम् यथा दधत्।

शब्दार्थ- सविता देवः=संसार को कर्मों में प्रेरित करने वाला सविता देवता। **अभूत्**=उदय हुए हैं अथवा उत्पन्न हुये हैं। **नु नः वन्द्यः** =हमारे लिये वन्दनीय। **अह्नः इदानीम्**=दिन के इस भाग में। **नृभिः**= मनुष्यों के द्वारा। **उपवाच्यः**=प्रशंसनीय होता है। **यः मानवेभ्यः रत्ना विभजति**=जो मनुष्यों को रत्न प्रदान करता है तथा जो। **अत्र**=इस जगत् में। **नः**=हमें। **श्रेष्ठम् द्रविणम् यथा दधत्** = श्रेष्ठ धन प्रदान करता है।

अनुवाद-संसार को कर्मों में प्रेरित करने वाले, सविता देवता का उदय हो रहा है। वे हमारे लिए वन्दनीय हैं। इस समय यज्ञकाल में और दिन के इस भाग में (तृतीय सवन में) हमारे होताओं द्वारा वे प्रशंसनीय हैं अथवा स्तुति

किये जाते हैं। जो सविता देवता मनुष्यों को रत्न अर्थात् रमणीय पदार्थ प्रदान करता है। तथा जो इस जगत् में यहाँ यज्ञ के अवसर पर हमारे लिये श्रेष्ठ धन को प्रदान करता है।

भावार्थ–सबके द्वारा वन्दना के योग्य वह सूर्य उदय होकर मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसीलिए वह भी मनुष्यों के द्वारा प्रशंसनीय होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **सविता** = षू (सू)+तृच् (इट् का आगम)। **वन्द्यः** = वदि (वन्द)+यत्=वन्द्य। **दधत्** = 'धा' धातु, लेट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **उपवाच्य** = उप+वच्+ण्यत् (य)=उपवाच्य। धातु की उपधा को वृद्धि। **मानवेभ्यः** = मनोः अपत्यम्। मनु+अण्=मानव। चतुर्थी का एकवचन। **रत्ना** = रत्नानि का वैदिक रूप।

दे॒वेभ्यो॒ हि प्र॑थ॒मं य॒ज्ञिये॑भ्योऽमृत॒त्वं सुवसि॑ भा॒गमु॑त्त॒मम्।
आदिद् दा॒मा॒नं सवित॒र्व्यू॑र्णुषेऽनूची॒ना जीवि॒ता मानु॑षेभ्यः ॥२॥

अन्वय– हि सवितः। प्रथमम् यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः अमृतत्वम् उत्तमम् भागम् सुवसि। आत् इत् दामानम् व्यूर्णुषे मानुषेभ्यः अनूचीना जीविता।

शब्दार्थ– **हि सवितः** = हे सविता देव! **प्रथमं** = सबसे पहले। **यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः** =यज्ञ के भाग को प्राप्त करने वाले पूज्य देवों के लिए। **अमृतत्वम् सुवसि** = अमरता को प्रदान करना है। **उत्तमम्** = सबसे उत्तम, उत्कृष्ट। **भागम्** = यज्ञ के भाग प्रदान करता है। **आत् इत्** = इसके बाद ही। **दामानम्** = देने योग्य धनों को, हवि प्रदान करने वाले यजमान को। **व्यूर्णुषे** = प्रकाशित करता है। **मानुषेभ्यः** = मनुष्यों को। **अनुचीना जीविता** = क्रम से पुत्र पौत्रादिकों को प्रदान करता है।

अनुवाद–हे सविता देव! यह प्रसिद्ध है कि तुम सबसे पहले यज्ञ के भाग को प्राप्त करने वाले पूज्य देवों के लिये अमृतत्व को प्रदान करते हो। फिर यज्ञ के उत्तम भाग को प्रदान करते हो। इसके बाद ही हवि प्रदान करने वाले यजमान को अथवा देने योग्य धनों को प्रकाशित करते हो तथा मनुष्यों को क्रम से पुत्र पौत्रादि को जीवन प्रदान करते हो।

भावार्थ–सूर्योदय के समय जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञ का अमृततत्त्व और उत्तम भाग यह सूर्य देवों को प्रदान करता है। इसके बाद उस यज्ञ करने वाले को उत्तम धन तथा पुत्रपौत्रादि प्रदान करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- **अर्णुषे** = अर्णु धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। **यज्ञियेभ्यः** = 'यज्ञभागम् अर्हति' अर्थ में यज्ञ से ''यज्ञर्त्विग्भ्याम्'' से घञ् प्रत्यय। 'घ' को इयादेश=यज्ञिय। **दामानम्** = दा+मनिन्=दामन्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **अमृतत्वम्** = मृ+क्त=मृत। न+मृत=अमृत। अमृतस्य भावः = अमृत+त्व = अमृतत्व। **अनूचीना** = 'अन्वग् भवा' अर्थ में अनु+अञ्च्+ख (ईन)=अनूचीन द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। लोक में 'अनूचीनानि' रूप होगा। **मानुषेभ्यः** = मनु+षुक् (ष)+अञ्=मानुष। चतुर्थी का एकवचन।

अचि॑त्ती॒ यच्च॑कृमा दैव्ये॒ जने॑ दी॒नैर्दक्षैः॒ प्रभू॑ती पुरुष॒त्वता॑।
दे॒वे॑षु च सवित॒र्मानु॑षेषु च॒ त्वं नो॒ अत्र॑ सुवता॒दना॑गसः॥३॥

अन्वय– सवितः ! दैव्ये जने देवेषु च मानुषेषु च अचित्ती दीनैः दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता यत् चकृम, अत्र त्वम् नः अनागसः सुवतात्।

शब्दार्थ–**सवितः** = हे सविता देव! **दैव्ये जने**=तुझ दिव्य देव के बारे में। **देवेषु च मानुषेषु च**=जो पाप देवों के बारे में और मनुष्यों के बारे में किया हो। **अचित्ती**=अज्ञानता से। **दीनैः**=दुर्बलता के कारण। **दक्षैः**=अभिमान के कारण। **प्रभूती**=ऐश्वर्य अहंकार से अथवा। **पुरुषत्वता**=मनुष्य होने के कारण। **यत् चकृम**= जो पाप या अपराध हमने किया है। **त्वम्**=तू। **नः**=हमें। **अनागसः**=पाप से रहित। **सुवतात्**=कर।

अनुवाद– हे सविता देव ! दिव्य गुणों से युक्त जन्म धारण करने वाले आप के प्रति और अन्य देवताओं के प्रति एवं मनुष्यों के प्रति अज्ञानता से या दुर्बलता के कारण अथवा बलशाली ऋत्विजों का पुत्र आदियों के द्वारा अथवा ऐश्वर्य के अहंकार से अथवा पौरुष के मद से जो कुछ भी पाप या अपराध किया है, इस यज्ञ में आप हमें उस पाप या अपराध से रहित बना दीजिये।

भावार्थ– हे सविता देव ! तेरे विषय में हमने यदि अज्ञान, दुर्बलता, अभिमान, ऐश्वर्य मद और मनुष्य होने के कारण कोई अपराध कर डाला हो,

इसी प्रकार जो अपराध हमने देवों और मनुष्यों के बारे में किया हो, उन अपराधों से तू हमें मुक्त कर।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- चकृम = 'कृ' धातु, लिट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन। **अचित्ती** = नञ्+चित्+क्तिन्। तृतीया विभक्ति का एकवचन, वैदिक रूप। **दैव्ये** = देव+यञ्=दैव्य। आदि स्वर को वृद्धि तथा अन्तिम स्वर का लोप। **प्रभूति** = प्र+भू+क्तिन्=प्रभूति। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **पुरुषत्वता** = पुरुष+त्व+तल्+टाप्। **सुवतात्** = षू (सू) धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **अनागसः** = न विद्यते आगः येषां ते। बहुब्रीहि समास। द्वितीया का एकवचन।

न प्रमिये॑ सवि॒तुर्दैव्य॑स्य॒ तद्यथा॒ विश्वं॒ भुव॑नं धारयि॒ष्यति॑।
यत्पृ॑थि॒व्या वरि॑म॒न्ना स्व॑ङ्गुरिर्वर्ष्म॑न्दि॒वः सुवति॑ स॒त्यम॑स्य॒ तत्॥४॥

अन्वय- सवितुः दैव्यस्य तत् न प्रमिये यथा विश्वम् भुवनम् धारयिष्यति। स्वङ्गुरिः पृथिव्याः वरिमन् यत् सुवति आ दिवः वर्ष्मन् अस्य तत् सत्यम्।

शब्दार्थ - सवितुः दैव्यस्य तत् = सविता देव की वह शक्ति। **न प्रमिये** = कभी नष्ट नहीं होगी। **यथा विश्वम् भुवनम् धारयिष्यति** = जिससे सारे विश्व और भुवनों को धारण करता है। **सु अंगुरि** = कुशल हाथों वाले इस सविता ने। **यत् पृथिव्याः वरिमन्** = जो पृथिवी को विस्तृत रूप से। **सुवति** = उत्पन्न किया। **दिवः वर्ष्मन्** = द्युलोक को विस्तृत रूप से उत्पन्न किया। **अस्य तत् सत्यं** = इस सविता देव का वह कर्म सत्य है।

अनुवाद - हे सविता देव! आप जिससे सारे भुवनों को धारण करते हो आप की वह शक्ति कभी नष्ट नहीं होगी। अर्थात् सबको उत्पन्न करने वाले या प्रेरणा देने वाले सविता देवता का वह जगत् धारण रूप कर्म कभी नष्ट नहीं होता, जिन कर्मों के द्वारा वह सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। सुन्दर किरणों रूपी अङ्गुलियों वाला वह सविता देवता श्रेष्ठता या उन्नति के लिये जो प्रेरणा देता है और उच्च लोकों के निवासी शरीर धारियों के लिये प्रेरणा देता है, इसका वह कर्म वस्तुतः सत्य अर्थात् तीनों कालों में अबाध्य रूप से रहता है। अर्थात् कुशल हाथों वाले सविता देवता ने जो पृथिवी को विस्तृत रूप से उत्पन्न

रहती हैं। अर्थात् जैसे-जैसे जीवन यापन करने वाले प्राणी तुम्हारे लिये नियमों में रहते हैं, वैसे-वैसे ही वे तुम्हारे नियमों का पालन करने के लिये तुम्हारी आज्ञा में रहते हैं।

भावार्थ – हे सविता देवता! तूने इन्द्र को पूज्य मानकर उसकी उपासना करने वालों को बड़े पर्वतों से भी बड़ा बनाया। इन मनुष्यों को तू घर से युक्त स्थानों को प्रदान करता है। इस सूर्य की किरणें ज्यों-ज्यों मध्याकाश की तरफ बढ़ती हैं, वैसे-वैसे जगत् के सभी प्राणी अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो जाते हैं। इस प्रकार सूर्य की किरणें अब जगत् को वश में रखती हैं, पर ये किरणें इस सविता देवता की आज्ञा में चलती हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-तस्थुः = स्था धातु, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। **वियेमिरे** = वि+यम् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **क्षयान्** = 'क्षि निवासे' धातु से 'अच्' प्रत्यय=क्षय। **पस्त्यावतः** = 'पस्त्यं गृहम् अस्य अस्ति' अर्थ में पस्त्य+मतुप्+द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। **पतयन्तः** = णिजन्त 'पत्' धातु से शतृ प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। लोक में पातयन्तः या पतन्तः बनेगा। **सवाय** = सू (षू)+अप्=सव। गुण तथा अवादेश।

ये ते॒ त्रिरह॑न्त्सवितः स॒वासो॑, दि॒वेदि॑वे॒ सौभ॑गमासुवन्ति॑।
इन्द्रो॒ द्यावा॑पृथि॒वी सिन्धु॑रद्भिरादि॒त्यैर्नो॑ अदि॑ति॒ः शर्म यंसत्॥६॥

अन्वय- सवितः ये ते सवासः अहन् त्रिः आसुवन्ति, दिवे दिवे सौभगम्। इन्द्रः द्यावापृथिवी अद्भिः सिन्धुः आदित्यैः अदितिः नः शर्म यंसत्।

शब्दार्थ- **सवितः** = हे सविता! **ये** = जो मनुष्य। **ते** = तेरे लिए। **त्रि:अहन्** = तीन बार। **दिवे दिवे** = प्रतिदिन। **सौभगम् सवासः** = उत्तम ऐश्वर्य को देने वाले सोम को। **आसुवन्ति** = निचोड़ते हैं। **इन्द्रः द्यावा पृथिवी** = इन्द्र, द्यु, पृथिवी। **अद्भिः सिन्धुः** = जलसहित नदियां। **आदित्यैः अदितिः** = आदित्यों के साथ अदिति, **उन नः** = हमारे लिए। **शर्म यंसत्**=सुख प्रदान करें।

अनुवाद- हे सविता देवता। सेवन करने वाले जो मुनष्य अथवा यजमान तेरे लिए प्रतिदिन दिन में तीन बार अर्थात् प्रातः, माध्यन्दिन और सायं उत्तम ऐश्वर्य अथवा सौभाग्य को प्रदान करने वाले सोम को निचोड़ते अथवा अभिषव

किया तथा द्युलोक को विस्तृत रूप से उत्पन्न किया, इस सविता देवता का वह कर्म सत्य है।

भावार्थ– जिस अपनी शक्ति से यह सूर्यदेव भुवनों को धारण करते हैं, उस शक्ति का नाश कभी नहीं होता। कुशल हाथों वाले इस सूर्य ने जो पृथिवी को और द्युलोक को इतना विस्तृत बनाया, वह उसका कर्म कभी नष्ट नहीं होता।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– धारयिष्यति = धृ (णिजन्त) धातु, लृट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **दैव्यस्य** = देव+यञ् (स्वार्थ में) = दैव्य। **प्रमिये** = प्र+मीञ् हिंसायाम् से कृत्य प्रत्यय के अर्थ में 'केन्' प्रत्यय। 'इयङ्' आदेश होकर = प्रमिये। **स्वङ्गुरि** = शोभनाः अङ्गुरयो यस्य सः। **वरिमन्** = उरु+इमनिच्। 'उरु' को 'वर्' आदेश = वरिमन्। **वर्ष्मन्** = उरु+इमनिच्। 'उरु' को 'वर्ष्म्' आदेश 'इमनिच्' के 'इ' का लोप।

इन्द्र॑ज्येष्ठान्बृहद्भ्य॒ः पर्व॑तेभ्य॒ः क्षया॑ँ एभ्यः सुवसि प॒स्त्या॑वतः।
यथा॑यथा प॒तय॑न्तो वियेमि॒र ए॒वैव त॑स्थुः सवितः स॒वाय॑ ते ॥५॥

अन्वय– सवितः! इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भयः पर्वतेभ्यः सुवसि एभ्यः पस्त्यावतः क्षयान्। यथा यथा पतयन्तः वियेमिरे एव एव ते सवाय तस्थुः।

शब्दार्थ– सवितः = हे सविता देव! तूने **इन्द्रज्येष्ठान्**=इन्द्र को पूज्य और बड़ा मानने वाले हमें। **बृहद्भयः पर्वतेभ्यः सुवसि**=बड़े-बड़े पर्वतों की अपेक्षा भी बड़ा बनाया। तू ही, **एभ्यः**=इन मनुष्यों को। **पस्त्यावतः क्षयान्**=घर से युक्त स्थानों को प्रदान करता है। ये किरणें। **यथा-यथा पतयन्तः**=जैसे-जैसे ऊपर जाती हुई। **वियेमिरे**=इस विश्व का नियमन करती हैं। वे भी किरणें। **ते सवाय एव एव तस्थुः**=तेरी आज्ञा में ही रहती हैं।

अनुवाद– हे सविता देव! परम ऐश्वर्य से युक्त तुम जिनके पूजनीय हो अथवा इन्द्र को पूज्य और बड़ा मानने वाले हमें बड़े-बड़े पर्वतों की अपेक्षा भी बड़ा बनाया अर्थात् उनसे भी अधिक उन्नत रूप में प्रेरणा देते हो। इन मनुष्यों को घर से युक्त विशाल निवास स्थानों को प्रदान करते हो। ये किरणें जैसे-जैसे ऊपर जाती हुए विश्व का नियमन करती हैं, वे भी तेरी आज्ञा में

रहती हैं। अर्थात् जैसे-जैसे जीवन यापन करने वाले प्राणी तुम्हारे लिये नियमों में रहते हैं, वैसे-वैसे ही वे तुम्हारे नियमों का पालन करने के लिये तुम्हारी आज्ञा में रहते हैं।

भावार्थ – हे सविता देवता! तूने इन्द्र को पूज्य मानकर उसकी उपासना करने वालों को बड़े पर्वतों से भी बड़ा बनाया। इन मनुष्यों को तू घर से युक्त स्थानों को प्रदान करता है। इस सूर्य की किरणें ज्यों-ज्यों मध्याकाश की तरफ बढ़ती हैं, वैसे-वैसे जगत् के सभी प्राणी अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो जाते हैं। इस प्रकार सूर्य की किरणें अब जगत् को वश में रखती हैं, पर ये किरणें इस सविता देवता की आज्ञा में चलती हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-तस्थुः = स्था धातु, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। **वियेमिरे** = वि+यम् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **क्षयान्** = 'क्षि निवासे' धातु से 'अच्' प्रत्यय=क्षय। **पस्त्यावतः** = 'पस्त्यं गृहम् अस्य अस्ति' अर्थ में पस्त्य+मतुप्+द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। **पतयन्तः** = णिजन्त 'पत्' धातु से शतृ प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। लोक में पातयन्तः या पतन्तः बनेगा। **सवाय** = सू (षू)+अप्=सव। गुण तथा अवादेश।

ये ते॒ त्रिरह॑न्त्सवितः स॒वासो॑, दि॒वेदि॑वे॒ सौभ॑गमासुवन्ति॑।
इन्द्रो॒ द्यावा॑पृथि॒वी सिन्धु॑रद्भिरादि॒त्यैर्नो॑ अदि॑ति॒ः शर्म यंसत् ॥६॥

अन्वय- सवितः ये ते सवासः अहन् त्रिः आसुवन्ति, दिवे दिवे सौभगम्। इन्द्रः द्यावापृथिवी अद्भिः सिन्धुः आदित्यैः अदितिः नः शर्म यंसत्।

शब्दार्थ- **सवितः** = हे सविता! **ये** = जो मनुष्य। **ते** = तेरे लिए। **त्रिःअहन्** = तीन बार। **दिवे दिवे** = प्रतिदिन। **सौभगम् सवासः** = उत्तम ऐश्वर्य को देने वाले सोम को। **आसुवन्ति** = निचोड़ते हैं। **इन्द्रः द्यावा पृथिवी** = इन्द्र, द्यु, पृथिवी। **अद्भिः सिन्धुः** = जलसहित नदियां। **आदित्यैः अदितिः** = आदित्यों के साथ अदिति, **उन नः** = हमारे लिए। **शर्म यंसत्**=सुख प्रदान करें।

अनुवाद- हे सविता देवता। सेवन करने वाले जो मुनष्य अथवा यजमान तेरे लिए प्रतिदिन दिन में तीन बार अर्थात् प्रातः, माध्यन्दिन और सायं उत्तम ऐश्वर्य अथवा सौभाग्य को प्रदान करने वाले सोम को निचोड़ते अथवा अभिषव

करते हैं; इन्द्र, द्यु, पृथिवी, जल सहित नदियां, आदित्य आदि गणों के साथ देवमाता अदिति हमारे लिये सुख अथवा कल्याण प्रदान करें।

भावार्थ– हे सविता देव! जो मनुष्य प्रतिदिन तीन सवनों में तीन बार उत्तम भाग्य देने वाले सोम को निचोड़ते हैं, उन हमारे लिये इन्द्र, द्यु, पृथिवी, जलपूर्ण नदियां, अदित्यों के साथ अदिति सुख और कल्याण को प्रदान करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **त्रिः** = त्रि+सुच् (त्रिः वारम् अर्थ में)। **अहन्त्सवितः** = अहन्+सवितः। व्यञ्जन सन्धि से कारण मध्य में धुट् (ध्=त्) का आगम। **अहन्** = सप्तमी विभक्ति का बहुवचन। विभक्ति का लोप छान्दस है। **सवासः** = प्रथमा का बहुवचन है। लोक में 'सवाः' रूप होगा। **दिवेदिवे** = 'प्रतिदिनम्' के अर्थ में निपातनात् वैदिक अव्यय। **सौभगम्** = सु+भग+अण्। सुभगस्य भावः अर्थ है। **शर्म** = शृ+मनिन्=शर्मन्। **यंसत्** = 'यम्' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

○○○

१२. पर्जन्य सूक्त

मण्डल ५ **सूक्त ८३**

ऋषि-अत्रि **देवता-पर्जन्य** **छन्द १, ५, ६, ७, ८ और १० मन्त्र में त्रिष्टुप् २, ३, ४ में जगती तथा ९ में अनुष्टुप्**

अ॑च्छा वद त॒वसं॑ गी॒र्भिरा॒भिः स्तुहि प॒र्जन्यं॒ नम॒सा वि॑वास।
कनि॑क्रदद् वृष॒भो जी॒रदा॑नू रेतो॑ दधा॒त्योष॑धीषु गर्भ॑म्॥१॥

अन्वय– तवसम् पर्जन्यम् अच्छा वद आभिः गीर्भिः स्तुहि नमसा आविवास। वृषभः जीरदानुः कनिक्रदत् ओषधीषु। गर्भम् रेतः दधाति।

शब्दार्थ– **तवसम् पर्जन्यम्** = उस बलवान् मेघ की, हे मनुष्य! **तू अच्छा वद** = अच्छी तरह स्तुति कर। **आभिः गीर्भिः स्तुहि** = इन वाणियों से स्तुति कर **नमसा विवास** = नम्रतापूर्वक उसका गुणगान कर। **वृषभः** = बलशाली **जीरदानुः** = शीघ्रता से दान देने वाला मेघ। **कनिक्रदत्** = गर्जते हुये। **ओषधीषु**

= वृक्ष वनस्पतियों में। **गर्भम् रेतः** = गर्भ को स्थापित करने वाले वीर्य को। **दधाति** = स्थापित करता है।

अनुवाद– हे स्तुति करने वाले! बलशाली पर्जन्य की ओर अभिमुख होकर अर्थात् अच्छी तरह प्रार्थना करो। इन स्तुतियों की वाणियों से उसकी स्तुति करो। हवि रूपी अन्न से अथवा नमस्कार के साथ अथवा नम्रतापूर्वक उसका गुणगान करो। उसकी सब प्रकार से सेवा करो। बलशाली अथवा जलों को बरसाने वाला, शीघ्रता से दान देने वाला और गर्जना करता हुआ पर्जन्य औषधियों में अर्थात् वृक्ष वनस्पतियों में गर्भरूप जल को धारण कराता है।

भावार्थ – आकाश से बरसने वाला जल, मेघ के वीर्य के समान है। ये जलरूपी वीर्य वृक्ष वनस्पतियों में पड़कर उन्हें फलफूल को उत्पन्न करने में समर्थ बनाते हैं। ये फल फूल मानो मेघ द्वारा वृक्षादियों के द्वारा प्रसूत किए जाते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **आविवास** = आ+वि+वास् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **पर्जन्यः** = पृणन् जनयति अर्थ में पृ+जन्+यत्=पर्जन्य। **कनिक्रदत्** = अतिशयेन क्रन्दति अर्थ में छान्दस रूप निपातनात् बनता है। शतृ प्रत्यय। **वृषभः** = वृष्+कभच् (औणादिक प्रत्यय)। **जीरदानुः** = जरि+दा+नु=जीरदानु। अथवा 'जीव्' धातु से रदानुक् प्रत्यय।

वि वृ॒क्षान् ह॑न्त्युत ह॑न्ति र॒क्षसो॒ विश्वं॑ बिभाय॒ भुव॑नं म॒हाव॑धात्।
उ॒ताना॑गा ईषते॒ वृष्ण्या॑वतो॒ यत्प॒र्जन्य॑: स्त॒नय॒न् हन्ति॑ दुष्कृत॑:॥२॥

अन्वय– पर्जन्यः वृक्षान् विहन्ति उत रक्षसः हन्ति महावधात् विश्वम् भुवनम् बिभाय। यत् स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति उत अनागाः वृष्ण्यावतः ईषते।

शब्दार्थ– **पर्जन्य**=मेघ। **वृक्षान् विहन्ति**=वृक्षों को काटता है। **रक्षसः हन्ति**=राक्षसों को मारता है। **महावधात्**=भयंकर प्रहार से। **विश्वम् भुवनम् बिभाय**=सारा विश्व डरता है। **स्तनयन्** =गर्जते हुए। **दुष्कृतः हन्ति** = दुष्ट जनों को मारता है। **उत** = तथा। **वृष्ण्यावतः** = जल की वर्षा करते हुए। **अनागाः ईषते** = निरपराधियों की रक्षा करने की इच्छा करता है।

अनुवाद– जब मेघ वृक्षों को काटता है, नष्ट करता है और राक्षसों को मारता है, इसके भयंकर प्रहार से, महान् वध से, सारा विश्व डरता है। यह

मेघ गर्जते हुए दुष्टजनों को मारता है तथा निरपराध व्यक्ति भी इस बलवान् या जल की वर्षा करते हुए पर्जन्य से डर कर दूर भागते हैं।

भावार्थ–जब बादल गर्जते हैं, तब उनमें से बिजली कड़कती है, जो वृक्षों पर गिरकर उन्हें जला डालती है, राक्षसों को भी मार देती है। बिजली जब कड़कती है, या बादल जब गर्जते हैं तब सारा विश्व भय से काँपने लगता है। मेघ अपने जल से सबका पोषण करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **वृष्ण्यावतः** = वृष्ण्य+मतुप् (वैदिक दीर्घत्व)। अथवा वृषण पापम् इच्छति इति। **स्तनयन्** = स्तनय्+शतृ। **हन्ति** = हन् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **रक्षसः** = रक्षस्, द्वितीया विभक्ति, बहुवचन। **अनागाः** = न आगः यस्य स। **ईषते** = ईष् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, (एकवचन) **बिभाय** = भी धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

र॒थीव॒ कश॒याश्वाँ॑ अभिक्षि॒पन्ना॒विर्दू॒तान्कृ॑णुते व॒र्ष्याँ॒३ अह॑।
दू॒रात्सिं॒हस्य॑ स्त॒नथा॒ उदी॑रते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ कृणुते व॒र्ष्यं१॒॑ नभः॑ ॥३॥

अन्वय– कशया अश्वान् अभिक्षिपन् रथी इव अह वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते। यत् पर्जन्यः नभः वर्ष्यम् कृणुते सिंहस्य स्तनथाः दूरात् उदीरते।

शब्दार्थ– **रथी कशया अश्वान् अभिक्षिपन् इव** = तब पर्जन्य जिस प्रकार एक रथी चाबुक से घोडों को शीघ्र चलाता है, उसी तरह। **दूतान् वर्ष्यान्** = शीघ्र आ गिरने वाली जल धाराओं को। **अविः कृणुते** = प्रकट करता है। **यत् पर्जन्यः** = जब मेघ। **नभः वर्ष्यम् कृणुते** = आकाश को वृष्टिमय कर देता है। **सिंहस्य** = सिंह की गर्जना के समान। **स्तनथाः** = इसकी गर्जनायें। **दूरात् उदीरते** = दूर से ही सुनाई देती है।

अनुवाद–जिस प्रकार एक रथी चाबुक से घोडों को शीघ्र चलाता है, उसी तरह शीघ्र गिरने वाली जलधाराओं को प्रकट करता है, अर्थात् यह पर्जन्य वर्षा करने वाले दूतों जैसे मेघों को प्रकट करता है। जब मेघ आकाश को, अन्तरिक्ष को वृष्टिमय या वर्षा युक्त करता है। तो सिंह की गर्जना के समान इस मेघ की गर्जनायें दूर से सुनाई देती हैं।

भावार्थ - जब पर्जन्य से आकाश आच्छादित हो जाता है, तब वर्षा की जलधारायें उसी तरह शीघ्रतापूर्वक बहती है जिस तरह सारथि के द्वारा चाबुक

के मारे जाने पर घोड़े दौडते हैं। गर्जते हुए बादलों की गरज दूर से सुनाई देती है जैसे कोई सिंह गरज रहा हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी–कृणुते = आत्मने पदी 'कृ' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन छान्दस रूप है। लोक में कुरुते रूप बनता है। **उदीरते** = उत्+इर् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अभिक्षिपन्** = अभि+क्षिप्+शतृ। **वर्ष्यम्** = वर्षा+यत्=वर्ष्य। अथवा वृष्+ण्यत्=वर्ष्य। **स्तनथाः** = 'स्तन गर्जने' धातु से 'अथच्' प्रत्यय।

प्र वाता॒ वान्ति॑ प॒तयन्ति वि॒द्युत॒ उदोष॑धी॒र्जिह॑ते॒ पिन्वते॒ स्वः॑।
इ॒रा विश्वस्मै॒ भुव॑नाय॒ जायते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ पृथि॒वीं रेत॒साव॑ति॥४॥

अन्वय – यत् पर्जन्यः पृथिवीम् रेतसा अवति वाताः प्रवान्ति, विद्युतः पतयन्ति, ओषधीः उत् जिहते, स्वः पिन्वते, इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते।

शब्दार्थ– **यत्** = जब। **पर्जन्यः** = मेघ। **पृथिवीम्** = पृथिवी की तरफ। **रेतसा** = वीर्य से सम्पन्न होकर। **अवति** = जाता है, तब। **वाताः प्रवान्ति** = वायु बहने लगता है। **विद्युतः पतयन्ति** = बिजलियां कड़कने या गिरने लगती है। **उत्** = और। **औषधीः जिहते** = वृक्ष वनस्पति आदि जल पीने लगते हैं और। **स्वः पिन्वते** = आकाश पुष्ट होने लगता है। **इरा** = यह पृथिवी। **विश्वस्मै भुवनाय** = सम्पूर्ण संसार के हित के लिए। **जायते** = पुष्ट हो जाती है।

अनुवाद– जब मेघ पृथिवी की अपने जल से रक्षा करता है, अर्थात् इसको सींचता है। तब वायु अथवा हवायें वर्षा करने के लिए बहने लगती हैं, बिजलियां कड़कने या गिरने लगती हैं और वृक्ष वनस्पति आदि अंकुरित होने लगती हैं या बढ़ती हैं, आकाश पुष्ट होने लगता है, अर्थात् अन्तरिक्ष जल की बूंदों को टपकाता है, और यह पृथिवी सम्पूर्ण संसार के हित के लिए पुष्ट हो जाती है, अर्थात् समर्थ हो जाती है।

भावार्थ– जब मेघ की जलधारायें पृथिवी पर गिरने लगती हैं, तब हवायें बहने लगती हैं, बिजलियां कड़कने लगती हैं। वृक्षादि जल पीकर पुष्ट हो जाते हैं और भूमि संसार के कल्याण के लिए समर्थ हो जाती है। इस मंत्र में प्राकृतिक वर्णन प्रेक्षणीय है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- वान्ति= वा धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **पत्यन्ति** = णिजन्त 'पत्' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **ओषधीः** = वैदिक रूप है। लोक में 'ओषधयः' रूप होगा। **जिहते** = 'ओहाङ् गतौ' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **पिन्वते** = 'पिवि' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **जायते** = जन् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अवति** = अव् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्ज॒र्भुरीति।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पा॒ः स न॑ः पर्जन्य॒॑ महि॒ शर्म॑ यच्छ॥ ५॥

अन्वय- यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति, यस्य व्रते शफवत् जर्भुरीति, यस्य व्रते विश्वरूपाः ओषधीः, स पर्जन्य नः महि शर्म यच्छ।

शब्दार्थ- यस्य व्रते = जिस मेघ के कर्म के कारण। **पृथिवी नन्नमीति** = पृथिवी बहुत उपजाऊ होती है, अत्यधिक झुक जाती है। **यस्य व्रते** = जिसके कर्म के कारण। **शफवत्** = खुरों से युक्त गौ आदि पशु। **जर्भुरीति** = पुष्ट होते हैं। **यस्य व्रते** = जिसके कर्म के कारण। **औषधिः** = वृक्ष वनस्पतियां। **विश्वरूपा** = नानारूप धारण करती है। **पर्जन्य** = हे मेघ! **सः** = वह तू। **नः** = हमें। **महि** = बहुत, महान्। **शर्म** = सुख। **यच्छ** = प्रदान कर।

अनुवाद- जिस मेघ के कर्म के कारण अथवा अनुशासन में रहकर पृथिवी अत्यधिक झुक जाती है अर्थात् जिस मेघ के कर्म के कारण पृथिवी बहुत उपजाऊ होती है, जिसके कर्म के कारण खुरों से युक्त गौ आदि पशु पुष्ट होते हैं अथवा खुर के परिणाम से युक्त स्थान के समान यह सारी पृथिवी जल से भर जाती है और जिसके कर्म के कारण वृक्ष वनस्पतियां नानारूप धारण करती हैं, अर्थात् अंकुरित होती हैं। हे मेघ ! तुम हमारे लिए महान् सुख प्रदान करो।

भावार्थ- इस पर्जन्य की कृपा से पृथिवी उपजाऊ बनती है। पृथिवी से उत्पन्न पदार्थों को खाकर प्राणी पुष्ट होते हैं। वृक्ष वनस्पति आदि भी मेघ के कारण वृद्धि को प्राप्त करते हैं और नाना रूप धारण करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- नन्नमीति = यङ् लुगन्त 'यम्' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **शफवत्** = शफ+मतुप्=शफवत्। **जर्भुरीति** = यङ्

लुगन्त, 'भृञ् भरणे' धातु अथवा 'भुर्' धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **ओषधीः** = ओषधि, प्रथम विभक्ति, बहुवचन। वैदिक रूप। लोक में ओषधयः रूप होगा। **यच्छ** = दा धातु (यच्छ) लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धारा॑ः।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुनेह्या॒पो नि॑षि॒ञ्चन्नसुरः पि॒ता न॑ः ॥६॥

अन्वय– मरुतः। दिवः नः वृष्टिम् ररीध्वम्, वृष्णः अश्वस्य धाराः प्रपिन्वत एतेन स्तनयित्नुना अर्वाङ् आ इहि, अपः निषिञ्चन् असुरः नः पिता।

शब्दार्थ– मरुतः = हे मरुद् गणो। **तुम नः** = हमारे लिए। **दिवः वृष्टिम् ररीध्वम्** = द्युलोक से वर्षा प्रदान करो। **वृष्णः अश्वस्य धाराः** = वर्षणशील मेघ की जलधारायें हमें। **प्रपिन्वत** = पुष्ट करें। हे मेघ! **एतेन स्तनयित्नुना** = इस गर्जना वाले, मेघ के साथ। **अर्वाङ् आ इहि** = हमारी तरफ आ। **अपः निषिंचन्** = जलों को सींचते हुए। **असुरः** = प्राणों को देने वाला वह मेघ। **नः पिताः** = हमारा पालन करने वाला है।

अनुवाद– हे मरुत्, गणो! तुम हमारे लिए द्युलोक से अथवा अन्तरिक्ष से वर्षा को प्रदान करो, वर्षण शील या वर्षा करने वाले मेघ के साथ हमारे सम्मुख आओ। जलों को सींचते हुए तुम प्राणों अथवा जलों को देने वाले और हमारा पालन करने वाले हो।

भावार्थ – जब वायु आकाश से पानी बरसाते हैं, तब मेघ की जलधारायें सब को पुष्ट करती हैं। गरजने वाले मेघ जल बरसाते हैं और वे जल मनुष्य को प्राण देते हैं, इसलिए ये मेघ हमारा पालन करने वाले हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– ररीध्वम् = यङ् लुगन्त 'रीङ् गतौ' धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **एहि** = आ+इ धातु लोट् लकार, मध्यम् पुरुष, एकवचन। **पिन्वत्** – पिवि (पिन्व्) धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **स्तनयित्नुना** = णिजन्त 'स्तन्' धातु से 'इष्णुच्' प्रत्यय= स्तनयित्नु। तृतीया विभक्ति का एकवचन। **निषिञ्चन्** = नि+सिञ्च्+शतृ। **असुर** = असु+रा+क।

अ॒भि क्र॑न्द स्त॒नय॒ गर्भ॒मा धा॑ उद॒न्वता॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न।

दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

अन्वय– अभिक्रन्द, स्तनय, गर्भम्, आधाः, उदन्वता रथेन परिदीय, दृतिम् विषितम् न्यञ्चम् सु कर्ष, उद्वतः निपादाः समाः भवन्तु।

शब्दार्थ– **अभिक्रन्द** = शब्द करो। **स्तनय** = गरजना करो। **गर्भम् आधाः** = वृक्षों में गर्भ स्थापित करो, आधान करो। **उदन्वता रथेन** = जल रूपी, रथ से। **परिदीय** = चारों ओर, सब ओर से भ्रमण करो। **दृतिम्** = घड़ा, मशक। **सुकर्ष** = अच्छी प्रकार खीचों। **विषितम्** = अच्छी प्रकार बंधा हुआ। **न्यञ्चम्** = नीचे मुखवाला कर।

अनुवाद– हे पर्जन्य! पृथिवी के अभिमुख हो कर शब्द करो, गर्जना करो, औषधियों में, वृक्षों में गर्भ स्थापित करो अर्थात् जल का आधान करो तथा जलरूपी रथ से चारों ओर भ्रमण करो। जल से पूर्ण घड़े को नीचे मुखवाला कर तथा उत्तम रीति से खाली करो, अर्थात् मशक के समान जल से भरे हुये मेघ की, जो अच्छी प्रकार से बंधा हुआ है नीचे की ओर अच्छी प्रकार से खीचों, अथवा नीचे की ओर अच्छी प्रकार बन्धन से मुक्त करो। पानी के भर जाने से ऊँचे और नीचे प्रदेश बराबर हो जायें।

भावार्थ – हे मेघ! तू गड़गढ़ा और गरजना कर, फिर जल के रथ पर बैठकर चारों ओर परिभ्रमण करो तथा जल बरसाकर सब तरफ इतना पानी भर दो कि ऊँची तथा नीची जगह एक जैसी हो जायें, उनमें अन्तर ही न रहे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **अभिक्रन्द** - अभि+क्राट् (क्रन्द)धातु, लोट् लकार; मध्यमपुरुष, एकवचन। **स्तन्य** - स्तन्य् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। **आधा** - आङ्+धा धातु, लुङ् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **उदन्वता** - उदक+मतुप्। 'उदक' को 'उदन्' आदेश। **परिदीया**– परि+दा लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक अनुरोध से दीर्घ। **विषितम्**– वि+षिञ् (सि)+क्त। **निपादाः** - नि+पद+अण्।

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सु प्रपाणं भवन्त्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

अन्वय– महान्तम् कोशम् उदच निषिञ्च कुल्याः विषिताः पुरस्तात् स्यन्दन्ताम् द्यावापृथिवी घृतेन व्युन्धि अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणम् भवतु।

शब्दार्थ– महान्तम् कोशम् = महान् खजाने को, जलरूपी भण्डार को। **उदच** = ऊपर को उठाओ, खुला कर और। **निषिञ्च** = नीचे की ओर बरसा दो। **विषिताः कुल्याः** = जल से भरी हुई नदियाँ। **पुरस्तात्** = पूर्व दिशा की ओर। **स्यन्दन्ताम्** = बहें। **द्यावा पृथिवी** = द्युलोक और पृथिवीलोक को। **घृतेन** =जल से। **व्युन्धि** = अच्छी प्रकार भर दें या भिगो दो, ताकि। **अघ्न्याभ्यः** = गौओं के लिये। **सुप्रपाणम्** = उत्तम पान, प्रचुर परिमाण में पीने का जल। **भवतु** = मिले।

अनुवाद– हे पर्जन्य! तुम अपनें जलरूपी महान् खजाने को अथवा जल रूपी भण्डार को आकाश में ऊपर की ओर उठाओ और नीचे की ओर बरसा दो या बहा दो ताकि जल से भरी हुई नदियाँ अच्छी प्रकार से पूर्व दिशा की ओर बहें। द्युलोक और पृथिवीलोक को तुम जल से भर दो, अथवा जल से अच्छी प्रकार से भिगो दो, ताकि गायों के लिए उत्तम पानी मिलें, अर्थात् प्रचुर परिमाण में पीने के लिये जल मिलें।

भावार्थ– हे पर्जन्य! तुम अपने जलरूपी महान् खजाने को खुला कर दो और उसे नीचे की ओर बहा दे। जल से भरी नदियाँ पूर्व दिशा की ओर बहें। तुम जल से सब स्थानों को भर दो, ताकि गाय आदि सभी प्राणियों के लिए पीने का पानी भरपूर मात्रा में मिलें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– उदच = उत्+अञ्चु गतौ धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। छान्दस दीर्घ। **स्यन्दन्ताम्** = स्यन्द् धातु, लोट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **उन्धि** = 'उन्दी क्लेदने' धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **सुप्रपाणम्** = सु+प्र+पा+युच् (अन)। 'न' को 'ण'। **अघ्न्याभ्यः** = न+हन्+क्यप्=टाप्। 'हन्' को 'अ' का लोप और 'घ' आदेश।

यत् प॑र्जन्य॒ कनि॑क्रदत् स्त॒नय॒न् हंसि॑ दुष्कृत॑ः।
प्र॒तीदं विश्वं॑ मोद॒ते यत्किञ्च॑ पृथि॒व्यामधि॑॥९॥

अन्वय– पर्जन्य! यत् कनिक्रदत् स्तनयन् दुष्कृतः हंसि, इदम् विश्वम् यत् किम् च पृथिव्याम् अधि प्रतिमोदते।

शब्दार्थ- यत् किं च पृथिव्याम् अधि = जो भी कुछ पृथिवी पर है। **इदम् विश्वम्** = वह सब। **प्रतिमोदते** = प्रसन्न हो जाता है। **पर्जन्य** = हे पर्जन्य! **य॒त्** =जब तू। **कनिक्रदत्** = शब्द करते हुए, गड़गड़ाते हुए। **स्तनयन्** = गर्जते हुए। **दुष्कृतः हंसि** = दुष्टों को मारता है।

अनुवाद- हे पर्जन्य! जब तुम अत्यधिक शब्द करते हुए अथवा गड़गड़ाते हुए और गरजते हुए दुष्टों को (वर्षा के बाधक दैत्यों को) मारते हो, तब यह सारा संसार और जो कुछ भी इस पृथिवी पर है, वह सब प्रसन्न हो जाता है।

भावार्थ- हे पर्जन्य! जब तू गरजता हुआ अकाल आदि दुष्ट तत्त्वों को मारता है, तब जो कुछ भी पृथिवी पर है, वह सब प्रसन्न हो जाता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- कनिक्रदत् = क्रन्द्+शतृ। अतिशयेन क्रन्दति अर्थ में छान्दस रूप निपातनात्। **स्तनयन्** = स्तनम्+शतृ। **हंसि** = हन् धातु, लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **दुष्कृतः** = दुस्+कृ+क्विप्। तुक का आगम। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

अव॑र्षीर्व॒र्षमु॒दु षू गृ॒भा॒याऽक॒र्धन्वा॒न्यत्येत॒वा उ॑ ।
अजी॑जन॒ ओष॑धीर्भो॑जनाय॒ कम् उ॒त प्र॒जाभ्यो॑ऽविदो मनी॒षाम् ॥१०॥

अन्वय – वर्षम् अवर्षीः, अत् उषू गृभाय धन्वानि अकः अति एतवै उ। भोजनाय कम् ओषधीः अजीजनः, उत प्रजाभ्यः मनीषाम् अविदः॥

शब्दार्थ– हे पर्जन्य! **तू अवर्षीः** = बहुत बरस चुका। **उत्** = अब। **वर्षम् सु गृभाय** = अपनी बरसात को पीछें खींच लें, तूने। **धन्वानि** =मरुस्थल के प्रदेशों को। **अति एतवै अकः** = बहुत बहने योग्य बना दिया है, तूने । **कम् भोजनाय** = सुखपूर्वक भोजन के लिए। **ओषधीः अजीजनः** = औषधी वनस्पतियों को उत्पन्न किया है। **उत** = और। **प्रजाभ्यः मनीषाम् अविदः** = प्रजाओं से स्तुति भी प्राप्त की है।

अनुवाद- हे पर्जन्य! तुम बहुत बरस चुके हो, बहुत वर्षा को बरसा चुके हो। अब इस वृष्टि को, बरसात को पीछे खींच लो अथवा निश्चय से अच्छी प्रकार से रोक लो। तुमने जलहीन प्रदेशों अथवा मरुस्थलों को जल से युक्त बना दिया है। और उनको पार करने योग्य अथवा बहुत बहने योग्य बना

दिया है। तुमने सुखपूर्वक भोग करने के लिए वनस्पतियों को उत्पन्न किया है, तुमने प्रजाओं से स्तुति भी प्राप्त की है।

भावार्थ– हे मेघ! तू बहुत बरस चुका है, तेरे बरसने के कारण मरुस्थल में भी जलप्रवाह बहने शुरु हो गए हैं, सुखपूर्वक भोजन करने के लिए धान्यादि भी उत्पन्न हो गए हैं। विद्वानों ने तेरी स्तुति भी की है, इसलिए तुम अपनी बरसात समेट लो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अवर्षीः = 'वृष्' धातु, लङ् लकार, मध्यमपुरुष का एकवचन। **गृभाय** = 'ग्रह्' धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप है। **एतवै** = 'इण्' 'गतौ' धातु से वैदिक तवै प्रत्यय, तुमुन् के अर्थ में। **अजीजनः** = ण्यन्त जन् धातु, लङ् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **अविदः** = 'विद्' धातु, लङ् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

०००

१३. पूषा सूक्त

मण्डल ६		**सूक्त ५३**
ऋषि-भारद्वाज	**देवता-पूषा (पूषन्)**	**छन्द गायत्री**

(अष्टम मन्त्र में अनुष्टुप् छन्द है)

व॒यमु॑ त्वा पथस्पते॒ रथं॒ न वा॑जसातये। धि॒ये पू॑षन्न युज्महि॥१॥

अन्वय – पथः पते पूषन्! वयम् उ वाजसातये रथं न धिये त्वा अयुज्महि।

शब्दार्थ - (हे) **पथःपते पूषन्** - हे मार्गों के स्वामी (मार्ग का रक्षण करने वाले) पूषन्! **वयम् उ**=हम सब। **वाजसातये**=अन्न लाभ के लिए, अथवा अन्न का दान करने के लिए अथवा अन्नों की प्राप्ति के लिए। **धिये**-तथा कर्मो के सम्पादन के लिए अथवा बुद्धि के कर्म करने के लिए, **रथं न**-रथ के समान (तरह) **त्वा**=तुम्हें, **अयुज्महि**=प्रयुक्त करते हैं अथवा अभिमुख करते हैं।

अनुवाद- हे मार्गों के स्वामी! या मार्ग का रक्षण करने वाले पूषन्! हम सब अन्नलाभ के लिए अथवा अन्न का दान करने के लिए तथा कर्मो का सम्पादन करने के लिए या बुद्धि के कर्म करने के लिए रथ के संमान तुम्हें

प्रयुक्त करते हैं। **अर्थात्** - जिस तरह रण-स्थल में युद्धों के लिए रथ को जोता जाता है, ठीक उसी प्रकार अन्नलाभ करने के लिए हम तुम्हें जोतते हैं।

भावार्थ - हे मार्ग की रक्षा करने वाले मार्गपति पूषन्! अन्न की प्राप्ति के लिए तथा कर्मानुष्ठान सम्पादन के लिए रण-स्थल में युद्धों के लिए रथ की तरह हम तुम्हें जोतते हैं।

टिप्पणी - **पूषन्**-पुष्णाति स्वाश्रितान्, पूष्+कनिन् (अन्) पूषन्। **पथस्पते**-मार्गस्य पते। **अयुज्महि**-''युजिर् योगे' धातु, लुङ् लकार, उत्तमपुरुष बहुवचन। लौकिक भाषा में 'अयुञ्जमहि' बनेगा।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय॥२॥

अन्वय - पूषन्! नः नर्यं वसु प्रयत दक्षिणं वीरं वामं गृहपतिं अभिनय॥

शब्दार्थ- हे पूषन्! **नः** = हम लोगों को, **नर्यं वसु** = मानवों का हित करने वाले धन, **प्रयत दक्षिणं वीरं**=दक्षिणा देने वाले पराक्रमी एवं वीर पुत्र और, **वामं गृहपतिं** = प्रशंसनीय गृहस्वामी के, **अभिनय**=पास ले चलो।

अनुवाद- हे पूषन् ! मानवों के लिये कल्याणकारी धन को प्राप्त करने के लिये हमारे दारिद्रय को भगा देने वाले एवं दक्षिणा देने वाले या शुद्ध धन देने वाले आश्रयणीय, अथवा स्पृहणीय गृहस्थ के पास हमें पहुँचा दीजिये। अर्थात् जिस प्रकार मनुष्यों के हित के लिए धन देने वाला उदार वीर गृहस्थ है। वह प्रशंसनीय एवं पास जाने योग्य है।

भावार्थ - हे मानवों की रक्षा करने वाले पूषन् ! दक्षिणा देने वाला वीर पुरुष, उदार पुत्र, परिश्रमी पुरुष एवं प्रशंसनीय जो गृहस्थ हो, उस को हम प्राप्त करें। अभिप्राय यह हैं कि मानवों के हित के लिये धन देने वाला, उदार, वीर, गृहस्थ जो होगा वह प्रशंसनीय एवं पास जाने योग्य है।

टिप्पणी - **नर्यम्** - नृभ्यः हितम् अर्थ में। नृ+यत्। **वामम्** - वन् धातु से मनिन् प्रत्यय। **'वन्'** के 'न्' का लोप और 'अ' को दीर्घ। **प्रयत** - प्र+यम्+क्त =प्रयत।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय। पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ॥ ३॥

अन्वय– आघृणे पूषन् अदित्सन्तं चित् दानाय चोदय पणेः चित् मनः वि म्रदा॥

शब्दार्थ – हे आघृणे पूषन्! = हे प्रकाशमान् पूषन्! **अदित्सन्तं चित्** = दान न देने वाले को। **दानाय चोदय** = दान देने के लिए प्रेरित कर। **पणेः चित् मनः वि म्रदा** = व्यवहार करने वाले के मन को तुम विशेष पूर्वक नमस्कार करो।

अनुवाद – हे प्रदीप्तमान् पूषन्! तुम दान देने की इच्छा न करने वाले व्यक्ति को भी दान देने के लिये अग्रसारित करो। व्यापार का व्यवहार करने वाले बनिये के मन को तुम विशेष पूर्वक नमस्कार करो। अर्थात् बनिये दान नहीं देते। उन का मन गरीबों की स्थिति देखकर पिघल जाये, ऐसा मृदु करना चाहिए।

भावार्थ – कंजूस व्यक्ति को भी दान में अग्रसारी करना चाहिये एवं बनिये के मन को शान्त करो, क्योंकि बनिये दान नहीं करते। इसलिये उनका स्वभाव नर्म करना चाहिये।

टिप्पणी – अदित्सन्तम् = नञ् + सन्नन्त दा धातु + शतृ प्रत्यय। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **चोदय** = चुद् (णिजन्त) लोट् लकार, मध्यमपुरुष एकवचन। **विम्रद** = वि + म्रद लोट् ल०, म० पु० ए० व०

विशेष - आघृणे का अर्थ दीप्तिमान् है और इस विशेषण का प्रयोग सूर्य के लिए ही हुआ है।

वि प॒थो वाज॑सातये चिनुहि वि मृधो॑ जहि। साध॑न्तामुग्र नो॒ धियः॑ ॥४॥

अन्वय– वाजसातये पथः वि चिनुहि मृधः वि जहि। उग्र नः धियः साधन्ताम्।

शब्दार्थ – वाजसातये पथः वि चिनुहि = धन प्राप्ति के मार्ग ढूंढकर निकालो। **मृधः वि जहि** = घातक शत्रुओं को पराजित कर। (हे) **उग्र** =शूर-वीर पूषन्। **नः धियः साधन्तां** = हमारे कर्मों की सिद्धि हो जायें।

अनुवाद– हे प्रचण्ड बलवान् पूषन्! अन्न आदि को प्राप्त करने के लिए हमारे मार्गों का विशेष रूप से चयन कीजिये। उन मार्गों से चोर आदि हिंसको

को मार भगाइये। हमारे बुद्धिपूर्वक किये कार्य सबके सब सिद्धि को प्राप्त हों अर्थात् उन से हमें लाभ मिले तथा हमारी इच्छाएं सिद्ध हों।

भावार्थ - धनप्राप्ति के मार्ग हमेशा ढूंढने चाहिये क्योंकि बुद्धिपूर्वक धनप्राप्ति के मार्ग हमेशा सिद्धियों में फलीभूत होते हैं।

टिप्पणी– चिनुहि = चि धातु लोट् लकार म० पु० एकवचन। **मृधः** = 'मृध् हिंसायाम्' से क्विप् प्रत्यय द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। **जहि**–हन् धातु लोट् लकार, म० पु० एकवचन। **साधन्ताम्** = आत्मनेपदी धातु लोट् लकार, प्र० पु०, बहुवचन।

परि तृन्धि पणीना मारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥

अन्वय– कवे! पणीनां हृदया आरया परितृन्धि। अथ अस्मभ्यं ईं रन्धय।

शब्दार्थ – हे कवे! = ज्ञानवान् दूरदर्शी। **पणीनां हृदया** = बनिये के हृदय को। **आरया परितृन्धि** = शस्त्र से काटो, **अथ** = और, **अस्मभ्यम्** = हमारे लिये, **ईं रन्धय** = इन दुष्टों को नष्ट भ्रष्ट करो।

अनुवाद – हे बुद्धिमान् पूषन्! लोभी व्यापारियों के कठोर हृदयों को आरे या तेज नुकीले लोहदण्ड से बींध दो; अर्थात् उनके हृदयों की कठोरता को दूर कर दो। इसके बाद इनको हमारे वश में कर दो।

भावार्थ – हे बुद्धिमान् पूषन्! - लोभी व्यापारियों के हृदय को बींध दीजिये एवं पश्चात् उनको हमारे वश में कर दीजिये।

टिप्पणी –तृन्धि - तृह् हिंसायाम् धातु, लोट् लकार, म० पु०, एकवचन। **रन्धय** - रध् धातु, लोट् लकार, म० पु०, ए० व। **हृदया** - हृदयति का छान्दस रूप। **आरया** –ऋ गतौ + अण् + टाप् = आरा (तृतीया० ए० व०)

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय॥६॥

अन्वयः - पूषन् आरया पणेः वि तुद। हृदि प्रियं इच्छ अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय।

शब्दार्थ - हे पूषन् = हे पालन पोषण करने वाले! **आरया पणेः वि तुद**= आरे से पणियों के हृदयों को पीड़ा दे। **हृदि प्रियं इच्छ** = हृदय में प्रिय

करने की इच्छा करें और, **अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय** = इस दुष्ट को हमारे लिये नष्ट करो।

अनुवाद - हे पालन पोषण करने वाले पूषा देवता! आरे से लोभी व्यापारी के हृदय को बींध दो, और उसके हृदय में हमको प्रिय धन आदि को देने की इच्छा को प्रेरित करो। इसके बाद इन को हमारे वश में कर दो।

भावार्थ - हे पूषा देव! लोभी व्यापारियों के हृदय को काट दो, एवं उसमें सर्वकल्याण की भावनाओं को फैलाकर हमारे वश में कर दो।

टिप्पणी - तुद् और इष् धातु के लोट् लकार (म० पु० एकवचन)

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय॥७॥

अन्वय– कवे! आ रिख पणीनां हृदया किकिरा कृणु। अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय॥

शब्दार्थ– हे कवे = ज्ञानवान् पुरुष पूषा! **आरिख** = पूर्णता से लिख दो, **पणीनां हृदया किकिरा कृणु** = बनियो के हृदय को खाली कर दो, **अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय** = और शत्रुपक्ष को हमारे लिए नष्ट भ्रष्ट कर दो।

अनुवाद – हे ज्ञानी पुरुष पूषा! लोभी व्यापारियों के हृदय को लिख दो, अर्थात् हमारे अनुकूल बना दो। इसके बाद उनको शिथिल अर्थात् कोमल कर दो एवं पश्चात् हमारे वशीभूत कर दो।

भावार्थ– हे ज्ञानीपुरुष पूषा! वास्तविकता को लिख लोभी व्यापारियों के अन्दर बुरी भावनाओं को दूर कर। अर्थात्–व्यवहारशील लोग बुरी वृत्ति से लोगों को न फंसा देवे ऐसा करो ॥

टिप्पणी - **रिख्** - 'रिख् लेखने' धातु, लोट् लकार, म० पु०, एकवचन। **किकिरा** - यङ् लुगन्त 'कृ विक्षेपे' धातु से अच् प्रत्यय। **कृणु** - कृ धातु, लोट् लकार, म० पु०, ए० व०, वैदिक रूप है।

यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥

अन्वय – आघृणे पूषन्! यां ब्रह्मचोदनीं आरां बिभर्षि तया समस्य हृदयं आ रिख किकिरा कृणु ॥

शब्दार्थ – हे, आघृणे पूषन् = तेजस्वी पूषा देव!, **यां ब्रह्मचोदनीं आरां बिभर्षि** = जिस ज्ञान से प्रेरित होने वाली आरा को तू धारण करता है, **तया समस्य हृदयं** = उससे समान के हृदय को, **आ रिख** =अच्छी तरह से लिख और **किकिरा कृणु** = खाली कर दो ॥

अनुवाद – हे प्रदीप्तशाली पूषा देवता! जिस ज्ञान से प्रेरित होने वाली आरा को तुम धारण करते हो। उस आरे से सभी रोगियों के हृदय को लिख दो और शिथिल बना दो अर्थात् कोमल बना दो।

भावार्थ– हे पूषा देव! सबके हृदय के समभाव रखने वाला जो है उसके हृदय में समभाव को यथावत् स्थित करो। वह सबके लिए आदर्श हृदय का भाव होगा। अतः उसके समभाव को यथावत् लिख कर रखना अत्यावश्यक है।

टिप्पणी – ब्रह्मचोदनीम् = ब्रह्म अन्नं चोदयति प्रेरयति–अर्थ में ब्रह्म+चुद्+ल्युट् (अन)+ङीप्=ब्रह्मचोदनी। **बिभर्षि** – भृ धातु, लट् लकार, म० पु०, एकवचन

या ते अष्ट्रा गोओपशाऽऽ घृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

अन्वय– आघृणे या ते अष्टा गो ओपशा पशुसाधनी तस्याः ते सुम्नं ईमहे ॥

शब्दार्थ – हे आघृणे = तेजस्वी वीर! **या ते अष्टा गो ओपशा** = जो तेरी व्यापक और गौओं की सहायता, **पशुसाधनी**=पशुओं को पास करने वाली बुद्धि है, **तस्याः ते सुम्नं ईमहे**=उस तेरी बुद्धि से हमें उत्तम मनोभाव मिले ऐसा हम चाहते हैं।

अनुवाद – हे तेजस्वी पूषन्! तुम्हारा जो अष्ट्रा नाम का शस्त्र गौओं को हम तक पहुँचाने वाला अर्थात्–गो धन को बढ़ाने वाला, अर्थात् पशुओं का संचालन करने वाला है। तुम्हारे उस शस्त्र के द्वारा हम सुख की याचना करते हैं।

भावार्थ - हे तेजस्वी वीर! जो तुम्हारी व्यापक परिशुद्ध बुद्धि है' उस से हमेशा श्रेष्ठ मन, मिला एवं उत्तम मन हमें प्राप्त हो।

टिप्पणी - **अष्ट्रा** -'अश् व्याप्तौ' धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय। स्त्रीलिङ्ग; में टाप् प्रत्यय **गोओपशा**-आ + उप + शीङ् + ड टाप् = ओपशा। गवाम् ओपशा = गोओपशा। **सुम्नम्** - सु+म्ना+क=सुम्न। **ईमहे** = ईङ् (ई) धातु लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

उ॒त नो॑ गो॒षणि॒ं धिय॑मश्वसां वा॑जसामुत। नृ॒वत् कृ॑णुहि वी॒तये॑ ॥१०॥

अन्वय– उत नः धियं गो-षणिं अश्व सां वाज-सां उत नृवत् वीतये कृणुहि ॥

शब्दार्थ– उत नः धियं = और हमारी बुद्धि को, **गो-षणिं**=गोसेवक, **अश्व सां** =घोड़ों के साथ रहने वाली, **वाज-सां**=अन्न प्राप्त करने वाली, **उत नृवत्**=और हमारे पुत्र प्रपौत्रों के साथ, मानवों के साथ मिल जुल कर रहने वाली, **वीतये कृणुहि**=विशेष उत्पादन के लिए कर।

अनुवाद- हमारी बुद्धि को या कर्म को उपयोग कराने के लिए गौओं को प्राप्त कराने वाली, घोड़ों को प्राप्त कराने वाली, अन्न को प्राप्त कराने वाली, और मनुष्यों से युक्त अर्थात् परिवार को बढ़ाने वाली बनाओ।

भावार्थ– हे देव! हमारी बुद्धि हमेशा गौओं की सेवा करने वाली, घोड़ों के साथ रहने वाली, अन्न प्राप्त करने वाली एवं पुत्र पौत्रों तथा मानवों के साथ मिलकर रहने वाली बनाओ।

टिप्पणी- **गोषणिम्** - गो+षणु+इ=गोषणि **नृवत्** - नृ+वतुप् **वीतये** - वी+क्तिन्=वीति चतुर्थी का एकवचन **कृणुहि** - वैदिक रूप है। लोक में कुरु होता है।

०००

१४. पूषन् सूक्त

मण्डल ६ **सूक्त ५४**

ऋषि-बार्हस्पत्य भरद्वाज **देवता-पूषा** **छन्द-गायत्री**

सं पू॑षन् वि॒दुषा॑ नय॒ यो अञ्ज॑सानु॒शास॑ति। य ए॒वेदमिति ब्रव॑त्॥१॥

अन्वय–पूषन् ! विदुषा सम् नय यः अञ्जसा अनुशासति। यः एव इदम् इति ब्रवत् ।

शब्दार्थ– पूषन् = पोषक देव! पोषण करने वाले सूर्यदेव। **विदुषा** = विद्वान्, ज्ञानीपुरुष। **सं नय**=मिला दो। **अञ्जसा** = सरल मार्ग से। **अनुशासति**=उपाय बताता है, उपदेश देता है। **इदम् एव**=तुम्हारा खोया धन, यह है।

अनुवाद– हे पोषण करने वाले सूर्यदेवता! हमें उस विद्वान् पुरुष के पास ले जाओ अथवा उससे मिला दो जो सरल मार्ग से हमें खोये हुये धन को प्राप्त करने का उपदेश दे, और जो इस प्रकार से खोया हुआ धन वह है, यह कह दे।

भावार्थ– जो निःसन्देह यह ऐसा ही है ऐसा अचूक कहता है, वह सच्चा मनुष्य है। हे पोषक देव! जो अनुकूल शासन करता है, योग्य उपदेश देता है अथवा उपाय बताता है, उस ज्ञानीपुरुष के पास शीघ्र ले जाओ। ऐसा विद्वान् सबका हित करेगा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - अनुशासति = अनु+शास् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन वैदिक रूप है। **ब्रवत** = ब्रू धातु, लेट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

समु॑ पू॒ष्णा ग॑मेमहि॒ यो गृ॒हाँ अभि॒शास॑ति। इ॒म ए॒वेति॑ च ब्रव॑त्॥२॥

अन्वय– पूष्णा उ सम् गमेमहि, यः गृहान् अभिशासति, इमे एव इति च ब्रवत्।

शब्दार्थ– सं गमेमहि = मिलते हैं। **गृहान्** = घरों के विषय में, घरों को (जिनमें खोये हुये पशु आदि धन हैं) **इमे एव** = खोये हुये पशु आदि धन ये हैं।

अनुवाद– सबका पोषण करने वाले, सूर्य देवता के द्वारा हम उस व्यक्ति से मिलते हैं, जो मनुष्य, तुम्हारे खोये हुये पशु आदि इस घर में है, इस प्रकार घरों को बतलाता है। और जो तुम्हारे खोये हुये पशु आदि धन ये हैं, इस प्रकार कहता है।

भावार्थ– पूषा अर्थात् सबका पोषण करने वाला देवता इस विश्वरूपी घर को अनुशासन में रखता है। इस विश्व का एक कण भी अपनी मर्यादा से बाहर नहीं जाता। इसी तरह घर का स्वामी सम्पूर्ण घर को अनुशासन में रखे। उसके अनुशासन के बाहर परिवार का कोई भी सदस्य न जाए।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **पूष्णा** = पूषन् शब्द तृतीया का एकवचन। **गमेमहि** = गम् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन, वैदिक रूप। **ब्रवत्** = ब्रू धातु, लेट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

पू॒ष्णश्च॒क्रं न रि॑ष्यति॒ न कोशोऽव॑ पद्यते। नो अ॑स्य व्यथते प॒विः ॥३॥

अन्वय – पूषणः चक्रम् न रिष्यति, कोशः न अवपद्यते, अस्य पविः न व्यथते।

शब्दार्थ - **चक्रम्**=चक्र नामक आयुध। **रिष्यति**=दूषित होता है, नष्ट होता है। **कोश**=चक्र का मध्य भाग। **अवपद्यते**=गिरता है, हीन होता है। **व्यथते**=कुण्ठित होती है। **पविः** = धार।

अनुवाद -सबका पोषण करने वाले सूर्य का चक्र नाम का आयुध कभी दूषित नहीं होता; अर्थात् कभी नष्ट नहीं होता। इस चक्र का मध्य भाग कभी गिरता नहीं, अर्थात् कभी हीन नहीं होता। और इसकी धार कभी व्यथा को

प्राप्त नहीं होती अथवा कभी कुण्ठित नहीं होती। अर्थात् इस चक्र से चोरों को मार कर पूषा हमारा धन प्राप्त करावे।

भावार्थ–पूषा का चक्र और शस्त्र पीछे नहीं हटता, शत्रु पर योग्य रीति से आघात करता है, तथा इसका कोश अथवा खजाना कभी खाली नहीं होता, सदा भरा रहता है। शस्त्रों की तीक्ष्णता और खजाना भरा रहना, इस पर राज्ययंत्र की सुरक्षिततता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **पूषणः** = पूषन् शब्द, षष्ठी विभक्ति, एकवचन। **रिष्यति** = रिष् हिंसायां धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अवपद्यते** = अव+पद् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **व्यथते** = व्यथ् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यो अ॑स्मै ह॒विषावि॑ध॒न्न तं पू॒षापि॑ मृष्यते। प्र॒थ॒मो वि॑न्दते॒ वसु॑ ॥४॥

अन्वय– यः अस्मै हविषा अविधत् तम् पूषा अपि न मृष्यते। प्रथमः वसु विन्दते।

शब्दार्थ– **हविषा**=हवि द्वारा। **अविधत्**=अर्पण करता है, परिचर्या करता है। **मृष्यते**=कष्ट देता है, हानि पहुँचाता है। **प्रथमः**=प्रमुख। **विन्दते**=प्राप्त करता है।

अनुवाद– जो यजमान पूषा के लिए हवि अर्पण करता है, अथवा इस पूषा की चरु पुरोडाश आदि हवि के द्वारा परिचर्या करता है, उसको पूषा कभी कष्ट नहीं देता, अथवा थोड़ी सी भी हानि नहीं पहुँचाता। वह पहिले धन को प्राप्त करता है, अंर्थात् वह मनुष्य उपासकों में प्रमुख होता हुआ धनों को प्राप्त करता है।

भावार्थ– जो मनुष्य इस पूषा देवता को मन से हवि अर्पण करता है, उसे यह पूषा देवता कभी कष्ट नहीं पहुँचाता, और उसे सबसे पहले धन प्रदान करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी – **पूषा** = पूषन् शब्द, प्रथमा का एकवचन। **अविधत्** = विध् धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। लट् के अर्थ में लङ्लकार। **विन्दते** = विद् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

पूषा गा अन्वे॑तु नः पूषा र॑क्षुत्वर्व॑तः। पूषा वाजं॑ सनोतु नः ॥५॥

अन्वय – पूषा नः गाः अनु एतु, पूषा अर्वत रक्षतु, पूषा नः वाजम् सनोतु।

शब्दार्थ – **गाः**=गौवों के। **अनु एतु** = पीछे-पीछे जाय। **अर्वतः** = घोड़ों की। **वाजम्** = अन्न, बल। **सनोतु** = देवे, प्रदान करे।

अनुवाद– सबका पोषण करने वाला सूर्य देवता रक्षा करने के लिए हमारी गौओं के पीछे-पीछे जाये। पूषा देवता हमारे घोड़ों का रक्षण करे। पूषा देवता हमें धन या अन्न अथवा बल हमें देवे।

भावार्थ – पूषा देवता की कृपा से हमारे पास गौवें, घोड़े और अन्न या धन भरपूर हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी – **अन्वेतु** = अनु+इ धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अर्वत** = अर्वत् शब्द, द्वितीया का बहुवचन। **सनोतु** = षणु (सन्) धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

पूषन्ननु प्र गा इ॑हि यज॑मानस्य सुन्व॒तः। अ॒स्माकं स्तुव॒तामुत॥६॥

अन्वय– पूषन्! सुनवतः यजमानस्य गाः अनु प्रेहि। उत स्तुवताम् अस्माकम्।

शब्दार्थ– गाः=गौओं के। **अनु इहि**=पीछे-पीछे आओ। **सुन्वतः** =यज्ञ करने वाले, सोमरस का अभिषव करने वाले। **स्तुवताम्**=स्तुति करने वाले।

अनुवाद– हे सबका पोषण करने वाले सूर्यदेवता! तुम्हारे लिये यज्ञ करने वाले अथवा सोमरस का अभिषव करने वाले यजमान की गौओं की रक्षा करने के लिये उनके पीछे जाओ, और तुम्हारी स्तुति करने वाले हमारी गौओं के पीछे भी जाओ।

भावार्थ-यज्ञ करने वाले यजमान के लिए तथा स्तुति करने वाले हमारे लिए गौवें अनुकूलता से प्राप्त हों।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- **प्रेहि** = प्र+इ धातु, लोट्लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। **यजमानस्य** = यज्+(शप्)+मुक्+शानच्=यजमान। षष्ठी का

एकवचन। **सुन्वतः** = सु+श्नु+शतृ = सुन्वत्। षष्ठी का एकवचन। **स्तुवताम्** = स्तु+शतृ, उवङ् आदेश=स्तुवत्। षष्ठी का एकवचन।

माकि॑र्नेश॒न्माकीं॑ रिष॒न्माकीं॒ सं शा॑रि॒ केव॑टे। अथारि॑ष्टाभि॒रा ग॑हि॥ ७॥

अन्वय– माकिः नेशत्, माकीम् रिशत्, माकीम् केवटे संशारि। अथ अरिष्टाभिः आ गहि।

शब्दार्थ– **माकिः**=कभी नहीं। **नेशत्**=नष्ट न हो। **माकीम्**=न कभी। **रिशत्**=नष्ट होवे, मारा जावे। **संशारि**=नष्ट हो। **केवटे**=जल के कुंवे में। **अरिष्टाभिः**=अहिंसित गौवों के साथ।

अनुवाद– हे पूषन्! हमारा गौ धन कभी नष्ट न हो, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं द्वारा न कभी मारा जाये और जल के कुंवे आदि में गिरकर नष्ट न हो। ऐसे अहिंसित गौवों के साथ सायंकाल होने पर हमारे पास आओ।

शब्दार्थ– हे पूषा देव! हम तुम्हे नष्ट न करें, तुम हमें नष्ट न करो। हम कभी भी पतन की ओर न जायें। तुमभी अविनाशी गौओं को लेकर हमारे पास आओ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

नेशत् = नश् धातु, लेट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **रिषत्** = रिष् हिंसाया धातु, लेट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **शारि** = शॄ हिंसायाम् धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **अरिष्टाभिः** = रिष्+क्त+टाप्=रिष्टा। न+रिष्टा=अरिष्टा। तृतीया का बहुवचन।

शृण्वन्तं॑ पूषणं॑ व॒यमिर्य॒मन॑ष्टवेदसम्। ईशा॑नं रा॒य ई॑महे ॥ ८॥

अन्वय– शृण्वन्तम् इर्यम् अनष्टवेदसम् ईशानम् पूषणम् वयम् रायः ईमहे।

शब्दार्थ– **शृण्वन्तम्**=प्रार्थना को सुनने वाले। **इर्यम्**=दरिद्रता को दूर भगा देने वाले। **अनष्टवेदसम्**=जिसका धन कभी नष्ट नहीं होता ऐसे। **ईशानम्**=सबके ईश्वर। **रायः**=धन को। **ईमहे**=मांगते हैं, याचना करते हैं।

अनुवाद– हमारी प्रार्थना को सुनने वाले, दरिद्रता को दूर भगा देने वाले,

जिसका धन कभी नष्ट नहीं होता ऐसे, सबके ईश्वर, सबके पोषक, पूषा देवता से हम धन को मांगते हैं।

भावार्थ– यह पूषा देवता स्तोत्रों को सुनने वाला, अविनाशी धन अपने पास रखने वाला है, उससे हम धन की याचना करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– शृण्वन्तम् = श्रु + (श्ना)+शतृ=शृण्वत् द्वितीया का एकवचन। **ईशानम्** = ईश् + शानच्=ईशान। **रायः** = दै शब्द, द्वितीया का बहुवचन। **ईमहे** = ई धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

पूष॒न्तव॑ व्र॒ते वयं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न। स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि॥९॥

अन्वय– पूषन्! तव व्रते वयम् कदाचन न रिष्येम इह ते स्तोतारः स्मसि।

शब्दार्थ– **व्रते**=व्रत का पालन करते हुये। **रिष्येम**=हिंसित होवें। **कदाचन**=कभी भी। **स्तोतारः**=स्तुति करने वाले। **स्मसि**=बने रहें।

अनुवाद– हे पूषा देवता ! तुम्हारे व्रत का पालन करते हुये हम कभी भी हिंसित न हों; अर्थात् तेरे व्रत में रहेंगे तो हम कभी भी नष्ट नहीं होंगे क्यों तेरी स्तुति करने वाले हम हैं; अर्थात् इस कर्म में हम सदा तुम्हारी स्तुति करने वाले बने रहें।

भावार्थ– हे सबका पोषण करने वाले पूषा देवता ! तेरे व्रत में रहते हुए हम कभी भी नष्ट न हों, क्योंकि हम तेरी स्तुति करने वाले हैं। जो इन देवताओं के अनुशासन में रहकर इनके द्वारा बताये गए कर्मों को करता है, कभी भी नष्ट नहीं होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी–

रिष्येम – रिष् धातु (कर्मवाच्य), विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **स्तोतारः** – स्तु+तृच्=स्तोतृ। प्रथमा का बहुवचन। **स्मसि** – 'अस्' धातु, लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'स्मः' रूप बनता है।

परि॑ पू॒षा प॒रस्ता॒द्धस्तं॑ दधातु॒ दक्षि॑णम्। पुन॑र्नो न॒ष्टमाज॑तु॥१०॥

अन्वय– पूषा परस्तात् दक्षिणम् हस्तम् परिदधातु। नः नष्टम् पुनः आ अजतु।

शब्दार्थ- परस्तात्=दूर देश में। **परिदधातु**=ऊपर चारों ओर धारण करे। **दक्षिणम्**=सीधे, दायें। **नष्टम्**=नष्ट हुए गोरूप धन को। **आ अजतु**=देवे।

अनुवाद- पोषण करने वाला सूर्य देवता, दूर देश में हमारे गौधन की रक्षा करने के लिये अपने सीधे हाथ को ऊपर धारण करें; अर्थात् अपने दायें हाथ को हमारे चारों ओर धारण करें। और नष्ट हुए गौरूप धन को वह हमें पुनः देवे।

भावार्थ- पूषा देवता हमें अपना आशीर्वाद देने के लिए अपना दायां हाथ हमारे ऊपर रखे और नष्ट हुए धन को हम फिर से प्राप्त कर लें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- दधातु=धृञ् धारणे धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **आजतु**=आ अज् धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

०००

१५. आपः सूक्त

मण्डल ७ **सूक्त ४९**

ऋषि-वसिष्ठ **देवता-अपस्** **छन्द त्रिष्टुप्**

स॒मु॒द्रज्ये॑ष्ठाः सलि॒लस्य॒ मध्या॑त् पु॒ना॒ना यन्त्यनि॑ विशमानाः।
इन्द्रो॒ या व॒ज्री वृ॑षभो र॒राद॒ ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु॥

अन्वय –समुद्रज्येष्ठाः पुनानाः अनिविशमानाः सलिलस्य मध्यात् यन्ति। वज्री वृषभः इन्द्रः याः रराद ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु।

शब्दार्थ –समुद्रज्येष्ठाः = जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल। **पुनानाः अनिविशमानाः** = पवित्र करते हैं, और कहीं भी ठहरते नहीं है। **सलिलस्य मध्यात् यन्ति** = जल के मध्य स्थान से चलते हैं जो। **वज्री वृषभः इन्द्रः याः रराद** = वज्रधारी बलवान् इन्द्र ने जिनके लिये मार्ग बना दिया था। **ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु** = वे दिव्यजल यहाँ मेरी सुरक्षा करें।

अनुवाद –जिनमें समुद्र श्रेष्ठ अथवा प्रशस्यतर है, ऐसे जल विश्व को पवित्र करते हैं, और कहीं भी ठहरते नहीं। अर्थात् सदा बहने वाले जल अन्तरिक्ष के मध्य स्थान में से गमन करते हैं। वज्र को धारण करने वाले बलवान् इन्द्र ने जिनके लिए मार्ग बना दिया था, वे दिव्यगुणों से सम्पन्न जल यहाँ अर्थात् इस लोक में रहने वाले मेरी सुरक्षा करें।

भावार्थ –पवित्र करने वाली, सदा बहती रहने वाली तथा समुद्र की ओर जाने वाली जो नदियां हैं, जिन्हें इन्द्र ने प्रवाहित किया है वे नदियाँ हमारी रक्षा करें।

या आपो॑ दि॒व्या उ॒त वा॒ स्रव॑न्ति खनित्रि॑मा उ॒त वा॒ याः स्वयं॒॑जाः।
स॒मु॒द्रार्था॒ याः शुच॑यः पाव॒कास्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह॒ माम॑वन्तु॥ २॥

अन्वय– याः आपः दिव्याः उत वा स्रवन्ति, खनित्रिमाः, उत वा याः स्वयंजाः, समुद्रार्थाः या शुचयः पावकः ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु।

शब्दार्थ– **याः आपः दिव्याः** = जो जल आकाश से प्राप्त होते हैं और **उत वा स्रवन्ति** = जो नदियों में बहते हैं जो। **खनित्रिमाः** = खोदकर कुयें से प्राप्त होते हैं। **उत वा याः स्वयंजाः** = और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। **समुद्रार्थाः** = ये सब समुद्र की ओर जाने वाले हैं। **याः शुचयः पावकः** = जो शुद्धता और पवित्रता करने वाले हैं। **ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु** = वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें।

अनुवाद– जो जल अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं और जो जल नदियों के रूप में बहते हैं, जो जल खोदकर कुंएँ आदि से प्राप्त होते हैं और जो झरने आदि के रूप में स्वयं उत्पन्न होते हैं। ये सब समुद्र की ओर जाने वाले हैं और जो शुद्धता और पवित्रता करने वाले हैं, वे दिव्यगुणों से सम्पन्न, जल इस लोक में मेरी रक्षा करें।

भावार्थ– जल के चार प्रकार हैं – 1. वर्षा के द्वारा जो आकाश से प्राप्त होता है, वे दिव्य जल कहलाते हैं। 2. जो झरनों से स्रवते हैं, उन्हें प्रस्रवन कहते हैं। 3. जो खोदकर कुयें और बावड़ी आदि से निकाला जाता है। 4.

और जो स्वयं स्रोत के द्वारा फूटकर बाहर आते हैं ये सभी जल निर्दोष तथा पवित्र करने वाले हैं।

यासां॒ राजा वरु॑णो॒ याति॒ मध्ये॑ सत्यानृते अ॑व॒पश्य॒ञ्जना॑नाम्।
म॒धुश्चुतः॒ शुच॑यो याः पा॑व॒कास्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥३॥

अन्वय– यासाम् राजा वरुणः जनानाम् सत्यानृते अवपश्यन् मध्ये याति, याः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु।

शब्दार्थ – यासाम् राजा वरुणः = जिनका राजा वरुण। **जनानाम् सत्यानृते अवपश्यन्** = लोगों के सत्य और असत्य का निरीक्षण करता है। **मध्ये याति** = मध्य लोक अथवा अन्तरिक्षलोक में जाता है। **या मधुश्चुतः** = जो जल प्रवाह मधुर रस देते हैं। **शुचयः पावकः** = जो पवित्र और शुद्ध हैं। **ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु** = वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें।

अनुवाद– जिन जलों का राजा वरुण मनुष्यों के सत्य और असत्य को देखता हुआ मध्यलोक अथवा मध्य अन्तरिक्षलोक में गमन करता है। जो जलप्रवाह मधुर रस को टपकाने वाले, पवित्र और शुद्ध करने वाले हैं; वे दिव्य गुणों से सम्पन्न जल इस पृथ्वी पर मेरी रक्षा करें।

भावार्थ– राजा वरुण अर्थात् तेजस्वी और वरणीय प्रभु की सर्वत्र सत्ता है, इसलिए वह प्राणिमात्र के सत्य और असत्य का निरीक्षण करता है। उस प्रभु के द्वारा प्रेरित जो मधुरता से भरे हुए जल प्रवाह हैं, वे दिव्य गुणों से सम्पन्न जल हमारी रक्षा करें।

यासु राजा॒ वरु॑णो॒ यासु सोमो विश्वे॑ दे॒वा यासूर्जं॑ मद॑न्ति।
वै॒श्वा॒न॒रो यास्व॒ग्निः प्रवि॑ष्ट॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥४॥

अन्वय– राजा वरुणः यासु, यासु सोमः, यासु विश्वे देवाः ऊर्जम् मदन्ति, वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः, ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु।

शब्दार्थ– राजा वरुणः यासु = वरुण राजा जिन जलों में रहता है। **सोमः यासु** = सोम जिनमें रहता है। **विश्वे देवाः यासु ऊर्जम् मदन्ति** = सब

देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनन्दित होते हैं। **वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः** = विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। **ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु** = वे दिव्य जल यहाँ मुझे सुरक्षित रखें।

अनुवाद– जलों का राजा वरुण जिन जलों में रहता है, जिन जलों में सोम रहता है, जिन जलों में रहते हुए सभी देवता अन्न को प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। विश्व का संचालक अग्नि जिन जलों में प्रविष्ट हुआ है, वे दिव्य गुणों से सम्पन्न जल इस पृथिवी पर मेरी रक्षा करें।

ooo

१६. वास्तोष्पति सूक्त

मण्डल ७ **सूकत ५४**

ऋषि-मैत्रावरुणि वसिष्ठः देवता-वास्तोष्पतिः छन्द-त्रिष्टुप्

वास्तो॑ष्पते॒ प्रति जानीह्य॒स्मान् स्वावे॑शो अ॑नमीवो भ॑वा नः।
यत् त्वेम॑हे प्रति तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे॒ ॥१॥

अन्वय–वास्तोष्पते अस्मान् प्रतिजानीहि नः स्वावेशः अनमीवः भव। यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व नः द्विपदे चतुष्पते शं भव।

शब्दार्थ–हे वास्तोष्पते = वास्तोष्पते। **अस्मान् प्रति जानीहि** = तुम हमें अपने समझो, **नः स्वावेशः अनमीवः भव** = हमारे घर को निरोग करने वाला हो, **यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व** = जो धन हम तुम्हारे पास से मांगेंगे वह हमें दे दो, **नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव** = हमारे द्विपाद और चतुष्पाद के लिये कल्याणकारी हो।

अनुवाद–हे घर के रक्षक वास्तोष्पते देवता! तुम हम भक्त लोगों को पहचान लो; अर्थात् समझ लो। हमारे लिये सुन्दर आवासों को देने वाले और रोगों से मुक्त कराने वाले बनो। तुम से जो कुछ हम याचना करते हैं। उसको हमारे लिये प्रदान करो। इसलिए हमारे दोपायो अर्थात् पुत्र पौत्रादि के लिए और चौपाये पशुओं के लिये कल्याण करने वाले बनो।

भावार्थ—अभिप्राय यह है कि घर के रक्षक वास्तुदेवता कहते हैं कि घर को, उसका पति अर्थात्-गृहस्वामी उस गृह में रहने वालों को अपना समझे। राष्ट्रपति राष्ट्र में रहने वालों को अपना समझे और उस घर या राष्ट्र में रहने वाले सभी निरोगी हों॥

टिप्पणी—वास्तोष्पते = वास्तो: गृहस्य पते स्वामिन्। षष्ठी तत्पुरुष। विभक्ति का वैदिक अलुक्। वस् + तुण् = वास्तु॥ **प्रति जानीहि** = प्रति + जा लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **जुषस्व** = जुष् धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **स्वावेशः** =शोभन: आवेश: यस्मात्। सु + आवेश = स्वावेश।

वास्तो॑ष्पते प्र॒त॑रणो न एधि गय॒स्फानो॒ गोभि॒रश्वे॑भिरि॑न्दो।
अ॒जरा॑सस्ते स॒ख्ये स्या॑म पि॒तेव॑ पु॒त्रान् प्रति॑ नो जुषस्व॥२॥

अन्वय—वास्तोष्पते न: प्रतरण: एधि, गय-स्फान: इन्दो गोभि: अश्वेभि: अजरास: स्याम, ते सख्ये स्याम पिता पुत्रान् इव न: जुषस्व॥

शब्दार्थ—हे वास्तोष्पते = गृह के स्वामी देव! **न: प्रतरण: एधि** = तुम हमारे तारक हो और **गय-स्फान:** = धन के विस्तार कर्त्ता हो, **हे इन्दो** = सोम। **गोभि: अश्वेभि:** = गौओं और घोड़ों से युक्त होकर, **अजरास: स्याम** = हम जरा रहित हों, **ते सख्ये स्याम** = तेरी मित्रता में हम रहें। **पिता पुत्रान् इव** = जैसे पिता पुत्रों का पालन करता है उस तरह, **न: जुषस्व** = हमारा पालन कर॥

अनुवाद— हे घर के संरक्षक वास्तुदेवता! तुम हमारी उन्नति करने वाले और धनों के बढ़ाने वाले बनो। चन्द्रमा के समान आह्लादक हे घर के देवता! तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हम गौओं, घोड़ों आदि पशुओं सहित बुढ़ापे से रहित होवें। अर्थात् जिस प्रकार पिता पुत्र का पालन करता है, उसी प्रकार तुम हमारा पालन करो।

भावार्थ—अभिप्राय है कि घर का हमेशा विस्तार रहे, घर के साथ गायें, घोड़ें रहें घर में रहने वाला कोई भी क्षीण, निर्बल न हो सभी निरोगी व हृष्ट पुष्ट हों; घर वाले हमेशा प्रभु के मित्र एवं ईश्वर भक्त हों।

टिप्पणी– प्रतरणः = प्र + तृ + ल्युट् (अन) = प्रतरण **गयस्फानः** = गयस्य धनस्य स्फानः प्रवर्धकः। स्फायी (स्फाय्) + ल्युट् (अन्) छान्दस् 'य्' का लोप। **सख्ये** = सखि + य = सख्य सप्तमी का एकवचन **अजरासः** = 'अजर' शब्द का प्रथमा विभक्ति बहुवचन वैदिक रूप है।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वयागातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिःसदा नः॥ ३॥

अन्वयः–वास्तोष्पते शग्मया रण्वया गातुमत्या. ते संसदा सक्षीमहि। क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात।

शब्दार्थ–हे वास्तोष्पते = वास्तुशास्त्र के स्वामिन्। **शग्मया रण्वया** = सुखदायक और रमणीय। **गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि** = प्रगतिशील ऐसी तुम्हारी सभा को हम प्राप्त हों। ऐसा स्थान हमें मिलें अर्थात्, हम ऐसे सभास्थान के सदस्य बनें। **क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि** = प्राप्त धन को तथा अप्राप्त धन की प्राप्ति में हमारे श्रेष्ठ धन को सुरक्षित रखो। **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात** = तुम हमें सदा कल्याण साधनों से सुरक्षित रखो।

अनुवाद–हे वास्तुशास्त्र के स्वामिन् देवता! सुख देने वाले, रमणीय और धन से सम्पन्न तुम्हारे प्रदेय घर रूपी स्थान से हम संयुक्त होवें। तुम भी प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करने में और अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने में हमारे अभीष्ट धन की रक्षा करो। अर्थात् तुम कल्याणरूपी मार्गों के द्वारा हमारी सदा रक्षा करो।

भावार्थ–अभिप्राय यह है कि घर सुखदायक रमणीय प्रगतिसाधक और जहाँ अनेक लोग मिलकर बैठ सकें ऐसा होना चाहिए। घर छोटा भी न हो अपितु जहाँ सभी मिलकर बैठ सकें, ऐसा ही होना चाहिए। हम अप्राप्त को प्राप्त करके उसका संरक्षण करने में कुशल रहें।

टिप्पणी– शग्मया = 'शम्' धातु से 'क' प्रत्यय करके निपातनात् शग्म। स्त्रीलिङ्ग में शग्मा तृतीया का बहुवचन। **रण्वया** = 'रम्' धातु से निपातनात् सिद्ध होता है। **गातुमत्या** = गातु + मतुप् + ङीप् = गातुमती। **संसदा** = सम् + सद् + क्विप्। **योगे** = युज् + घञ् = योग, सप्तमी एकवचन।

०००

१७. अश्विनौ सूक्त

मण्डल ७ सूक्त ७१

ऋषि-वसिष्ठ देवता-युगल अश्विनौ छन्द-त्रिष्टुप्

अप् स्वसु॑रु॒षसो॒ नग्॑जिहीते रि॒णक्ति॑ कृ॒ष्णीर॑रुषाय॒ पन्था॑म्।
अश्वा॑मघा॒ गोम॑घा वां हुवेम॒ दिवा॒ नक्तं॒ शरु॑म॒स्मद् यु॑योतम्॥१॥

अन्वय– स्वसुः उषसः नक् अपजिहीते। कृष्णीः अरुशाय पन्थाम् रिणक्ति अश्मघा गोमघा वाम् हुवेम। दिवानक्तम् अस्मत् शरुम् युयोतम्।

शब्दार्थ– श्वसुः = बहन। **उषस** = उषा से। **नक्** = रात्रि। **अपजिहीते** = दूर हटती है, हो जाती है। **रिणक्ति** = खाली कर देती है। **कृष्णीः** = काली रात। **अरुषाय** = लाल रंग वाले चमकते हुए सूर्य के लिये। **पन्थाम्** = मार्ग को। **अश्वमघा** = अश्वधन वाले। **गोमघा** = गौ धन वाले। **हुवेम** = बुलाते हैं, स्तुति करते हैं। **दिवानक्तम्** = दिन रात। **शरुम्** = घातक शत्रु को। **युयोतम्** = दूर कर दो।

अनुवाद– रात्रि बहन उषा से दूर हो जाती है अर्थात् उषा के उदय होने के बाद रात्रि स्वयं हट जाती है। काली रात लाल रंग वाले चमकते हुये सूर्य के लिये मार्ग खाली कर देती है। घोड़ों और गौओं के रूप में वैभव को देने वाले अश्विनी कुमारो! हम आपकी स्तुति करते हैं। तुम दोनों दिन-रात घातक शत्रु को हम से दूर करो।

भावार्थ– उषा से रात्रि अलग होती है। रात्रि सूर्य के लिए मार्ग खाली कर देती है और सूर्य अन्धकार को दूर करके दिन को प्रवृत्त करता है। गौधन और अश्वधन के रूप में वैभव को प्राप्त करने से निर्धनता दूर हो जाती है। हम धनवान् होकर अपने शत्रुओं को दूर करें और निर्भय होकर उन्नति करते रहें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– शरुम्–'शृ हिंसायाम्' धातु से 'उ' प्रत्यय। शृ + उ = शरु।

उ॒पाया॑तं दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॒ रथे॑न वा॒मम॑श्विना॒ वह॑न्ता।
युयुतम॒स्मदनिरा॒ममी॑वां॒ दिवा॒ नक्तं॑ माध्वी॒ त्रासी॑थां नः ॥२॥

अन्वय– अश्विना दाशुषे मर्त्याय वामम् वहन्ता रथेन उपायातम्। अस्मत् अनिराम् अमीवाम् युयुतम्। माध्वी नः दिवानक्तम् त्रासीथाम्।

शब्दार्थ– माध्वी = मीठे स्वभाव वाले। **अश्विना** = अश्विनी देवताओ। **रथेन** = रथ से सुन्दर। **वामम्** = सुन्दर धन या अन्न को। **वहन्ता** = लेकर, वहन करते हुये। **दाशुषे** = दानी। **मत्यार्य** = मनुष्य के। **उप आयातं** = समीप आओ। **अस्मत्** = हम से। **अनिराम्** = अन्न के अभाव को। **अमीवाम्** = रोग को। **युयुतम्** = दूर कर दो। **नः दिवा** = हमारी दिन रात। **नक्तं त्रासीथाम्** = रक्षा करो।

अनुवाद– हे अश्विनी देवताओ! दानी अपना हवि प्रदान करने वाले यजमान मनुष्य के लिये सुन्दर धन या अन्न को लेकर रथ के द्वारा समीप आओ। हम से दरिद्रता, अर्थात् अन्न के अभाव को और रोगों को दूर कर दो। हे मीठे स्वभाव वाले! अथवा मधु से भरे हुये अश्विनी देवो। हमारी दिन रात रक्षा करो।

भावार्थ– अश्विनी देवता अपने रथ पर उत्तम अन्न और धन को रखकर हमारे पास आयें और हमारे अन्न के अभाव को दूर करें, तथा हमसे सब रोगों को दूर करके हमारा संरक्षण करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अनिराम् = न + इरा = अनिरा = इरा = अन्न

आ वा॒ं रथ॑मव॒मस्यां॒ व्यु॑ष्टौ सु॒म्नाय॒वो वृष॑णो वर्तयन्तु।
स्यूम॑गभस्तिमृ॒तयुग्भि॒रश्वै॒राश्वि॑ना॒ वसु॑मन्तं वहेथाम्॥३॥

अन्वय– अवमस्याम् व्युष्टौ सूम्नायवः वृषणः वाम् रथम् आवर्तयन्तु। अश्विना! स्यूमगभस्तिम् वसुमन्तम् ऋतयुग्भिः अश्वैः आवहेथाम्।

शब्दार्थ– अवमस्याम् = समीप के। **व्युष्टौ** = प्रातः काल में। **वृषणः** = बलवान्। **सुम्नायवः** = सुख से चलने वाले घोड़े। **वाम् रथम्** = तुम्हारे रथ को हमारे समीप। **आवर्तयन्तु** = ले आवें। **अश्विना** = हे अश्विनी देवताओ। **ऋतयुग्भिः अश्वैः** = सरलतापूर्वक जोते जाने वाले घोड़ो से। **स्यूमगभस्तिम् वसुमन्तम्** = तेजस्वी तथा धन वाले रथ को। **आ वहेथाम्** = इधर ले आओ।

अनुवाद– समीप की उषा का उदय होने पर अथवा निकटवर्ती प्रातः काल होने पर बलवान् और सुख देने वाले घोड़े तुम्हारे रथ को हमारे समीप ले आवें। हे अश्विनी देवताओ! सरलतापूर्वक जोते जाने वाले घोड़ों से तेजस्वी तथा दान के योग्य धनों से युक्त रथ को इधर ले आओ।

भावार्थ– हे अश्विनी देवताओ! उषा के उदय होने पर बलवान् और सुख से चलने वाले घोड़े तुम्हारे रथ को हमारे पास ले आयें तथा हमें तेज तथा धन आदि देकर सुखी करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– स्युमगभस्तिम् = स्यूमाः सुखकरः गभस्तयः रश्मयः यस्य तम्। 'स्वि तन्तु सन्ताने' धातु से 'मन्' प्रत्यय। स्वि + मन् (म) = स्यूम।

यो वा॒ं रथो॑ नृप॒ती अस्ति॑ वोळहा त्रि॑वन्धु॒रो वसु॑माँ उ॒स्त्रया॑मा।
आ न॑ ए॒ना ना॑स॒त्योप॑ यात॒मभि यद्वां॑ वि॒श्वप्स्न्यो॒ जिगा॑ति॥४॥

अन्वय– नृपतीः यः वाम् रथः बाळहा त्रिवन्धुरः वसुमान् उस्त्रयामा अस्ति, नासत्या एना नः उप आ यातम्। यत् वाम् विश्वप्स्न्यः अभि जिगाति।

शब्दार्थ– नृपती नासत्या = हे मानवों के रक्षक और पालक अश्विनी देवताओ! **वाम् यः रथः वसुमान्** = तुम्हारा जो रथ धन युक्त और। **उस्त्रयामा** = प्रातः काल में जाने वाला है। **त्रिवन्धुरः बाव्ळहा अस्ति** = तीन बन्धनों वाला और स्थान पर शीघ्र पहुँचने वाला है। **एना नः उपयातम्** = इससे हमारे पास तुम आओ। **यत् विश्वप्स्न्यः** = जो सर्वत्र जाने वाला रथ। **वाम् जिगाति** = तुम्हे शीघ्र यहाँ लाता है।

अनुवाद– मनुष्यों की रक्षा और पालन करने वाले, हे अश्विनी देवताओ! जो तुम्हारा रथ धन से सम्पन्न है, और प्रातःकाल में जाने वाला है, तीन बन्धनों

वाला; अर्थात् सारथि सहित तीन व्यक्तियों के बैठने के स्थान से युक्त है। और दिन भर चलता है। हे अश्विनी कुमारो! इस रथ से तुम हमारे पास आओ। जो रथ सर्वत्र जाने वाला है अर्थात् संसार में व्याप्त होता हुआ अभिगमन करता है और तुम्हें शीघ्र यहां लाता है।

भावार्थ– अश्विनी देवता मनुष्यों के रक्षक और सत्य के पालक हैं। उनका रथ धन से युक्त रहता है। प्रातः काल उनका रथ सर्वत्र घूमता है। उनका यह रथ हमारे पास आये और हमारी रक्षा करे।

युवं च्यवा॑नं ज॒रसो॑ऽमुमुक्तं॒ नि पे॒दव॑ ऊहथु॒राशुमश्व॑म्।
निरंह॑स॒स्तम॑सः स्प॒र्तमत्रिं॒ नि जा॑हु॒षं शि॑थि॒रे धा॑तम॒न्तः ॥५॥

अन्वय– युवम् च्यवानम् जरसः अमुमुक्तम्, पेदवे आशुम् अश्वम् निः ऊहथुः, अत्रिम् अंहसः तमसः निःस्पर्तम्, जाहुषम् शिथिरे अन्तः निधातम्।

शब्दार्थ– **जरसः च्यवानम् अमुमुक्त** = तुमने बुढ़ापे से च्यवन ऋषि को मुक्त किया। **युवम् आशुम् अश्वम्** = तुमने शीघ्र-गामी घोड़ों को। **पेदवे निरुहथुः** = पेदु नरेश के पास पहुँचा दिया। **अत्रिम् तमसः अंहसः निष्पर्तम्** = अत्रि को अन्धेरे से और कष्ट के स्थान से दूर किया और **जाहुषम् शिथिरे अन्तः** = जाहुष नरेश को भ्रष्ट हुए उसके राज्य पर पुनः। **निधातम्** = तुमने बिठा दिया।

अनुवाद– हे अश्विनी देवताओ! तुम दोनों ने च्यवन ऋषि को वृद्धावस्था से मुक्त किया था, पेदु नामक राजा के लिये शीघ्र गति से चलने वाले घोड़े को युद्ध में पहुँचा दिया था, अत्रि नामक ऋषि को पाप और गुफा के अन्धकार से पार कराया था और जाहुष नामक राजा को उसके राज्य के भ्रष्ट हो जाने पर पुनः उस राज्य पर बिठा दिया था।

भावार्थ– अश्विनी कुमारों ने वृद्ध च्यवन ऋषि को तरुण बना दिया। पेदु को उत्तम घोड़ा दिया, अत्रि ऋषि को अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावास से मुक्त किया, जाहुष को उसके राज्य पर फिर बिठलाया।

इ॒यं म॑नी॒षा इ॒यम॑श्विना॒ गीरि॒मां सु॑वृक्तिं वृ॑षणा जुषेथाम्।
इ॒मा ब्रह्मा॑णि युवयून्यग्मन् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।।६ ।।

अन्वय– अश्विना इयम् मनीषा इयम् गीः वृषणा इमाम् सुवृक्तिम् जुषेथाम्। इमा ब्रह्माणि युवयूनि अग्मन् यूयम् स्वस्तिभिः नः सदा पात।

शब्दार्थ–वृषणा अश्विना = हे बलवान् अश्विनी देवताओ! **इयम् मनीषा** = यह हमारी इच्छा है। **इयम् गीः** = यह हमारी वाणी है। **इमाम् सुवृक्तिम् जुषेथाम्** = इस सुन्दर स्तुति को तुम स्वीकार करो। क्योंकि **युवयूनि** = तुम्हारी कामना पूरी करने वाले। **इमा ब्रह्माणि अग्मन्** = ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं। **नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात** = हमारा सदा तुम कल्याण करने के साधनों से संरक्षण करो।

अनुवाद–हे अश्विनी देवताओ! यह हमारी कामना है तथा हमारी स्तुति है, वाणी है कि तुम बलवान् हो। तुम हमारी इस सुन्दर स्तुति को स्वीकार करो। ये व्यापक स्तुति वाक्य अर्थात् ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं। सदा युवा रहने वाले तुम दोनों को प्राप्त होंवें; अर्थात् तुम हमेशा हमारा कल्याणों द्वारा हमारी सदा रक्षा करो।

भावार्थ–हे अश्विनी देवताओ! यह हमारी इच्छा है, यह हमारी वाणी है। इस सुन्दर स्तुति को तुम स्वीकार करो, क्योंकि ये स्तोत्र तुम्हारी कामना पूर्ण करने वाले हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– सुवृक्तिम् = सु + वृज् + क्तिन्।

ooo

१८. इन्द्रावरुण सूक्त

मण्डल ७ सूक्त ८३
ऋषि-वसिष्ठ देवता-इन्द्रावरुणौ छन्द-जगती

यु॒वां न॑रा॒ पश्य॑मानास॒ आप्यं॑ प्रा॒चा गव्यन्त॑ः पृथुपर्श॑वो ययुः।
दासा॑ च वृ॒त्रा ह॒तमार्या॑णि च सु॒दास॑मिन्द्रावरु॒णाव॑सावतम्॥ १॥

अन्वय–नरा मित्रावरुणा युवां आप्यं पश्यमानासः गव्यन्तः पृथुपर्शवः प्राचा ययुः दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं सुदासं अवसा अवतम्॥

शब्दार्थ–**हे नरा मित्रावरुणा** = नेता, मित्र तथा वरुण! **युवां आप्यं पश्यमानासः** = तुम्हारें बन्धुभाव की ओर देखने वाले। **गव्यन्तः पृथुपर्शवः** = गौओं की प्राप्ति की इच्छा करने वाले और बड़े पशु को धारण करने वाले। **प्राचा ययुः** = पूर्व की ओर चले। तुम, **दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं** = विनाशक घेरने वाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रु से मिले उनको भी मारो। **सुदासं अवसा अवतं** = अपने सुदास को अपनी शक्ति से सुरक्षित रखो।

अनुवाद–हे इन्द्र और वरुण नेताओ! तुम दोनों के बन्धुत्व को देखते हुए गौओं को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति बड़े-बड़े पशुओं को लिये हुये पूर्व दिशा की ओर गये हैं। हे इन्द्र और वरुण! तुम दोनों दासों वृत्रों और हमारे आर्य शत्रुओं का वध करो। इस सुदास नामक मेरे यजमान-राजा की, अपनी रक्षण की शक्ति से रक्षा करो।

भावार्थ–हे मित्रावरुण! जो तुम्हारी ओर बन्धुभाव से देखने वाले हों, गौओं की प्राप्ति करने की इच्छा करते हों, तथा परशु आदि शस्त्रों को धारण करते हों, उन्हें तुम उन्नति की ओर ले चलो, और शत्रु विनाशक एवं क्षुद्र

आर्य हों, उन्हें तुम मारो अर्थात् भस्मीभूत करो।

टिप्पणी– आप्यम् = अप् + व्यत्। **हतम्** = 'हन्' धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन। **गव्यन्त** = गा: आत्मन: इच्छन्ति अर्थ में गो + क्यप् + शतृ। प्रथमा बहुवचन।

यत्रा॒ नरः॑ स॒मय॑न्ते कृ॒तध्व॑जो यस्मि॑न्ना॒जा भव॑ति किं च॒न प्रि॒यम्।
यत्रा॒ भय॑न्ते॒ भुव॑ना स्व॒र्दृश स्वत्रा न इन्द्राव॒रुणाधि॑ वोचतम्॥ २॥

अन्वय :-यत्र कृतध्वज: नर: समयन्ते यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति, यत्र स्वर्दृश: भुवना भयन्ते तत्र न: अधि वोचतम्॥

शब्दार्थ–यत्र कृतध्वज: नर: समयन्ते = जहाँ मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्ध के लिये एकत्रित होते हैं, **यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति** = जिस युद्ध में कुछ भी नहीं होता है। **यत्र स्वर्दृश: भुवना भयन्ते** = जिस युद्ध के स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इन्द्र और वरुण! **तत्र न: अधि वोचतं** = वहां हमारे अनुकूल बात करो॥

अनुवाद–जिस संग्राम में मनुष्य ध्वजाओं को उठाये हुए लड़ाई में भिड़ जाते हैं, जिस युद्ध में कुछ भी प्रिय नहीं होता, जिस संसार के सभी व्यक्ति स्वर्ग को देखते हुये भयभीत होते हैं, हे इन्द्र और वरुण! उस युद्ध में तुम दोनों हमारे पक्ष में बोलो।

भावार्थ–अभिप्राय यह है कि युद्ध करने से अच्छा परिणाम नहीं निकलता; अर्थात् युद्ध करने से किसी का हित नहीं होता। स्वर्ग की इच्छा करने वाले लोग ऐसे युद्धों से सदा दूर ही रहते हैं अत: मनुष्यों पर देवों की कृपा ऐसी हो कि वे कभी युद्ध न करते हुए सदा प्रेम से रहें।

टिप्पणी– नर: = नृ शब्द प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **समयन्ते** = सम् + अय् गतौ, लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **आजा** = सप्तमी का एकवचन लोक में आजौ रूप होगा। **स्वर्दृश:** = स्व: + दृश् + क्विप् प्रथमा बहुवचन **वोचतम्** = 'वच्' धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन।

सं भूम्या॒ं अन्ता॑ ध्वसि॒रा अ॑दृक्ष॒तेन्द्रा॑वरुणा दि॒विघोष॒ आ॑रुहत्।
अस्थुर्जना॑ना॒मुप॒ मामरा॑तयो॒ऽर्वागव॑सा हवनश्रुता ग॑तम्॥३॥

अन्वयः–इन्द्रावरुण भूम्यां अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत दिवि घोषः अरुहत् जनानां अरातयः मां उप अस्थुः हवन श्रुता अवसा अर्वाक् आगतम्।

शब्दार्थ–हे, इन्द्रावरुण! = इन्द्र और वरुण! **भूम्यां अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत** = सम्पूर्ण भूमि के प्रदेश विध्वंस हुए दिख रहे हैं, **दिवि घोषः आरुहत्** = आकाश में सैनिकों के आक्रमण का कोलाहल फैल गया है, **जनानां अरातयः मां उप अस्थुः** = लोगों के शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करने के लिए खड़े हुए हैं। **हवन श्रुता** = आह्वान को सुनने वाले वीरो! **अवसा अर्वाक् आगतं** = संरक्षण की शक्ति के साथ हमारे पास जाओ।

अनुवाद–हे इन्द्र और वरुण देवताओ! सम्पूर्ण पृथ्वी ध्वस्त दिखाई दे रही है। भूलोक में सैनिकों का कोलाहल बढ़ गया है। हमारे योद्धाओं के शत्रु मेरे पास आ गये हैं। हमारे आह्वान को सुनने वाले तुम दोनों रक्षण करने की शक्ति के साथ हमारे पास आओ।

भावार्थ–युद्ध होने पर सम्पूर्ण भूमि के प्रदेश, नगर उद्यानादि ध्वस्त हो जाते है। दोनों तरफ के सैनिकों और घायलों का आर्त्तनाद आकाश में भर जाता है। किन्तु जब मानवता के शत्रु युद्ध के लिए सामने आकर खड़े हो ही जाऐं, तो फिर संरक्षण की शक्ति से युक्त होकर शत्रु से लड़ें।

टिप्पणी– ध्वसिराः = ध्वंस + किरच्। **अस्थुः** = स्था धातु लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **अवसा** = अव् + असुन् (अस्) = अवस् (तृतीया एकवचन) **हवन श्रुता** = हवन + श्रु + क्विप् = हवनश्रुत्

इन्द्रा॑वरुणा व॒धना॑भिरप्र॒ति भेदं व॒न्वन्ता॒ प्रसु॒दासमावतम्।
ब्रह्मा॑ण्येषां शृणुतं॒ हवी॑मनि स॒त्या तृप्सू॑नामभवत् पुरोहितिः ॥४॥

अन्वय–इन्द्रावरुण! वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता सुदासं प्र आवत एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं तृप्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्।

शब्दार्थ–हे इन्द्रावरुण! = हे इन्द्र और वरुण! **वधनामिः अप्रति भेदं वन्वन्ता** = तुम ने अपने वध करने के साधनों से न बढ़े हुए आपस के भेद का आपसी फूट का नाश किया। भेद रूप शत्रु का नाश किया और, **सुदासं प्र आवत** = सुदास का संरक्षण किया और। **एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं**

= इनके संग्राम में तुमने स्तोत्र सुने। तथा इस कारण। **तृप्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्** = तृप्सु लोगों का पौरोहित्य सफल हुआ।

अनुवाद–हे इन्द्र एवं वरुण देवताओ! वध करने वाले शस्त्रों से मुकाबला न करने वाले भेद नामक सुदाज के शत्रु को मारते हुए तुम दोनों सुदास नाम वाले इस मेरे यजमान की रक्षा करो। युद्ध में इनके स्तोत्रों को सुनो। इन तृप्सुओं का पुरोहित होना सफल हो गया है।

भावार्थ–अभिप्राय यह है कि जो देश की प्रजाओं में फूट डालने का प्रयत्न करता हो, ऐसे शत्रु को मार देना चाहिए, तथा सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए। सैनिक संग्राम या युद्ध के समय भी बुरे शब्द न बोलें।

टिप्पणी– वधनाभिः–वध् + युच् (अन्) + टाप् = वधना (तृतीया बहुवचन) **वन्वता** = वन् + उ + शतृ (अत्) प्रथमा द्विवचन वैदिक रूप **पुरोहितः**= पुरस् + धा + क्तिन्।

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽधस्मा नोऽवतं पार्ये दिवि॥ ५॥

अन्वय–इन्द्रावरुण! अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति वनुषाम् अरातयः यूयं हि उभयस्य वस्वः राजथः अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म॥

शब्दार्थ–हे, इन्द्रावरुण = इन्द्र और वरुण! **अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति**= शत्रुगण के पास शस्त्र मुझे बहुत संतापित कर रहे है और। **वनुषाम्-अरातयः** = हिंसकों के मध्य में जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं। **यूयं हि उभयस्त वस्वः राजथः** = तुम दोनों प्रकार के ऐहिक और पारलौकिक धन के स्वामी हो। इसलिए **अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म** = स्पर्धा के दिनों में हमारी सुरक्षा करो॥

अनुवाद–हे इन्द्र और वरुण देवता! शत्रु के प्रहार करने के हथियार मुझ को चारों ओर से मार रहे हैं। हिंसकों के मध्य के विद्यमान शत्रु भी मुझ को मार रहे हैं। तुम दोनों निश्चय से दोनों प्रकार की दिव्य और पार्थिव अथवा दोनों पक्षों की सम्पत्तियों के मालिक हो। इस कारण से पार करने के, अर्थात्-विजय करने के योग्य इस दिन में हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–हे इन्द्र एवं वरुण देवो! शत्रुओं के शस्त्र मुझे कष्ट दे रहे हैं, हिंसक मनुष्य भी मुझे कष्ट दे रहे हैं। ऐहिक और पारलौकिक सम्पतियों के तुम स्वामी हो, अतः युद्ध के दिनों में तुम हमारी सहायता करो।

टिप्पणी :– युवम्= "युवाम्" के स्थान पर वैदिक रूप। **वस्वः** = 'वसुनः' के स्थान पर वैदिक रूप। **वनुषाम्** = वनति हिनस्ति अर्थ में 'वन् हिंसायाम् धातु से वन् + उषस् = वनुष्। **राजथः**– राज् धातु लट्लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन।

यु॒वां ह॑वन्त उ॒भया॑स आ॒जिष्विन्द्रं॑ च वस्वो॒ वरुणं॑ च सा॒तये॑।
यत्र॒ रा॑जभिर्द॒शभि॒र्निबा॑धितं प्र सु॒दास॒माव॑तं॒ तृप्सु॑भिः स॒ह॥ ६॥

अन्वय–उभयासः वस्वः सातये, युवां इन्द्रं वरुणं च आजिषु हवन्ते यत्र तृप्सुभिः सह दशभिः राजभिः निबाधितं सुदासं प्र आवतम्॥

शब्दार्थ–उभयासः **वस्वः सातये** = दोनों लोग धन को जीतने के लिये। **युवां इन्द्रं वरुणं च** = तुम दोनों इन्द्र और वरुण को। **आजिषु हवन्ते** = युद्धों में बुलाते हैं। **यत्र तृप्सुभिः सह** = जहाँ तृप्सुओं के साथ रहने वाले और दशभिः राजभिः **निबाधितं** = दस राजाओं के द्वारा कष्ट पँहुचाये। **सुदासं प्र आवतं** = सुदास राजा की तुम ने सुरक्षा की॥

अनुवाद–राजा और प्रजा दोनों प्रकार के व्यक्ति, (सुदास नामक राजा और उसके तृप्सु नामक वंशज) युद्धों में हे इन्द्र और वरुण! तुम दोनों को धन प्राप्त करने के लिये पुकार रहे हैं। इन युद्धों में दस शत्रु राजाओं द्वारा पीड़ित किये जाते हुये, इस सुदास की, तृत्सुओं के साथ रक्षा करो।

भावार्थ–जो मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक धन को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, वे युद्धों के समय वीर देवों को बुलाते हैं। और जो राजा सज्जन होता है, तब तृप्सु अर्थात् उत्पत्ति करने की इच्छा करने वाले लोग, उस सज्जन राजा की रक्षा करते हैं।

टिप्पणी– उभयासः = वैदिक रूप, लोक में उभये या उभयाः होगा। **वस्वः** = वसु शब्द, षष्ठी का एकवचन, वैदिक रूप लोक में वसुनः होगा।

निबाधितम् = नि + बाध् + इट् + क्त = निबाधित। **आवतम्** = आ + अव् रक्षणे धातु, लङ्लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रा वरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥

अन्वय—इन्द्रावरुणा! अयज्यवः दश राजानः समिताः सुदासं न युयुधुः। अन्नसदां नृपां उपस्तुतिः सत्या एषां देवऽहूतिषु देवाः अभवन्॥

शब्दार्थ—हे, इन्द्रावरुणा! = हे इन्द्र और वरुण! **अयज्यवः दश राजानः समिता** = यज्ञ न करने वाले दस राजे इकट्ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होने से वे। **सुदासं न युयुधुः** = सुदास राजा के साथ युद्ध न कर सके। **अन्नसदां नृपां उपस्तुतिः सत्या** = अन्नदान करने के लिए बैठें लोगों की प्रार्थना सफल हुई और। **एषां देवऽहूतिषु देवाः अभवन्** = इन के यज्ञ में सभी देव उपस्थित रहें।

अनुवाद—हे इन्द्र और वरुण देवताओ! यज्ञ न करने वाले, युद्ध में परस्पर सम्मिलित हुये ये दस राजा सुदास नाम के मेरे इस यजमान राजा पर युद्ध में प्रहार करने में समर्थ नहीं हुये। हवि से युक्त यज्ञों में उपस्थित होने वाले यज्ञों के नेता ऋत्विजों का स्तुति करना सफल हो गया है। इनके यज्ञों में सभी देवता उपस्थित हुये हैं।

भावार्थ—यज्ञ न करने वाले अनार्य दस राजा भी सुदास के साथ युद्ध न कर सकें, क्योंकि उस सज्जन पुरुष की रक्षा देवगण करते हैं। अन्न का दान करने वालों के हर मनोरथ पूर्ण होते हैं, वो कभी भी इस जगत् में परास्त नहीं होते, क्योंकि उनके यज्ञों में देव स्वयं उपस्थित रहते हैं।

टिप्पणी— समिताः = सम् + इ + क्त = समित (प्र० वि० बहुवचन) **अयज्यवः** = न यजति अर्थ में नञ् + यज् + यु = अयज्यु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **युयुधुः** = 'युध्' धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **देवहूतिषु** = देवाः हूयन्ते येषु अर्थ में देव + ह्वे + क्तिन् = देवहूति॥

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो-असपन्ततृत्सवः॥ ८॥

अन्वय–इन्द्रावरुणा! दाशराज्ञे विश्वत: परियत्ताय सुदासे शिक्षतम् यत्र शिवत्यञ्च: कपर्दिन: धीवन्त: तृत्सव: नमसा धिया असपन्त॥

शब्दार्थ–हे इन्द्रावरुणा = हे इन्द्र एवं वरुण! **दाशराज्ञे विश्वत: परियत्ताय** = दस राजाओं के संघ द्वारा चारों ओर से घेरे गये। **सुदासे शिक्षतम्** = सुदास राजा को तुम ने बल दिया। क्योंकि। **यत्र शिवत्यञ्च: कपर्दिन:** = जहां निर्मल जटाधारी। **धीवन्त: तृत्सव:** = बुद्धिमान् तृप्सु लोग। **नमसा धिया असपन्त** = नमस्कार पूर्वक किये शुभकर्म से परिचर्या करते थे।

अनुवाद–हे इन्द्र और वरुण देवताओ! दस शत्रुओं के द्वारा चारों ओर से घिरे हुये सुदास के लिये तुम ने बल प्रदान किया है। जिस स्थान पर श्वेत अर्थात्- निर्मल कर्मों को करने वाले या श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाले, जटाधारी और कर्मशील मुझ वसिष्ठ के शिष्य तृप्सुओं ने हविरूप अन्न के द्वारा तथा स्तुतियों द्वारा तुम्हारी स्तुति की है।

भावार्थ–अन्दर और बाहर से पवित्र रहने वाले बुद्धिमान् तृप्सु जहां शुभकर्मो को करते हैं, वहां बल बढ़ता है। ऐसे ही लोग सुदास के सहायक थे इसलिए सुदास का बल बढ़ा और वह विजयी हुआ। पर दूसरे अनार्य राजा, जो सुदास के साथ लड़ने आए थे, परास्त हुए, क्योंकि वे शुभकर्म करने वाले नहीं थे। अर्थात्-पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किए गए यज्ञ से शक्ति बढ़ती है।

टिप्पणी– कपर्दिन: = कपर्द + इन = कपर्दिन, प्रथमा बहुवचन। **धीवन्त:** = धी + मतुप् = धीवत्, प्रथमा बहुवचन। **शिवत्यञ्च:** = शिवति + अञ्च् + क्विप्, प्रथमा बहुवचन। **असपन्त** ='षप्' (सप्) + समवाये धातु लङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **परियत्ताय** = परि + यत् + क्त = परियत्त चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

वृ॒त्राव्य॒न्यः स॑मि॒थेषु॒ जिघ्न॑ते व्र॒तान्य॒न्तो अ॒भि र॑क्षते॒-सदा॑।
हवा॑महे वां वृषणा सुवृ॒क्तिभि॑रस्मे इ॑न्द्रावरु॒णा-शर्म॑ यच्छतम्॥ ९॥

अन्वय–इन्द्रावरुण! अन्य: समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते अन्य: सदा व्रतानि अभि रक्षते, वृषणा वां सुवृक्तिभि: हवामहे अस्मे शर्म यच्छतम्॥

शब्दार्थ–हे, इन्द्रावरुण! = इन्द्र और वरुण! तुम में से। **अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते** = एक इन्द्र युद्ध के समय शत्रुओं का नाश करता है। **अन्यः सदा व्रतानि अप रक्षते** = दूसरे वरुण सदा सत्कर्मों की सुरक्षा करता है। **हे वृषणा** = बलवान् वीरो! **वां सुवृक्तिभिः हवामहे** = तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रों से करते हैं। इसलिये **अस्मे शर्म यच्छतं** = हमें सुख प्रदान करो॥

अनुवाद–हे इन्द्र एवं वरुण देवताओ! तुम दोनों में से एक अर्थात् इन्द्र वृत्रों का युद्धों में वध करता है। और दूसरा एक अर्थात्-वरुण सदा व्रतों की शुभकर्मों की रक्षा करता हैं। कामनाओं की पूर्ति करने वाले, हे इन्द्र और वरुण! तुम दोनों का हम उत्तम स्तुतियों द्वारा आह्वान करते हैं। तुम हमारे लिये सुख प्रदान करो।

भावार्थ–वीर युद्ध में शत्रुओं का नाश करता है। राष्ट्र के बाहर शत्रु का नाश करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। एवं वीर लोगों के सत्कर्मों को सुरक्षित रखता है। यह आन्तरिक सुरक्षिता है। राष्ट्र की सुस्थिति के लिए बाह्य शत्रुओं का नाश होकर अन्दर के सब कार्य व्यवहार सुरक्षित रीति से चलते रहने चाहिए, तभी लोगों का कल्याण सम्भव है।

टिप्पणी :– अस्मे = वैदिक रूप है। लोक में अस्मभ्यम् होगा। **हवामहे** = ह्वेञ् धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन, वैदिक रूप। **रक्षते** = रक्ष् धातु लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन **जिघ्नते** = हन् धातु लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन **समिथेषु** = संगता मेथन्ते प्रहरन्ते यत्र स **समिथः** संग्राम अर्थ में सम् + मिथ् + अप **अथवा** = सम् + इ +थक् = समिथ॥

अ॒स्मे इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा द्यु॒म्नं य॑च्छन्तु म॒हि शर्म॑ स॒प्रथः॑।
अ॒व॒ध्रं ज्योति॒रदि॑ते॒र्ऋ॒ता॒वृधो॑ दे॒वस्य॒ श्लोकं॑ सवि॒तुर्म॑नामहे॥१०॥

अन्वय–इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा अस्मे सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु। ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे॥

शब्दार्थ–इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा = इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देव, **अस्मे** = हमें। **सप्रथः महि द्युम्नं** शर्म **यच्छन्तु** = विशेष विस्तृत महान् तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। **ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं** = सत्य

मार्ग का संवर्धन करने वाली अदिति का तेज हमारे लिए विनाशक न बने। हम। **सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे** = सविता देव की स्तुति करें।

अनुवाद–इन्द्र, वरुण, मित्र (सूर्य) और अर्यमा (यम का प्रेरक आदित्य) ये सभी देवता हमारे लिये प्रकाशमय धन को प्रदान करें और महान् तथा सब प्रकार से विस्तृत घर को देवें। यज्ञ को बढ़ाने वाली देवमाता का तेज हमारे लिये अहिंसक बना रहे। अर्थात्–दिव्य गुणों से युक्त सबके प्रेरक सविता देवता की हम स्तुति करते हैं, अथवा उससे कीर्ति की याचना करते हैं।

भावार्थ–इन्द्रादि देवताओं की कृपा से हमें बड़ा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो। वह घर हमारे लिए सुखदायी हो। सत्यमार्ग का संवर्धन करने वाली अदिति देवी का तेज सदा हमारे घर में रहे। तथा हम भी सदा सविता देव की स्तुति करते रहें॥ १०॥

टिप्पणी– **सप्रथः** = 'प्रथ विस्तारे' धातु से अच् प्रत्यय = प्रथ। प्रथेन सहितः सप्रथः। **अवध्रम्** = वधं राति अर्थ में वध् +रा +अच् +वध्र न +वध्र + अवध्र। **ऋतावृधः** = ऋत + वृध् + क्विप् = ऋतावृध्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन॥

०००

१९. वरुण सूक्त

मण्डल ७ **सूक्त ८६**

ऋषि- मैत्रावरुणिः वसिष्ठ देवता-वरुण छन्द-त्रिष्टुप्

धी॒रा त्व॑स्य म॒हि॒ना ज॒नूंषि॒ वि यस्त॒स्तम्भ॒ रोद॑सी चिदु॒र्वी।
प्र नाक॑मृष्वं नु॑नुदे बृहन्तं॑ द्वि॒ता नक्ष॑त्रं प॒प्रथ॑च्च भूम॑॥ १॥

अन्वय–अस्य महिना जनूंषि तु धीरा। यः उर्वी रोदसी चित् वितस्तम्भ। बृहन्तम् नाकम् नक्षत्रम् ऋष्वम् द्विता प्र नुनुदे भूम पप्रथत्।

शब्दार्थ–अस्य जनूंषि महिना धीरा = इस वरुण के जीवन उनकी निज महिमा से धैर्य वाले कर्मों से युक्त हैं। **यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ** =

जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक को स्थिर करता है। **बृहन्तम् नाकम्** = बड़े विशाल सूर्य को और। **ऋष्वम् नक्षत्रम् द्विता प्र नुनुदे** = तेजस्वी नक्षत्रों को दो समयों में जो प्रेरित करता है। दिन में सूर्य और रात्री के समय नक्षत्रों को प्रेरित करता है तथा। **भूम पप्रथत् च** = भूमि को विस्तृत करता है।

अनुवाद–इस वरुण की महिमा से जन्म लेने वाले प्राणी शीघ्र धैर्यशाली बन जाते हैं। जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोक को भी विविध प्रकार से धारण किये हुये है। और जिस वरुण ने महान् स्वर्गलोक को या सूर्य को एवं नक्षत्रों को दर्शनीय रूप से दो प्रकार से प्रेरित किया है, तथा जिसने भूमि को विस्तृत बनाया है।

भावार्थ– वरुण का कर्तृत्व बड़ा प्रभावशाली है। उसके कर्म बड़े प्रभावशाली हैं। वह द्युलोक और पृथिवीलोक को भी यथास्थान सुस्थिर करता है। सूर्य को प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकार के समय नक्षत्रों को प्रकाशित करता है। उसी ने भूमि को ऐसी विशाल बनाया है। यह वरुण ईश्वर ही है, जो यह सब करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी :– तस्तम्भ = स्तम्भ धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **ऋष्वम्** = 'ऋषि गतौ' से 'व' प्रत्यय। ऋष् + व = ऋष्व। दृष्टिगोचर हुई वस्तु ऋष्व कहलाती है। **नुनुदे** = नुद् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **पप्रथत्** = प्रथ् धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप।

उ॒त स्वया॑ त॒न्वा॒ ३॒॑ सं व॑दे॒ तत् क॒दा न्व१॒॑न्तर्वरु॑णे भुवानि।
किं मे॑ ह॒व्यमहृ॑णानो जुषेत क॒दा मृ॑ळी॒कं सुमना॑ अ॒भिख्य॑म्॥ २॥

अन्वय–स्वया तन्वा संवदे उत तत्। कदा नु वरुणे अन्तः भुवानि। अहृणानः मे हव्यम् किम् जुषेत। सुमनाः कदा मृलीकम् अभिख्यम्।

शब्दार्थ– उत = क्या। **स्वया** = अपने। **तन्वा** = शरीर से। **संवदे** = के साथ बोलूं या बातचीत करुं। **कदा** = कब। **तत् वरुणे** = उस वरुण के। **अन्तः भुवानि** = अन्तः करण में स्थान प्राप्त करूँ। **मे** = मेरा। **हव्यम्** = हवनीय द्रव्य। **अहृणानः** = क्रुद्ध न होता हुआ, क्रोध रहित होकर।

जुषेत = स्वीकार करेगा। **सुमनाः** = उत्तम विचार वाला। या प्रसन्न मन वाला होकर। **मृलीकम्** = सुखदायी वरुण को। **अभिख्यम्** = देख सकूंगा।

अनुवाद–वरुण की स्तुति करता हुआ ऋषि कहता है, कि क्या मैं अपने इस शरीर से वरुण के साथ बातचीत करूँ? और कब उस वरुण के अन्तःकरण में स्थान प्राप्त करूँ? क्रोध रहित होकर मेरा हवनीय द्रव्य क्या वरुण स्वीकार करेगा? उत्तम विचार वाला अथवा प्रसन्न मन वाला होकर, कब मैं सुख देने वाले वरुण को देख सकूँगा?

भावार्थ–क्या मैं परमेश्वर के साथ बोल सकूंगा? मैं कब प्रभु के अन्दर पहुँचूगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा? मैं प्रभु का साक्षात्कार कब कर सकूंगा? ऐसे विचार भक्त के मन में उठते हैं। वह प्रभु हर एक की प्रार्थना सुनते हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर है। अतः भक्त जो कुछ भी अर्पण करता है, उसे प्रभु स्वीकार करते हैं। हृदय के निर्मल होने पर प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– वदे** = वद् धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **भुवानि** = भू धातु, लोट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप! **अहृगानः** = हृणीङ् + शानच्। 'ई' का लोप = हृणान। न + हृणान = अहृणान। **जुषेत** = जुष् धातु, विधिलिङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन। **अभिख्यम्** = अभि + चक्षिङ् (ख्या) लुङ्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

पृच्छे तदेनो॑ वरुण दिदृक्षूपो॑ एमि चिकि॒तुषो॑ वि॒पृच्छ॑म्।
स॒मा॒नमिन्मे॑ क॒वय॑श्चिदाहुर॒यं ह॒ तुभ्यं॒ वरु॑णो हृणीते॥ ३॥

अन्वय–वरुण! दिदृक्षुः तत् एनः पृच्छे। विपृच्छम् चिकितुषः उपो एमि कवयः ये समानम् इत् चित् आहुः। ह अयम् वरुणः तुभ्यम् हृणीते।

शब्दार्थ–दिदृक्षुः = जानने की इच्छा करके। **तत् एनः** = उस अपने पाप के विषय में उससे। **पृच्छे** = पूछता हूँ। **विपृच्छम्** = पूछने की इच्छा से। **चिकितुषः** = विद्वानों के। **उपो एमि** = पास भी गया, समीप भी गया हूँ। **कवयः** = ज्ञानियों ने। **चित में समानम्** = मुझे समान रूप से। **इत् आहुः** = एक ही उत्तर दिया है। **ह** = निश्चय से। **अयं वरुण** = यह वरुण। **तुभ्यं** = तुम्हारे ऊपर। **हृणीते** = क्रोधित हुआ है।

अनुवाद–हे वरुण! जानने की इच्छा करके कि मैंने कौन सा पाप किया है? उस पाप के विषय में पूछता हूँ। उस पाप के सम्बन्ध में पूछने की इच्छा से मैं विद्वानों के समीप भी गया हूँ, उन विद्वानों अथवा ज्ञानियों ने मुझे समान रूप से यह ही बताया हैं कि निश्चय से यह वरुण ही तुम पर क्रोधित है।

भावार्थ–मैं अपने पाप के विषय में सच बातें जानना चाहता हूँ कि मैंने कौन सा पाप किया है जिसके कारण मुझे यह कष्ट मिल रहे हैं। मैंने विद्वानों से भी पूछा तो सभी विद्वानों ने एक ही उत्तर दिया है कि तुम्हारे ऊपर प्रभु का क्रोध है। **व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– पृच्छे** = प्रच्छ् धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन, वैदिक रूप। **दिदृक्षुः** = दश् + सन् + उ + दिदृक्षु। **चिकितुषः** = कित् + क्वसु = चिकित्वस्। द्वितीया विभक्ति, बहुवचन। **विपृच्छम्** = वि + प्रच्छ + अम् = विपृच्छम्।

किमाग्र॑ आस वरु॒ण ज्येष्ठं यत्स्तो॒तारं॒ जिघां॑ससि॒ सखा॑यम्।
प्र तन्मे॑ वोचो दूळभ स्वधा॒वोऽव॑ त्वाने॒ना नम॑सा तु॒र इ॑याम्॥ ४॥

अन्वय–वरुण। किम् ज्येष्ठम् आगः आस यत् सखायम् स्तोतारम् जिघांससि दूळभ स्वधावः। तत् मे प्रवोचः। अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयाम्।

शब्दार्थ–वरुण = हे वरुण! **ज्येष्ठम्** = बड़ा। **आगः आस** = भारी अपराध अथवा पाप हुआ है। **यत् सखायम्** = जो मित्र होते हुये। **स्तोतारम् जिघांससि** = स्तुति करते हुए मुझ को मारना चाहते हो। **दूळभ स्वधावः** = न दबने वाले तेजस्वी। **तत् मे प्रवोचः** = यदि वह मेरा पाप है तो मुझे बताओ। **अनेनाः** = निष्पाप बन कर। **तुरः** = शीघ्र ही। **नमसा** = नम्रतापूर्वक। **त्वा अव इयाम्** = तुम्हारे पास आ सकूं, तुम्हें प्राप्त कर सकूँ।

अनुवाद–हे वरुण देवता! क्या मेरा ऐसा कोई बड़ा भारी अपराध अथवा पाप है? जिसके कारण मित्र होते हुये और स्तुति करते हुए मुझ जैसे को भी मारना चाहते हो ? हे शत्रुओं द्वारा न दबने वाले एवं तेजस्वी वरुणदेव! यदि वह मेरा पाप है, तो मुझे बताओ जिससे मैं उस पाप से रहित होकर शीघ्र ही नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास आ सकूं।

भावार्थ–हे वरुण! मुझ से ऐसा कौन सा अपराध हो गया है कि जो

आप मुझे मारना चाहते हो। हे देव! यदि मुझ से कोई ऐसा अपराध अथवा पाप हो भी गया हो तो मेरे उस पाप के सम्बन्ध में मुझे बताओ, जिससे कि उस पाप का प्रायश्चित करके पापरहित होकर नम्रतापूर्वक तुम्हें प्राप्त कर सकूँ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– आस = अस् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन, वैदिक रूप। **जिघांससि** = हन् + सन् = जिघास्। लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **दूळभ**–दुर् + दम्भ + खल् = दूळभ। वैदिक रूप। **इयाम्** = इ धातु, विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

अव॑ द्रुग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव या व॒यं च॑कृमा त॒नूभि॑ः।
अव॑ राजन् प॒शुतृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम्॥ ५॥

अन्वय–पित्र्या नाः द्रुग्धानि अवसृज। वयम् तनूभिः या चकृम अव। राजन्! पशुतृपम् तायुम् न दाम्नः वत्सम् न वसिष्ठम् अवसृज।

शब्दार्थ–पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज = पिता आदि पूर्वजों से हुए द्रोह आदि पापों को दूर करो। **वयम् तनूभिः या चकृम अवसृज** = अपने शरीरों से जो पाप किये हैं उनको भी दूर करो। **पशुतृपम्** = पशुओं को तृप्त करने वाले। **तायुम्** = चोर के समान। **दाम्नः** = रस्सी से बँधे हुये। **वत्सम् न** = बछड़े के समान। **वसिष्ठम्** = मुझ वसिष्ठ को। **अवसृज** = पाप से छुड़ाओ।

अनुवाद–हे वरुण! पिता आदि पूर्वजों से हुये द्रोह आदि पापों को दूर करो अर्थात् क्षमा कर दो। हमने अपने शरीरों द्वारा जो द्रोह किये हैं उनको भी दूर कर दो। हे राजन् वरुण! पहले पशुओं की चोरी करके फिर घास आदि द्वारा पशुओं को तृप्त करने वाले चोर को जैसे दूर करते है, वैसे मेरे पाप दूर करो। रस्सी से बँधे हुये बछड़े के समान इस वसिष्ठ को पाप से छुड़ाओ, अर्थात् मेरे पापों को क्षमा कर दो।

भावार्थ–पिता आदि से जो पाप होते हैं, उनका संस्कार हमारे शरीर पर भी होता है। बीजरूप से वे दोष हमारे अन्दर आते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिए। जो पाप हम अपने शरीर से करते हैं, उनसे भी छुटकारा प्राप्त करना चाहिए।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– पित्र्या = पितृ + यत् = पित्र्य। द्वितीया का बहुवचन। वैदिक रूप। **द्रुग्धानि** = द्रुह + क्त = द्रुग्ध। द्वितीया का

बहुवचन नपुंसक लिङ्ग। **चकृम** = कृ धातु, लिट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **वसिष्ठम्** = 'अतिशयेन वशी' अर्थ में वाशन् = इष्ठन्।

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता॥ ६॥

अन्वय–वरुण! सः स्वः दक्षः न, सा ध्रुतिः सुरा, मन्युः, विभीदकः, अचित्ति। कनीयसः उपारे ज्यायान् अस्ति। स्वप्नः चन इत् अनृतस्य प्रयोता।

शब्दार्थ–सः स्व = वह अपना। **दक्षः न** = निज बल पाप के लिए कारण नहीं होता। **ध्रुतिः** = प्रगति में रुकावट होने से पाप में प्रवृत्ति होती है। **सुरा** = मद्य, शराब, उन्मादक पदार्थ। **मन्युः** = क्रोध, **विभीदकः** = द्यूत, जुआ। **अचित्तिः** = अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करने की वृत्ति ये पाप में प्रवृत्त करने वाली प्रवृत्तियां हैं। **कनीयसः उपारे ज्यायान् अस्ति** = अल्प शक्ति वाले या हीन पुरुष को पास रहकर श्रेष्ठ पुरुष पाप में प्रवृत्त करता है। **स्वप्नः चन इत् अनृतस्य प्रयोता** = निद्रा या सुस्ती भी पाप में प्रवृत्त करने वाली है।

अनुवाद–हे वरुण! मनुष्य का अपना निज बल पाप की ओर प्रवृत्त करने में कारण नहीं होता। किन्तु प्रगति में रुकावट होने पर पाप में प्रवृत्ति होती है। मद्य, शराब अर्थात् उन्मादक पदार्थ, क्रोध, जुआ, अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करने की वृत्ति ये पाप में प्रवृत्त करने वाली प्रवृत्तियाँ हैं। अल्प शक्ति वाले या साधनहीन पुरुष पाप की प्रवृत्ति निकट आने पर उससे श्रेष्ठ पुरुष या ईश्वर जो उसके पास रहकर पाप में प्रवृत्त करता है, तथा स्वप्न अथवा निद्रा या सुस्ती, अर्थात् मानसिक भावनायें भी पाप में प्रवृत्त करने वाली हैं।

भावार्थ–प्रगति में रुकावट होने से पाप में प्रवृत्ति होती है। शराब पीने, क्रोध, जुआ और अज्ञान से पाप उत्पन्न होता है और यह द्वेष ही उसे पाप में प्रवृत्त करता है। बड़ा छोटे को पाप में प्रवृत्त करता है। धनी निर्धन को, बलवान् निर्बल को तथा ज्ञानी अज्ञानी को पाप में प्रवृत्त करता है। निद्रा सुस्ती और आलस्य भी पाप के प्रवर्त्तक है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी :– ध्रुतिः = ध्रु + क्तिन्। **अचित्तिः** = चित् + क्तिन् = चित्ति। न + चित्ति = अचित्ति। **ज्यायान्** = अयमनयोः

अतिशयेन प्रशस्यः अर्थ में प्रशस्य + ईयसुन्। प्रशस्य शब्द को जय तथा ईयसुन् के ई को आ आदेश = ज्यायस्। प्रथमा का एकवचन। **कनीयसः** = अल्प + ईयसुन्। अल्प को कन् आदेश = कनीयस्। षष्ठी का एकवचन। **प्रयोता** = प्र + यु + तृच् + प्रयोतृ। प्रथमा का एकवचन।

अरं॑ दा॒सो न मी॒ळ्हुषे॑ कराण्य॒हं दे॒वाय॒ भूर्ण॒येऽना॑गाः ।
अचे॑तयद॒चितो॑ दे॒वो अ॒र्यो गृत्सं॑ रा॒ये क॒वित॑रो जुनाति ॥ ७ ॥

अन्वय–मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहम् अरम् कराणि दासः न। अर्यः देवः अचितः अचेतयत्। कवितरः गृत्सम् राये जुनाति।

शब्दार्थ– मीळ्हुषे भूर्णये = इच्छाओं को पूर्ण करने वाले और भरण-पोषण करने वाले। **देवाय** = ईश्वर के लिए वरुणदेव की। **अनागाः** = निष्पाप होकर। **अहम्** = मैं। **अरम् कराणि** = सेवा करता हूँ। **दासः न** = सेवक के समान मैं ईश्वर की सेवा करूँगा। **अर्यः देवः अचितः अचेतयत्** = वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियों को प्रेरित करता है। **कवितरः** = बहुत अधिक ज्ञानी = **गृत्सम्** = ईश्वर स्तोता को। **राये** = धन की ओर। **जुनाति** = प्रेरित करता है।

अनुवाद–इच्छाओं को पूरा करने वाले और भरण-पोषण करने वाले ईश्वर के लिए वरुणदेव की निष्पाप होकर मैं सेवा करता हूँ। जिस प्रकार एक सेवक अपने स्वामी की सेवा करता है उसी तरह मैं ईश्वर की सेवा करूँगा। वह श्रेष्ठ देव अथवा सबका स्वामी हम अज्ञानियों को प्रेरित करता है। वह बहुत अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तुति करने वाले को धन के लिए प्रेरित करता है, अर्थात् उसको धन प्रदान करता है।

भावार्थ–भक्त की सदिच्छाओं को पूर्ण करने वाले सबका भरण-पोषण करने वाले ईश्वर की सेवा मैं निष्पाप होकर करूँ। परमेश्वर सबका पालन करता है और सबको निष्पाप बनाने वाला है, इसलिए उसकी सेवा करने से मनुष्य निष्पाप बन जाता है। वह सबका स्वामी अज्ञानियों को ज्ञान देकर सत्कर्म में प्रेरित करता है और उन्हें धन के लिए प्रेरित करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– कराणि = कृ धातु, लोट्लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **भूणये** = भृ + क्तिन्। 'ऋ' को छान्दस 'उर्'

आदेश, दीर्घ 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' से णत्व = भूर्णि। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **अचेतयत्** = णिजन्त चित् धातु, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **जुनाति** = जु धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

अ॒यं सु तुभ्यं॑ वरुण स्वधावो हृ॒दि स्तोम॒ उ॒प॑श्रितश्चिदस्तु।
शं न॒ः क्षेमे॒ शमु॒ योगे॑ नो अस्तु यूयं पा॑त स्वस्तिभि॒ः सदा॑ नः॥ ८॥

अन्वय–स्वधावः वरुण! तुभ्यम् अयम् स्तोमः हृदिचित् सु उपश्रितः अस्तु। नः क्षेमे शम् उ योगे नः शम् अस्तु यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात।

शब्दार्थ– स्वधावः वरुण = अन्न पास रखने वाले वरुण! **तुभ्यम्** = तुम्हारे लिये। **अयम् स्तोमः** = यह स्तोत्र। **हृदिचित्** = हृदय में। **सु उपश्रितः अस्तु** = उत्तम रीति से रहने वाला हो। **नः क्षेमे शम्** = हमारे क्षेम में कल्याण हो। **उ** = और **नः योगे शम् अस्तु** = हमारे लाभ में भी कल्याण हो। **यूयम् नः सदा स्वस्तिभिः पात** = तुम हमारा सदा कल्याण के साधनों से संरक्षण करो।

अनुवाद–अन्न को पास रखने वाले, अथवा धारण करने वाले, हे वरुण! तुम्हारे लिये किया गया यह स्तोत्र तुम्हारे हृदय में अच्छी प्रकार से रहने वाला हो। तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो। हमारे क्षेत्र में कल्याण हो और हमारे लाभ में भी कल्याण हो, अर्थात् हमारे प्राप्त पदार्थों की रक्षा करने में और अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति में विघ्नों की शान्ति हो। तुम हमारी सदा कल्याण के साधनों द्वारा रक्षा करो।

भावार्थ–हमारे क्षेत्र में भी हमारा सच्चा कल्याण हो। प्राप्त की हुई वस्तुओं की रक्षा करने को क्षेम कहते हैं। वह क्षेत्र हमारे लिये कल्याण करने वाला हो तथा अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए जो हम प्रयत्न करते हैं, उनसे भी हमारा कल्याण हो। तथा हमारी सेवा परमेश्वर को प्रसन्न करने वाली हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– उपश्रितः = उप + श्रि + क्त = उपश्रित। **पात** = पा धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन।

०००

२०. मण्डूक सूक्त

मण्डल ७ **सूक्त १०३**
ऋषि-वसिष्ठ **देवता-मण्डूक** **छन्द-पहले मन्त्र में अनुष्टुप और शेष में त्रिष्टुप्**

सं॒व॒त्स॒रं श॑शया॒ना ब्रा॑ह्म॒णा व्र॑तचा॒रिणः॑।
वाचं॑ पर्जन्य॑जिन्विता॒ं प्र म॒ण्डूका॑ अवादिषुः॥ १॥

अन्वय—व्रतचारिणः ब्राह्मणाः संवत्सरम् शशयानाः मण्डूकाः पर्जन्यजिन्विताम् वाचम् प्र अवादिषुः।

शब्दार्थ—**व्रतचारिणः ब्राह्मणाः** = व्रताचरण करने वाले ब्राह्मण। **संवत्सरम्** = एक वर्ष तक। **शशयानाः** = बिलों में सोने वाले। **मण्डूकाः** = मेंढक। **पर्जन्य जिन्विताम् वाचम्** = मेघों को प्रसन्न करने वाली वाणी। **प्र अवादिषुः** = बोलने लगे हैं।

अनुवाद—व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मणों के समान, एक वर्ष तक सत्र में गुप्त होकर सोये हुये, अथवा बिलों में सोने वाले मेंढक, मेघों को प्रसंन्न करने वाली वाणी को बोलने लगे।

भावार्थ—जिस तरह व्रत का आचरण करने वाले ब्राह्मण एक वर्ष तक चलने वाले सत्र में व्रती होने के कारण मौन धारण करके शान्त रहते हैं, और वर्ष समाप्ति के पश्चात् स्तोत्रपाठ करने लगते हैं। उसी तरह ये मेंढक अपने-अपने स्थानों में ऋतु पर्यन्त चुपचाप रहते हैं और मेघों के शुरू होते ही शब्द करने लगते हैं।

व्याख्या सम्बन्धी टिप्पणी— **व्रतचारिणः** = व्रतं चरन्ति इति ते। व्रत

+ चर् + णिनि = व्रतचारिन्। प्रथमा का बहुवचन। **शशयानाः** = शी + कानच् = शशयान वैदिक रूप। **जिन्विताम्** = जिन्वि स्तुतौ + क्त + टाप् = जिन्विता। **अवादिषुः** = वद् धातु, लुङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

परिचय—मण्डूक शब्द 'मण्ड् = सुशोभित करना' इस धातु से बना है। सुभूषित करने वाले को मण्डूक कहते हैं। तालाब का भूषण मण्डूक, अर्थात् मेंढक है, और सभा का पंडित ब्राह्मण है। इसलिए यहां मेंढक को ब्राह्मण की उपमा दी गई है।

दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति॥ २॥

अन्वय—दिव्याः आपः दृतिम् न शुष्कम् सरसी शयानम् एनम् यत् अभि आयन् अह अत्र वत्सिनीनाम् गवाम् मायुः न मण्डूकानाम् वग्नुः सम् एति।

शब्दार्थ—दिव्याः आपः = अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले मेघ का जल। **दृतिम् न शुष्कम्** = सूखे चमड़े की थैली के समान। **सरसी शयानम्** = सूखे तालाब में सोने वाले। **एनम्** = इस मेंढक समुदाय के पास। **यत् अभि आयन्** = पहुँचते, प्राप्त होते हैं। **वत्सिनीनाम् गवाम्** = बछड़ों वाली गौओं के। **मायुः न** = शब्द के समान। **मण्डूकानाम्** = मेंढकों का। **वग्नुः** = शब्द। **सम् एति** = होने लगता है।

अनुवाद—आकाश स्थानीय अथवा आकाश में उत्पन्न होने वाले मेघ का वृष्टिजल सूखे चमड़े की थैली के समान सूखे जलाशय में सोने वाले इस मण्डूक समुदाय के पास पहुँचता है, तब बछड़ों वाली गौओं के शब्द के समान यहां मेंढकों का शब्द एक साथ निकलने लगता है।

भावार्थ—गर्मी में जब जलाशय सूख जाते हैं, तब मेंढक भी सूखे चमड़े की थैली के समान सूख जाते हैं। पर मेघों के वृष्टिजल उन मेंढकों के पास पहुँचने पर ये मेंढक प्रसन्न होकर उसी प्रकार शब्द करते हैं; जिस प्रकार बछड़ों वाली गायें शब्द करती हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— आयन् = इ धातु, लङ्लकार, प्रथम

पुरुष, बहुवचन। **शयानम्** = शी + शानच् = शयान। **वत्सिनीनाम्** = वत्स + इनि + ङीप् = वत्सिनी। षष्ठी का बहुवचन। **वग्नुः** = 'वच् परिभाषणे' से औणादिक नु प्रत्यय। **समेति** = सम् + इ धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागत्तायाम्।
अक्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति।। ३ ॥

अन्वय–उशतः तृष्यावतः एनान् प्रावृषि आगतायाम् यत् ईम् अभि अवर्षीत्, अन्यः अक्खलीकृत्य वदन्तम् अन्यम् उप एति पुत्रः पितरम् न।

शब्दार्थ–उशतः = जल चाहने वाले। **तृष्यावतः** = प्यास जिनको लगी है ऐसे। **एनान् प्रावृषि** = इन मेंढकों के पास वर्षा का समय। **आगतायाम्** = आने पर। **यत् ईम् अभिवर्षीत्** = जब मेघ बरसने लगता है। **अक्खलीकृत्य** = 'अक्खल' ऐसा शब्द करके। **अन्यः अन्यम् उप वदन्तम् एति** = एक मेंढक दूसरे मेंढक के पास पहुँच जाते है। **पुत्रः पितरम् न** = जैसे पुत्र पिता के पास जाता है।

अनुवाद–जल की कामना करने वाले और प्यासे मेंढकों को वर्षा ऋतु के आने पर जब मेघ बरसने लगता है, तब अखखल-अखखल इस प्रकार से शब्द करके एक मेंढक दूसरे मेंढक के पास पहुँच जाता है। जिस प्रकार पुत्र पिता के पास जाता है।

भावार्थ–गर्मी में जल के न मिलने से मेंढक प्यासे रहते हैं। परन्तु जब वर्षाकाल में वृष्टि होती है, तब पर्याप्त जल उन्हें मिलता है, और उन्हें बड़ा आनन्द होता है। उस आनन्द के कारण, वे मेंढक शब्द करते हुए एक दूसरे से मिलते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– उशतः = वश् + शतृ। सम्प्रसारण होकर = उशत्। द्वितीया का बहुवचन। **अभ्यवर्षीत्** = अभि + वृष, लृङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **तृष्यावतः** = तृष् + क्यप् = टाप् = तृष्या अस्य अस्ति = तृष्या + मतुप् = तृष्यावत्। **अखखलीकृत्य** = अखखल + च्वि + कृ + क्त्वा (ल्यप्)

अ॒न्यो अ॒न्यमनु॑ गृभ्णात्येनोर॒पां प्र॑स॒र्गे यदम॑न्दिषाताम्।
म॒ण्डू॒को यद॒भिवृ॑ष्टः कनि॑ष्क॒न् पृश्नि॑ः संपृङ्क्ते हरि॑तेन॒ वाच॑म्॥ ४॥

अन्वय–अपाम् प्रसर्गे यत् अमन्दिषाताम् एनोः अन्यः अन्यम् अनु गृभ्णाति। यत् अभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः मण्डूकः हरितेन वाचम् संपृङ्क्ते।

शब्दार्थ–**यत् अपाम् प्रसर्गे अमन्दिषाताम्** = जब पानी बरसने पर मेंढक प्रसन्न होते हैं। **एनोः अन्यः अन्यम् अनु गृभ्णाति** = इसमें से एक दूसरे पर अनुग्रह करता है। **यत् अभिवृष्टः** = जब वृष्टि होने पर। **मण्डूकः कनिष्कन्** = मेंढक कूदने लगते हैं। **पृश्नि** = चितकबरे रंग का। **हरितेन** = हरे रंग के मेंढक से। **वाचम् संपृङ्क्ते** = बातें करने के समान शब्द करता है।

अनुवाद–पानी के बरसने पर जब ये मेंढक आनंदित होते हैं, तब इनमें से एक दूसरे पर अनुग्रह करता है। अर्थात् उसको पकड़ लेता है। जब वर्षा होने पर मेंढक कूदने लगता है, तब चितकबरे रंग का मेंढक हरे रंग के मेंढक से बातें करने के समान शब्द करता है; अर्थात् अपनी वाणी मिलाता है।

भावार्थ–जब बरसात होती है, तब वर्षा के होने पर मेंढक प्रसन्न होकर एक दूसरे के साथ कूदने लगते हैं, और इस प्रकार टर्राने लगते हैं, मानों कि वे आपस में बातें कर रहें हों।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **अमन्दिषाताम्** = मदी (मद्) धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन। वैदिक रूप। **अभिवृष्टः** = अभि + वृष् + क्त। **कनिष्कन्** = स्कन्द् + शतृ = कनिष्कन्। वैदिक रूप। **संपृङ्क्ते** = सम् + पृच् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यदे॑षाम॒न्यो अ॒न्यस्य॒ वाचं॑ शा॒क्तस्ये॑व॒ वद॑ति॒ शिक्ष॑माणः।
सर्वं॒ तदे॑षां स॒मृधे॑व॒ पर्व॒ यत् सु॒वाचो॒ वद॑थ॒नाध्य॒प्सु॥ ५॥

अन्वय–यत् एषाम् अन्यः अन्यस्य वाचम् शिक्षमाणः शाक्तस्य इव वदति, यत् सुवाचः अप्सु अधि वदथन तत् एषाम् सर्वम् पर्व समृधा इव।

शब्दार्थ–यत् एषाम् अन्य = जब इसमें से एक मेंढक। **अन्यस्य वाचम् वदति** = दूसरे के साथ बोलने लगता है। **शिक्षमाणः शक्तस्य इव** = तब शिष्य गुरु के शब्द पुनः बोलने के समान प्रतीत होता है। **यत् अप्सु अधि सुवाचः वदथन** = जब पानी के ऊपर कूदते हुए अच्छी वाणी तुम मेंढक बोलते हो। **तत् एषाम् पर्व समृधा इव** = तब इनका जोड़ों वाला शरीर समृद्ध सा हो जाता है।

अनुवाद–हे मण्डूको! जब इन तुम में से कोई एक मेंढक किसी दूसरे के साथ बोलने लगता है; अर्थात् दूसरे की वाणी का उसी प्रकार अनुकरण करता है, जिस प्रकार सीखने वाला कोई शिष्य सिखाने वाले गुरु के शब्दों को पुनः दोहराता है। जब बरसे हुये पानी के ऊपर कूदते हुए तुम मेंढक अच्छी वाणी बोलते हो, तब तुम्हारा यह जोड़ों वाला शरीर समृद्ध हुआ सा दीखता है।

भावार्थ–जब भरपूर पानी बरसता है, तब मेंढक आनन्द से इधर-उधर कूदते हैं। उस समय ये मेंढक जो शब्द करते हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई शिक्षक अथवा गुरु मंत्र बोल रहा हो, और शिष्यगण उसकी वाणी को दुहरा रहे हों।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– शाक्तस्य = शक् + क्त् + अण् = शाक्त। **शिक्षमाणः** = शिक्ष् + (शप्) + (मुक्) + शानच् = शिक्षमाण। **समृधा** = सम् + ऋध् + अ + टाप्। **वदथन** = वद् धातु, लोट्लकार, मध्यम पुरुष एकवचन।

गोमा॑यु॒रेको॑ अ॒जमा॑यु॒रेक॒ः पृश्नि॒रेको॒ हरि॑त॒ एक॑ एषाम्।
स॒मा॒नं नाम॒ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पु॒रुत्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः ॥ ६ ॥

अन्वय–एषाम् एकः गोमायुः एकः अजमायुः एकः पृश्निः एकः हरितः विरूपाः समानम् नाम बिभ्रतः पुरुत्रा वाचं वदन्तः पिपिशुः।

शब्दार्थ– एकः गोमायुः = एक मेंढक गौ के समान शब्द करता है। **एकः अजमायुः** = दूसरा बकरे के समान शब्द करता है। **पृश्नि एकः** = एक चितकबरा है तो। **एषाम् एकः हरितः** = इनमें से दूसरा हरा है। **विरूपाः** = अनेक रूपों वाले होते हुए भी। **समानम् नाम बिभ्रताः** = एक ही 'मेंढक'

यह नाम सब धारण करते हैं और ये। **पुरुत्रा वाचं वदन्तः पिपिशुः** = अनेक प्रकार के शब्द करते हुए दिखाई देते हैं।

अनुवाद—इन मेंढकों में से कोई एक गाय के समान शब्द करता है तो दूसरा बकरे के समान बोलता है, कोई एक चितकबरा है, तो इनमें से कोई एक हरे वर्ण वाला है। इस तरह ये विभिन्न रूपों वाले होते हुए भी एक ही 'मेंढक' इस नाम को धारण करते हैं, और ये बहुत से स्थानों पर अनेक प्रकार के शब्द करते हुए अर्थात् टर्राते हुये दिखाई देते हैं।

भावार्थ—मेंढकों में कोई मेंढक गाय के जैसी बोली बोलता है, तो दूसरा बकरी के जैसे बोली बोलता है। कोई मेंढक चितकबरे रंग का होता है, तो कोई मेंढक हरे रंग का होता है। अनेक रूपों वाले होने पर भी इन मेंढकों का नाम तो एक ही है। वर्षा ऋतु में ये सभी मेंढक अनेक तरह के शब्द करते हुए अर्थात् टरटराते हुये प्रादुर्भूत होते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— **बिभ्रतः** = भृ + शतृ = बिभृत्। प्रथमा का बहुवचन। **पुरुत्रा** = 'पुरु' शब्द से ''देवमनुष्य'' सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय। **पिपिशुः** = 'पिश् अवयवे' धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **वदन्तः** = वद् + शतृ = वदत्। प्रथमा का बहुवचन।

ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः।
सं॒व॒त्स॒रस्य तदह॒ः परि॑ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृषीणं॑ ब॒भूव॑॥ ७॥

अन्वय—अतिरात्रे सोमे ब्राह्मणासः न, मण्डूकाः। न पूर्णं सरः अभितः वदन्तः संवत्सरस्य तत् अहः परि स्थ, यत् प्रावृषीणम् बभूव।

शब्दार्थ—**अतिरात्रे सोमे** = अतिरात्र नामक सोमयाग में जैसे। **ब्राह्मणासः न** = ब्राह्मण मंत्र बोलते हैं, उस तरह। **मण्डूकाः** = हे मेंढको! **न पूर्णं सरः अभितः वदन्तः** = जल से भरे हुये तालाब के चारों ओर टरटराते हुये। **संवत्सरस्य तत् अहः** = तुम वर्ष के उस दिन। **परिस्थ यत् प्रावृषीणम् बभूव** = चारों ओर स्थित हो जाते हो, जब वर्षा का जल बरसता है।

अनुवाद—अतिरात्र नामक यज्ञ में और सोमयज्ञ में जिस प्रकार ब्राह्मण मन्त्रों का पाठ करते हैं, उसी तरह से हे मेंढको! वर्षा के जल से परिपूर्ण सरोवर के चारों ओर टरटराते हुये वर्ष के उस दिन चारों ओर स्थित हो जाते

हो। जब वर्षा का जल बरसता है। अर्थात् वर्षा का वह दिन तुम्हारे लिये चारों ओर घूमने के लिये होता है।

भावार्थ–सोमयज्ञ में जिस प्रकार अनेक ब्राह्मण ऋत्विक् एक स्वर से वेदमंत्रों का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार ये मेंढक एक स्वर से शब्द करते हैं। वर्षा ऋतु में ये मेंढक चारों ओर कूदते फिरते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– ब्राह्मणासः = ब्राह्मण शब्द, प्रथमा का बहुवचन। वैदिक रूप। लोक में ब्राह्मणाः होगा। **प्रावृषीणम्** = प्रावृषि भवम्। प्रावृष् + ख (ईन)।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्॥ ८॥

अन्वय–परिवत्सरीणम् ब्रह्म कृण्वन्तः सोमिनः ब्राह्मणासः वाचम् अक्रत। घर्मिणः अध्वर्यवः न सिस्विदानाः गुह्या केचित् आविर्भवन्ति।

शब्दार्थ–परिवत्सरीणम् = वार्षिक। **ब्रह्म कृण्वन्तः** = यज्ञ करने वाले। **सोमिनो ब्राह्मणसः** = सोमयाज्ञी ब्राह्मण जैसे। **वाचम् अक्रत** = मन्त्र बोलते हैं। **घर्मिणः अध्वर्यवः सिस्विदानाः** = यज्ञ करने वाले अध्वर्यु पसीने से भीगे हुए। **केचित् गुह्याः** = कई याजक गुप्त स्थान में बैठते हैं। **आविः न भवन्ति** = बाहर नहीं आते हैं।

अनुवाद–एक वर्ष चलने वाला यज्ञ करने वाले सोम का अभिषव करने वाले ब्राह्मण जैसे मन्त्र बोलते हैं, उसी तरह ये मेंढक भी शब्द करते हैं। धर्मयज्ञ करने वाले अध्वर्यु गर्मी में पसीने से भीगे हुए गुप्त स्थानों में बैठते हैं, और बाहर नहीं आते हैं। अर्थात् धर्म यज्ञ करने वाले ऋत्विजों के समान गर्मी में अत्यधिक पसीने से भर जाने के कारण गुप्त स्थान पर छिपे रहने वाले कुछ मेंढक वर्षा ऋतु में प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थ–एक वर्ष तक चलने वाले यज्ञ में, जैसे वेदपाठी एक स्वर में मंत्र का पाठ करते हैं, उनमें से कुछ याचक तो यज्ञ की अग्नि के पास बैठने के कारण पसीने से भीग जाते हैं, तो कुछ अन्दर ही बैठकर मंत्र पाठ करते हैं, उसी तरह सब मेंढक एक स्वर से शब्द करते हैं। उन में कुछ तो बाहर निकलकर शब्द करते हैं। वे मेंढक वर्षा से भीग जाते हैं, पर दूसरे कुछ मेंढक

बिलों में छिपे रहकर ही शब्द करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– कृण्वन्तः = कृ + शतृ = कृण्वन्। **परिवत्सरीणम्** = परिवत्सरे भवम्। परिवत्सर + ख (ईन)। **सिष्विदानाः** = स्विद् + कानच् = सिष्विदान।

दे॒वहि॑तिं जुगुपुर्द्वादशस्य॑ ऋ॒तुं नरो॒ न प्र मि॑नन्त्येते।
सं॒व॒त्स॒रे प्रा॒वृष्याग॑तायां त॒प्ता घर्मा अ॑श्नुवते विस॒र्गम्॥ ९॥

अन्वय–नरः एते देवहितिम् जुगुपुः। द्वादशस्य ऋतुम् न प्र मिनन्ति। संवत्सरे प्रावृषि आगतायाम् 'घर्माः' तप्ताः विसर्गम् अश्नुवते।

शब्दार्थ– एते नरः = ये नेता लोग। **देवहितिं जुगुपुः** = दैवी नियम का संरक्षण करते हैं। **द्वादशस्य ऋतुम् न प्र मिनन्ति** = बारह महीनों की ऋतुओं को विनष्ट नहीं करते हैं। **संवत्सरे प्रावृषि आगतायाम्** = वर्ष में वृष्टि का समय आते ही। **तप्ताः घर्माः विसर्गम् अश्नुवते** = तपे हुए मेंढक बाहर आते हैं।

अनुवाद–नेतृत्व करने वाले ये मेंढक दैवी विधान अर्थात् ऋतु आदि के नियमों की रक्षा करते हैं। इसलिये ये बारह महीनों वाले वर्ष की ऋतुओं को विनष्ट नहीं करते। अर्थात् सब ऋतुयें क्रमानुसार आती रहती हैं। वर्ष में वर्षा ऋतु के आने पर गर्मी से संतप्त रहते हुये, ये मेंढक बिलों से बाहर निकलते हैं।

भावार्थ–ये मेंढक ग्रीष्म ऋतु में खूब तपते हैं, पर वर्षा होते ही अपने बिलों से बाहर निकल आते हैं और खूब आनन्द से इधर-उधर कूदते हैं तथा शब्द करते हुए नाचते हैं। इस प्रकार ये देवताओं के द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– देवहितिम् = देव + धा + क्तिन् = देवहिति। **जुगुपुः** = गुप् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **अश्नुवते** = अश् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

गोमा॑युरदाद॒जमा॑युरदा॒त् पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो नो॒ वसू॑नि।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त आयु॑ः॥ १०॥

अन्वय–गोमायुः नः वसूनि अदात्। अजमायुः अदात्। पृश्निः अदात् हरितः अदात्। सहस्रसावे मण्डूकाः गवाम् शतानिः ददतः आयुः प्रतिरन्ते।

शब्दार्थ–गोमायुः अदात् = गाय जैसे शब्द करने वाला मेंढक हमें धनों को प्रदान करें। **अजमायुः अदात्** = बकरे के समान शब्द करने वाला मेंढक हमें धन देवे। **पृश्निः अदात्** = चितकबरा मेंढक हमें धन देवे। **हरितः नः वसूनि अदात्** = हरा मेंढक हमें धन प्रदान करें। **सहस्रसावे** = हजारों औषधियों को उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु के आने पर। **गवाम् शतानि ददतः मण्डूकाः** = सैंकड़ों गायों को देते हुये ये मण्डूक नाम के देवता। **आयुः प्रतिरन्ते** = हमारी आयु को बढ़ावें।

अनुवाद–गौ के समान शब्द करने वाला मण्डूक हमें धन देवे। बकरे के समान शब्द करने वाला मण्डूक हमें धन प्रदान करें। चितकबरा मण्डूक हमें धन प्रदान करें। हरा मण्डूक हमें धन प्रदान करें। हजारों औषधियों को उत्पन्न करने वाली, अर्थात् बढ़ाने वाली वर्षा ऋतु में सैकड़ों गौवें देते हुये ये मेंढक हमारी आयु को बढ़ावें।

भावार्थ–मण्डूकों के प्रकट होने से वर्षा ऋतु के आने की सूचना मिल जाती है। उत्तम वर्षा होने से उत्तम घास उत्पन्न होती है, उत्तम घास खाकर गौवें पुष्ट होती है। वर्षा काल में वर्षा से उत्तम धान्य उत्पन्न होता है, जिससे धन प्राप्त होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अदात् = दा धातु, लुङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **सहस्रसावे** = सहस्रं सुनोति इति तस्मिन्। सहस्र + सू + घञ् = सहस्रसाव। सप्तमी का एकवचन। **तिरन्ते** = तृ धातु, लट्लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

ooo

२१. विश्वेदेवाः सूक्त

मण्डल ८ **सूकत ३०**

ऋषि-वैवस्वतमनु **देवता-विश्वेदेव** **छन्द-प्रथम मन्त्र में गायत्री, द्वितीय में उष्णिक् तृतीय में बृहती तथा चतुर्थ में अनुष्टुप्।**

न॒हि वो॒ अस्त्यर्भको देवा॑सो॒ न कु॑मारकः।
विश्वे॑ स॒तोम॑हान्त॒ इत् ॥१ ॥

अन्वयः—देवासः वः अर्भकः नहि अस्ति न कुमारकः विश्वे सत महान्तः इत् ॥

शब्दार्थ—हे, देवासः = हे देवो! **वः** = तुम्हारे मध्य में। **अर्भकः नहि अस्ति** = कोई छोटा बच्चा नहीं है। **न कुमारकः** = कोई किशोर भी नहीं है। **विश्वे सतः महान्तः इत्** = सभी देव, ज्ञानी एवं महान् हैं।

अनुवाद—हे देवताओ! तुम सब में कोई भी शिशु नहीं है और न ही कोई कुमार (किशोर) अवस्था का है। एक समान आयु वाले तरुण होते हुये तुम सब देवता निश्चय ही महान् हो।

भावार्थ—इन देवों में कोई भी बच्चे जैसा अज्ञानी नहीं है और कोई किशोर जैसा उच्छृंखल या अनुशासनहीन नहीं है, अर्थात् सभी देव ज्ञानी एवं महान् है।

टिप्पणी— सतो महान्तः = अस् + शतृ = सत्। **सतः महान्त** = सतो महान्तः कर्मधारय तत्पुरुष समास, विभक्ति का अलुक्॥

इति॑ स्तु॒तासो॑ असथा रिशादसो॒ ये स्थ त्रय॑श्च त्रिं॒शच्च॑।
मनो॑र्देवा यज्ञियासः॥ २॥

अन्वय–रिशादसः मनोः यज्ञियासः देवा ये त्रिंशत् च त्रयः च स्तुतासः असथ।

शब्दार्थ–हे, रिशादसः मनोः यज्ञियासः देवाः = हिंसको के विनाशक, ज्ञानी के द्वारा पूज्य देवो! **ये** = जो तुम। **त्रिंशत् च त्रयः च** = तीस और तीन अर्थात्-तैतीस हो, वे तुम। **स्तुतासः असथ** = स्तुति के योग्य हो।

अनुवाद–हिंसक शत्रुओं को खा जाने वाले एवं मनु के यज्ञ के योग्य अर्थात् पूजनीय, हे विश्वेदेवो! जो तुम तीन और तीस अर्थात्-तैतीस हो वे तुम स्तुति किये जाते रहते हो, अथवा स्तुति किये जाते हुए हवियों की कामना करते हो।

भावार्थ–अभिप्राय यह है कि जितने भी तैतीस देव हैं वे सब हिंसकों के शत्रु, ज्ञानी और पूज्य होने के कारण स्तुति के योग्य हैं।

टिप्पणी– स्तुतासः = ष्टुञ् (स्तु) + क्त स्तुत प्रथमा का बहुवचन, वैदिक रूप। **असथ** = अस् धातु लेट्लकार, मध्यमपुरुष बहुवचन। **यज्ञियासः** = यज्ञम् अर्हति अर्थ में घञ् प्रत्यय। यज्ञ + घ (इय) यज्ञिय।

ते न॑स्त्राध्वं ते॑ऽवत॒ त उ॑ नो॒ अधि॑ वोचत्।
मा न॑ः प॒थः पित्र्या॑न्मान॒वादधि दू॒रं नैष्ट-प॒राव॑तः॥ ३ ॥

अन्वय–ते नः त्राध्वम् ने अवत ते उ नः अधि वोचत पित्र्यात् मानवात् पथः परावतः दूरम् मा नैष्ट॥

शब्दार्थ–हे देवो! ते = वे तुम। **नः त्राध्वम्** = हमारी रक्षा करो। **ते अवत** = वे तुम हमें बचाओं, **ते नः अधि वोचत** = वे तुम सब हमें उत्तम उपदेश दो। **पित्र्या मानवात् पथः** = हमारा पालन करने वाले ज्ञान युक्त मार्ग से। **परावतः दूरं मा नैष्ट** = दूसरी तरफ दूर मत ले जाओ॥

अनुवाद–हे विश्वेदेवो! वे तुम सब पीड़ा पहुँचाने वाले राक्षसों से हमारी रक्षा करो। वे तुम सब धन आदि प्रदान करके हमें बचाओ। वे तुम सब हमारे समर्थन में बोलो या आशीर्वाद प्रदान करो। मनु द्वारा प्रदर्शित पितरों के सूदूर स्थित मार्ग से हमको दूर मत ले जाना।

भावार्थ–हे देवो! हमें तुम बचाओ, हमारी रक्षा करो, हमें सदा सदुपदेश दो। तथा हमारा पालन करने वाला जो कल्याणकारी मार्ग है, उससे हमें दूर ले जाकर कुमार्ग में प्रेरित मत करो।

टिप्पणी– **त्राध्वम्** = 'त्रैङ्' धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'त्रायध्वम्' रूप होगा। **पित्र्यात्** = 'पितुः आयतम्' अर्थ में पितृ + यत् = पित्र्य। **मानवात्** = मनु + अण् = मानव। **नेष्ट** = नी धातु, लुङ्लकार मध्यमपुरुष का बहुवचन। वैदिक रूप।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत॥४॥

अन्वय–वैश्वानरः देवासः ये विश्वे इह स्थन गवे अश्वाय अस्मभ्यं शर्म यच्छत॥

शब्दार्थ–**हे, वैश्वानरः देवासः** = सब मनुष्यों को उत्तम मार्ग से ले जाने वाले देवो! **ये विश्वे** = जो तुम सब, **इह स्थन** = यहां पर विद्यमान हो, वे तुम सब हमारे, **गवे अश्वाय अस्मभ्यं** = गाय घोड़े आदि पशु तथा हमारे लिए, **शर्म यच्छत** = घर तथा सुख प्रदान करो। ४॥

अनुवाद–जो तुम सब विश्वेदेव यहाँ हो अर्थात्-इस यज्ञ में उपस्थित हो और सब सर्वजन कल्याणकारी यज्ञ की अग्नियाँ यहाँ उपस्थित हैं, वे तुम सब हमारे लिये, हमारी गौंओं के लिये और हमारे घोड़ों के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध या विशाल सुख प्रदान करो।

भावार्थ–हे देवो! तुम हमेशा हमारे समीप रहो, तुम हमारे प्रभु और मनुष्यों के लिए सुखपूर्ण घर प्रदान करो।

टिप्पणी :– **देवासः** = देवाः का छान्दस रूप **यच्छत** = दाण् (यच्छ) धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **वैश्वानराः** = विश्वे नरः यस्मिन् अयं 'विश्वानरः यज्ञः। विश्वानरे उपस्थितः अर्थ में विश्वानर + अण् = 'वैश्वानर॥ **शर्म** = शृणाति हिनस्ति दुःखम् अर्थ में शृ + मनिन् मन् = शर्म।

०००

२२. सोम सूक्त

मण्डल ८ सूक्त ४८

ऋषि-कण्वपुत्र प्रगाथ देवता-सोम छन्द-पञ्चम में जगती और शेष में त्रिष्टुप्

स्वा॒दोर॑भक्षि॒ वय॑सः सुमेधा। स्वा॒ध्यो॑ वरिवो॒वित्त॑रस्य।
विश्वे॒ यं दे॒वा उ॒त मर्त्या॑सो॒ मधु॑ ब्रुवन्तो अ॒भि सं॒चर॑न्ति॥ १॥

अन्वय—सुमेधा स्वाध्यः वरिवोवित्तरस्य स्वादोः वयसः अभक्षि, यम् विश्वे देवाः उत मर्त्यासः मधु ब्रुवन्तः अभि संचरन्ति।

शब्दार्थ—**सुमेधा** = उत्तम बुद्धि वाला। **स्वाध्यः** = उत्तम अध्ययन करने वाला। **वरिवोवित्तरस्य स्वादोः वयसः** = बहुत अधिक श्रेष्ठ, स्वादिष्ट अन्न को। **अभक्षि** = खाने वाला बनूँ। **यम् विश्वे देवाः उत मर्त्यासः** = जिस अन्न को सब देवता और मनुष्य। **मधु ब्रुवन्तः अभिसंचरन्ति** = यह मीठा है, इस प्रकार कहते हुये घूमते हैं।

अनुवाद—उत्तम बुद्धि वाला, उत्तम अध्ययन करने वाला, मैं कण्व का पुत्र सुगाथ नाम का ऋषि बहुत अधिक श्रेष्ठ अर्थात् अत्यन्त पूज्य और स्वादिष्ट अन्नरूप सोम को खाने वाला बनूँ। जिस अन्न को सब इन्द्र आदि देवता और मनुष्य 'मीठा है' ऐसा कहते हुए घूमते हैं।

भावार्थ— यह सोम अत्यन्त मीठा और उत्साहदायक होने के कारण सभी देवता और मनुष्य इसकी प्रशंसा करते हैं। इसे उत्तम अध्ययनशील तथा उत्तम बुद्धि वाले ही प्राप्त कर सकते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— **अभक्षि** = भक्ष् धातु, लुङ्लकार, उत्तम

पुरुष, एकवचन। **वरिवोवित्तरस्य** = वरिवस् + विद्लृ + क्विप् + तरप् = वरिवोवित्तर षष्ठी का एकवचन।

अ॒न्तश्च॒ प्रागा॒ अदि॑तिर्भवास्यवया॒ता हर॑सो दैव्य॑स्य।
इन्द॒विन्द्र॑स्य स॒ख्यं जु॑षा॒णः श्रौष्टीव॒ धुरमनु॑ रा॒य ऋ॑ध्याः॥ २ ॥

अन्वय –अन्तः च प्र अगाः। अदितिः दैव्यस्य हरसः अवयाता भवासि। इन्दो। इन्द्रस्य सख्यम् जुषाणः श्रौष्टी धुरम् इव राये अनुऋध्याः।

शब्दार्थ– इन्दो = हे सोम! **अन्तः प्र अगाः** = तू हृदय के अन्दर तक जाता है। **अदितिः** = अविनाशी सोम तू। **दैव्यस्य हरसः** = देवताओं के क्रोध को। **अवयाता भवासि** = दूर करने वाला है। **इन्द्रस्य सख्यम् जुषाणः** = इन्द्र की मित्रता को स्वीकार कर के। **श्रौष्टी धुरम् इव** = शीघ्रगामी घोड़े जिस तरह रथ की धुरी में जोड़े जाते हैं, उसी तरह तू। **राये अनुऋध्याः** = धन प्रदान करने के लिए प्रवृत्त होता है।

अनुवाद–हे सोम! तू हृदय के अन्दर तक जाता है। हे अविनाशी सोम! तू देवताओं के दिव्य क्रोध को दूर करने वाला है। इन्द्र की मित्रता को प्राप्त क्रकरके तुम शीघ्रगामी घोड़ा जिस प्रकार धुरा में जोड़ा जाता है, उसी प्रकार तुम हमें धन प्रदान करने के लिए प्रवृत्त होते हो, अर्थात् धन को प्राप्त कराने के लिए अनुगमन करते हो।

भावार्थ–जब सोमरस शरीर के अन्दर जाता है, तब मनुष्य चाहे कितना भी क्रोधी हो, वह शान्त हो जाता है। सोम इन्द्र का मित्र है, इसलिए सोमरस तैयार करने वाले के पास इन्द्र आता है और वह धनवान् होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– प्रागाः = प्र + इ (गा) धातु, लुङ् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **भवासि** = भू धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **जुषाणः** = जुष् + शानच् = जुषाण। **श्रौष्टी** = श्रुष्टी + अण् + ङीप्। **ऋध्याः** = ऋध् धातु, विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन। **अनुऋध्याः** = अनु + ऋध् धातु गत्यर्थक होती है।

अपा॑म॒ सोम॑म॒मृता॑ अभूमाग॑न्म ज्योति॒रवि॑दाम दे॒वान्।
किं नू॒नम॒स्मान् कृ॑णव॒दरा॑ति॒ः किमु॑ धू॒र्ति॑रमृत॒ मर्त्य॑स्य॥३।।

अन्वय–अमृता। सोमम् अपाम अमृताः अभूम, ज्योतिः अगन्म, देवान् अविदाम। अस्मान् अरातिः नूनम् किम् कृणवत् मर्त्यस्य धूर्ति किमु।

अनुवाद–अमृत! = हे अमर सोम! **सोमम् अपाम** = हमने तुम सोम को पी लिया है। **अमृताः अभूम** = और अमर हो गए हैं। **ज्योतिः अगन्म** = प्रकाशमान् लोकों को जान लिया है। **देवान् अविदाम** = देवताओं को प्राप्त कर लिया है। **अस्मान् अरातिः** = हमारा शत्रु। **नूनम् किम् कृणवत्** = अब निश्चय से क्या कर सकता है। **मर्त्यस्य धूर्तिः किमु** = मनुष्य की धूर्तता भी हमारा क्या कर सकती है।

अनुवाद–हे मरणरहित, अथवा, अमर सोम! हमने तुम सोम का पान किया है और मरणरहित अथवा अमर हो गये हैं। हमने ज्योति, अर्थात् प्रकाशमान् लोकों को जान लिया है या प्राप्त कर लिया है और देवताओं को जान लिया है। इसलिए हमारा शत्रु अब निश्चय से क्या कर सकता है, अथवा हमारा भला क्या बिगाड़ सकता है? और मनुष्य की धूर्तता भी हमारा क्या कर सकती है, अर्थात् धूर्त मनुष्य क्या बिगाड़ सकता है।

भावार्थ–मनुष्य सोम पीकर अमर हो जाता है, उसे प्रकाश का मार्ग मिल जाता है, उस मार्ग पर चलकर वह देवों की महिमा जान लेता है, तब उस मनुष्य के शत्रु और धूर्त लोग उसको हानि नहीं पहुँचा सकते।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– अपाम, अभूम, अगन्म = पा, भू और गम् धातु, लुङ्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **अविदाम** = 'विद् ज्ञाने' या 'विद्लृ लाभे' धातु, लुङ्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **कृणवत्** = कृवि (कृण्व्) धातु, लेट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

शं नो॑ भव हृ॒द आ पी॒त इ॑न्दो पि॒तेव॑ सोम सू॒नवे॑ सु॒शेवः॑।
सखे॑व॒ सख्यं॑ उरुशंस॒ धीरः॒ प्र ण॒ आयु॑र्जीवसे॑ सोम तारीः॥ ४॥

अन्वय–इन्दो! आपीतः नः हृदे शम् भव। सोम! पिता सूनवे इव सखा सख्ये इव सुशेवः उरुशंस सोम! धीरः नः जीवसे आयुः प्रतारीः।

शब्दार्थ– इन्दो = हे सोम! **आपीतः हृदे** = हमारे द्वारा पिये जाते हुये तुम हमारे हृदयों के लिए। **नः शम् भव** = कल्याणकारी हो। **सोम** = हे सोम।

पिता सूनवे इव = पुत्र के लिए पिता के समान। **सख्ये सख्या इव** = मित्र के लिए मित्र के समान तू हमारे लिए। **सुशेवः** = सुखकारी हो। **उरुशंस सोम** = हे बहुतों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए सोम! **धीरः न** = बुद्धिमान् तुम। **जीवसे** = हमारे जीवन के लिये। **आयुःतारीः** = हमारी आयु को दीर्घ कर।

अनुवाद–हे सोम! हमारे द्वारा दिए जाने पर तुम हमारे हृदयों को शुभ प्रदान करने वाले बनो। हे सोम! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए और मित्र-मित्र के लिए सुखकारी अर्थात् सुख देने वाला होता है, उसी प्रकार तुम हमारे लिए सुखकारी होओ। बहुतों से प्रशंसित अथवा महान् कीर्ति वाले, हे सोम! बुद्धिमान् तुम हमारे जीने के लिए, हमारी आयु को दीर्घ करो।

भावार्थ–हे सोम! पेट में जाकर तुम हमारे लिए कल्याणकारी होओ। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र को तथा एक मित्र अपने मित्र को हर प्रकार से सुख देता है। उसी प्रकार हे सोम! तुम हमें सुख दो और उत्तम रीति से जीने के लिए तुम हमारी आयु को बढ़ाओ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– आपीतः = आ + पा + क्त। पा के आ को ई आदेश। **जीवसे** = 'जीव् धातु' से तुमुन् के अर्थ में 'असेन्' प्रत्यय। **तारीः** = तृ धातु, लुङ्लकार, मध्यमपुरुष का एकवचन।

इ॒मे मा॑ पी॒ता य॒शस॑ उरु॒ष्यवो॒ रथं न गाव॒ः सम॑नाह॒ पर्व॑सु।
ते मा रक्षन्तु, वि॒स्रस॑श्चरि॒त्रा॑दुत मा॒ स्रामा॑द्यवयन्त्विन्द॑वः॥ ५॥

अन्वय–इमे पीताः मा यशसः उरुष्यवः, गावः रथम् न पर्वसु समनाह ते मा विस्रसः चरित्रात् रक्षन्तु उत इन्दव मा स्रामात् यवयन्तु।

शब्दार्थ– यशसः उरुष्यवः = यशस्वी और रक्षा की इच्छा करने वाले। **इमे पीताः** = ये दिए गए सोमरस। **गावः रथम् न** = बैल जैसे रथ को खींचता है, उसी तरह। **मा पर्वसु समनाह** = मेरी सन्धियों को सुदृढ़ करें। **उत** = और। **ते** = वे सोमरस। **विस्रसः चरित्रात्** = डगमगाते हुए कदमों से। **मा रक्षन्तु** = मेरी रक्षा करें। **इन्दवः** = ये सोमरस। **स्रामात् मा यवयन्तु** = रोग से मुझे मुक्त करें।

अनुवाद—ये पिये जाते हुये सोम मेरे लिए यशस्वी, अर्थात् कीर्तिकारक हैं, और हमारी रक्षा करने वाले हैं। जिस प्रकार बैल रथ को खींचता है, उसी प्रकार ये सोम रस डगमगाते हुए कदमों से मेरी रक्षा करें, अर्थात् मेरे पतित होते हुये चरित्र से मेरी रक्षा करें और ये सोम रस मुझे रोग से पृथक् करें।

भावार्थ—सोमरस के पीने से शरीर में उत्साह उत्पन्न होता है और शरीर के प्रत्येक जोड़ दृढ़ होते हैं। पैरों में भी शक्ति आती है और शरीर में व्याधियों का भय नहीं रहता।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— **यशसः** = यशः कुर्वन्तिः = यशस् + मतुप्। मतुप का छान्दस लोप = यशस्। प्रथमा का बहुवचन। **उरुष्यवः** = उरुष्य् + उ। प्रथमा का बहुवचन। **समनाह** = णिजन्त 'णह्' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष का एकवचन = अनाह। सम् + अनाह = समनाह। **विस्रसः** = वि + स्रस् + क्विप् = विस्रस्। प्रथमा का बहुवचन। **चरित्रात्** = चर् + इत्र = चरित्र। पञ्चमी का एकवचन। **यवयन्तु** = यु धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

अ॒ग्निं न मा॑ मथि॒तं सं दि॑दीप॒ः प्र च॑क्षय कृणु॒हि वस्य॑सो नः।
अथा॒ हि ते॒ मद॒ आ सो॑म॒मन्ये॑ रे॒वाँ इ॑व॒ प्र च॑रा पुष्टिमच्छ॑॥ ६॥

अन्वय—मा मथितम् अग्निम् न सम् दिदीपः, प्रचक्षय, न वस्यसः कृणुहि। सोम! अथ हि ते मदे आ मन्ये रेवान् इव पुष्टिम् अच्छ प्रचर।

शब्दार्थ— **सोम** = हे सोमरस। **मथितम् अग्निम् न** = प्रदीप्त हुई अग्नि के समान। **मा सं दिदीपः** = मुझे देदीप्यमान कर। **प्रचक्षय** = मुझे तेजस्वी कर। **नः वस्यसः कृणुहि** = हमें धनवान् कर। **अथ** = इसके बाद मैं। **मदे** = आनन्द में। **ते मन्ये** = तेरी स्तुति करता हूँ। **रेवान् ईव** = तुम धनवान् के समान। **प्रचर** = सर्वत्र संचार करो। **पुष्टिम् अच्छ** = पोषण प्रदान करो।

अनुवाद—हे सोमरस! मुझ को प्रदीप्त हुई अग्नि के समान देदीप्यमान् करो, और मुझे तेजस्वी करो। हमें अत्यधिक धनवान् करो। हे सोम! इसके बाद निश्चय ही तुम्हारी आनन्द में स्तुति करता हूँ अर्थात् तुमको मद उत्पन्न करने वाला मानता हूँ। तुम धनवान् के समान सर्वत्र संचार करो और पोषण

प्रदान करो, अर्थात् हमारी पुष्टि को निर्मल बनाओ।

भावार्थ–सोम पीने से मनुष्य जलती हुंई, अग्नि के समान तेजस्वी और देदीप्यमान् होता है और धन सम्पन्न होता है। सोमरस में पोषकतत्व भी भरपूर होते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– मथितम् = मथ् + (इट्) + क्त = मथित। **दिदीपः** = दीप् धातु, लिट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **कृणुहि** = कृ धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **वस्यसः** = वसु + मतुप् + ईयसुन् = वस्यस् द्वितीया का बहुवचन। **रेवान्** = रे + मतुप् = रेवत। प्रथमा का एकवचन।

इ॒षि॒रेण॑ ते मन॑सा सु॒तस्य॑ भक्षी॒महि॒ पित्र्य॑स्येव रा॒यः।
सोम॑ रा॒जन् प्र ण॒ आयूं॑षि तारी॒रहा॑नीव॒ सूर्यो॑ वास॒राणि॑॥ ७॥

अन्वय–इषिरेण मनसा सुतस्य ते भक्षीमहि पित्र्यस्य रायः इव। सोम! राजन्! न आयूंषि प्रतारीः सूर्यः वासराणि अहानि इव।

शब्दार्थ– इषिरेण मनसा = इच्छा के अनुसार मन से। **सुतस्य ते** = अभिषव किये गये। **भक्षीमहि** = तुझे भक्षण करता हूँ। **पित्र्यस्य रायः इव** = जिस प्रकार पिता के धन का उपभोग पुत्र करता है। **सोम! राजन्!** = हे सोम! सबके स्वामी राजन्! **नः आयूंषि प्रतारी** = हमारी आयु को बढ़ाओ। **सूर्यः वासराणि** = सूर्य जैसे निवास कराने वाले दिनों का विस्तार करता है।

अनुवाद–इच्छायुक्त मन से निचोड़े गए, अर्थात् अभिषव किये गये, हे सोम! मैं तुम्हारा भक्षण करता हूँ, उसी प्रकार से जैसे इच्छानुसार पिता के धन का उपभोग पुत्र करता है। हे सबके स्वामी राजन्! अर्थात् हे तेजस्वी सोम! आप हमारी आयु को दीर्घ करो। उसी प्रकार, जैसे सूर्य निवास कराने वाले अर्थात् बसाने वाले दिनों का विस्तार करता है।

भावार्थ–सोमरस को प्रेमपूर्वक पीने से मनुष्य पुष्ट होता है और उसकी आयु बढ़ती है, अर्थात् वह दीर्घायु होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– इषिरेण = इष् + इरय् = इषिर। तृतीया

का एकवचन। **सुतस्य** = सु + क्त = सुत। षष्ठी का एकवचन। **भक्षीमहि** = भक्ष् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन। **पित्र्यस्य** = पितृ + यत् = पित्र्य। षष्ठी का एकवचन। **तारीः** = तृ धातु, लङ्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप।

सोम॑ राजन्मृ॒ळया॑ नः स्व॒स्ति तव॑ स्मसि व्र॒त्या॒ ३॒॑ स्तस्य॑ विद्धि।
अल॑र्ति॒ दक्ष॑ उ॒त म॒न्युरि॑न्दो मा नो॑ अ॒र्यो अ॑नु॒का॒मं परा॑ दाः॥ ८॥

अन्वय–सोम! राजन्! नः स्वस्ति मृळय। व्रत्याः तव स्मसि। तस्य विद्धि। इन्दो। दक्षः अलर्ति उत मन्युः। अर्यः अनुकामम् नः मा परा दाः।

शब्दार्थ–राजन् सोम! = हे तेजस्वी सोम! **स्वस्ति नः मृळय** = हमारे कल्याण के लिए हमें सुखी कर। **व्रत्याः तव स्मसि** = व्रत का पालन करने वाले हम तेरे हैं। **तस्य विद्धि** = इस बात को तू जान। **इन्दो** = हे सोम। **दक्षः उत मन्युः अलर्ति** = चतुरता तथा सात्विक क्रोध हमें प्राप्त हो। **न अर्यः अनुकामम् मा परा दाः** = हमें शत्रुओं की इच्छा के अधीन मत कर।

अनुवाद–हे तेजस्वी सोम! सबके स्वामी राजन् हमें कल्याण के साथ सुखी करो। व्रत का पालन करने वाले हम तुम्हारे हैं। इस बात को तुम जानो। हे सोम! चतुरता तथा सात्विक क्रोध हमें प्राप्त हो। हमें उन दोनों प्रकार के शत्रुओं की इच्छा के अधीन मत करो।

भावार्थ–हे सोम! हमारा कल्याण करने के लिए हमें सुखी करो। व्रत को धारण करने वाले हम तुम्हारे अपने ही हैं, इस बात को तुम अच्छी तरह जान लो। हमें तुम चतुरता और सात्विक क्रोध प्रदान करो। और हमें शत्रुओं की इच्छा के अनुसार त्याग मत देना।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– व्रत्याः = व्रत + यत् = व्रत्य। **अलर्ति** = ऋ गतौ धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **अर्थः** = अरि शब्द, षष्ठी विभक्ति, एकवचन। वैदिक रूप। **परा दाः** = परा पूर्वक 'दा' धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

त्वं हि न॑स्त॒न्व॑ः सोम गो॒पा गात्रे॑गात्रे नि॒षसत्था॑ नृ॒चक्षा॑ः।
यत् ते॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॒ स नो॑ मृळ सुष॒खा दे॑व वस्यः॥९॥

अन्वय–सोम! त्वं हि नः तन्वः गोपाः, गात्रेगात्रे नृचक्षाः निषसत्था। यत् ते व्रतानि वयम् प्रमिनाम् देव! स वस्यः नः सुसखा मृळ।

शब्दार्थ– सोम = हे सोम! **त्वं हि नः तन्वः गोपाः** = तू हमारे शरीर का रक्षक है। **नृचक्षाः** = मनुष्यों को निरीक्षण करने वाला। **गात्रेगात्रे** = हमारे शरीर के प्रत्यैक अंग में। **निषसत्था** = प्रविष्ट हो। **यत्** = यद्यपि। **ते व्रतानि** = तेरे नियमों को। **वयम् प्रमिनाम्** = हम तोड़ देते हैं तो भी। **देव** = हे देव। **सः** = वह। **वस्य नः** = तू श्रेष्ठ हमारा। **सुसखा** = उत्तम मित्र होकर। **मृळ** = हमें सुखी कर।

अनुवाद–हे सोम! तुम निश्चय ही हमारे शरीर के रक्षक हो। हमारे शरीर के प्रत्येक अंग में मनुष्यों का निरीक्षण करने वाला अर्थात् मनुष्यों के कर्मों के द्रष्टा होते हुए तुम प्रविष्ट हो जाओ, अथवा स्थित हो जाओ। यद्यपि हम तुम्हारे नियमों को तोड़ते हैं तो भी, हे देव! वह तुम हमारे श्रेष्ठ अथवा उत्तम मित्र होकर हमें सुखी करो।

भावार्थ–यह सोम शरीर के प्रत्येक अंग में जा कर उसे शक्ति प्रदान करता है, शरीर में उत्साह भरता है। यदि कभी नियम का उल्लंघन भी हो जाए, तो भी इस सोम का सेवन करने से शरीर सशक्त ही रहता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– तन्वः = तनु शब्द, षष्ठी का एकवचन। **गोपा** = णिजन्त गुप् + क्विप्। **निषसत्थ** = नि + सद्, लिट्लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। **नृचक्षाः** = नृ + चक्ष् + असुन् = नृचक्षस्। प्रथमा का एकवचन। **प्रमिनाम** = प्र + मि धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

ऋ॒दूदरे॑ण॒ सख्या॑ सचेय॒ यो मा॒ न रिष्ये॑द्धर्यश्व पी॒तः।
अ॒यं यः सोमो॒ न्यधा॑य्य॒स्मे तस्मा॒ इन्द्रं॑ प्र॒तिर॑मे॒म्यायुः॑॥ १०॥

अन्वय– ऋदूदरेण सख्या सचेय, हर्यश्व! यः पीतः मा न रिष्येत्। यः अयम् सोमः अस्मे न्यधायि तस्मै प्रतिरम् आयुः इन्द्रम् एमि।

शब्दार्थ– ऋदूदरेण = आसानी से पचने योग्य सोम की। **सख्या सचेय** = मित्रता से युक्त होऊँ। **हर्यश्व** = हे उत्तम घोड़ों वाले इन्द्र! **यः पीताः** = जो सोम पिए जाने पर। **नः मा रिष्येत्** = हमें दुःखी न करे। **अयम्**

यः सोमः = यह जो सोम। **अस्मे न्यधायि** = हमारे अन्दर प्रविष्ट हुआ है। **तस्मै** = उस सोम के लिए। **प्रतिरम् आयुः** = दीर्घ आयु। **इन्द्रम् यामि** = इन्द्र से मांगता हूँ।

अनुवाद–आसानी से पचने योग्य अथवा पेट को कष्ट न देंने वाले सोम की मित्रता से युक्त होऊँ। हें उत्तम घोड़ों वाले इन्द्र! जो सोम दिए जाने पर हमें दुःखी न करे, अर्थात् हमारी हिंसा न करे। यह जो सोम हमारे में प्रविष्ट अथवा निहित है। उस सोम के लिए मैं, दीर्घ आयु को इंन्द्र से मांगता हूँ।

भावार्थ–सोमरस आसानी से पचने योग्य है। इसलिए यह बहुत अधिक मात्रा में दिए जाने पर भी पीने वाले को कष्ट नहीं पहुँचाता। यह सोम आयु को दीर्घ करने वाला भी है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– **ऋदूदरेण** = ऋदु उदरं यस्य तेन। **सचेय** = सच् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन। **रिष्येत्** = रिष् धातु, विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन। **हर्यश्व** = हरय अश्वाः यस्य सः बहुब्रीहि समास। **न्यधायि** = नि + धा धातु, लुङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अस्मे** = सप्तमी के अर्थ में 'शे' आदेश हुआ है।

अप॒ त्या अ॑स्थुरनि॑रा अमी॑वा॒ निर॑त्रस॒न् तमि॑षी ची॒रभै॑षुः।
आ सोमो॑ अ॒स्माँ अ॑रुह॒द् विहा॑या॒ अग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयु॑ः॥ ११॥

अन्वय–त्याः अनिराः अमीवा अप अस्थु तमिषीचीः नीः अत्रसन् अभैषुः, विहायाः सोमः अस्मान् आ अरुहत्। यत्र आयुः प्रतिरन्ते अगन्म।

शब्दार्थ– **त्याः अनिराः अमीवाः** = वे मुश्किल से जाने वाले रोग भी। **अप अस्थु** = दूर चले जायें। **तमिषीचीः नीः अत्रसन्** = बलवान् रोगों ने हमें पीड़ा दी है। **अभैषुः** = और हमें बहुत डराया है। वे चले जायें। **विहायाः सोमः** = महान् सोम। **अस्मान् आ अरुहत्** = हमें प्राप्त हो गया है। **यत्र आयुः प्रतिरन्ते** = जहां सोम के पी लेने पर वे आयु को बढ़ा देते हैं, वहां। **अगन्म** = हम जायें।

अनुवाद–वे मुश्किल से जाने वाले बड़े-बड़े रोग हम से दूर चले जायें, बहुत बलवान् रोगों ने हमें पीड़ा दी है। अर्थात् जो बहुत बलवान् रोग हमें

कंपाते थे और डराते थे, वे चले जायें क्योंकि महान् सोम हमें प्राप्त हो गया है। जिस सोम के पी लेने पर आयु दीर्घ होती है। वहां हम जायें अर्थात् उस सोम को हम प्राप्त करें।

भावार्थ—सोमरस का पान करने से कठिन से कठिन और अत्यन्त पीड़ा देने वाले रोग भी दूर हो जाते हैं, और मनुष्य दीर्घायु होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— तमिषीचीः = तमिषीम् अञ्चति अर्थ में तमिषी + अञ्च् + क्विप् = तमिष्यन्। प्रथम विभक्ति का बहुवचन।

यो न॒ इन्दु॑ः पितरो हृ॒त्सु पी॒तोऽम॑र्त्यो॒ मर्त्याँ॑ आवि॒वेश॑।
तस्मै॒ सोमा॑य ह॒विषा॑ विधेम मृ॒लीके अ॑स्य सुम॒तौ स्या॑म॥ १२ ॥

अन्वय—पितरः यः इन्दुः हृत्सु पीतः अमर्त्यः नः मर्त्यान् आविवेश तस्मै सोमाय हविषा विधेम अस्य मृलीके सुमतौ स्याम।

शब्दार्थ— पितरः = ज्ञानीजन। **यः इन्दुः** =जो सोमरस। **हृत्सु पीतः** = हमारे हृदयों द्वारा पिया गया। **अमर्त्यः नः मर्त्यान् आविवेश** = जो अमर अर्थात् कभी नष्ट न होता हुआ हम मनुष्यों में प्रविष्ट होता है। **तस्मै सोमाय** = उस सोम की। **हविषा विधेम** = हवि द्वारा सेवा करते हैं। **अस्य मृलीके सुमतौ स्याम** = हम इस सोम के सुख और उत्तम बुद्धि में रहें।

अनुवाद—हे पितरो! अर्थात् ज्ञानी जन। जो सोमरस हमारे हृदयों में पिया गया और जो अमर, अर्थात् कभी नष्ट न होता हुआ हम मरण धर्मा मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ है, उस सोम की हम हवि प्रदान करके पूजा, अर्थात् सेवा करते हैं और हम इस सोम के सुख और उत्तम बुद्धि में रहें।

भावार्थ—यह सोम रस स्वयं अमर है और पीने वाले को भी अमर बनाता है। ऐसे सोम की सेवा करने से सुख और अनुग्रह बुद्धि प्राप्त होती है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी— आविवेश = आ + विश्, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **विधेम** = विध धातु, विधिलिङ्, उत्तम पुरुष, बहुवचन। **स्याम** = अस् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

त्वं सो॑म पि॒तृभि॑ः संवि॒दा॒नो ऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑त॒न्थ।
तस्मै॑ त इन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम्॥ १३॥

अन्वय–सोम त्वम् पितृभिः संविदानः द्यावा पृथिवी अनु आ ततन्थ। इन्दो! तस्मै ते हविषा विधेम। वयम् रयीणाम् पतयः स्याम।

शब्दार्थ– सोम = हे सोम! **त्वम् पितृभिः संविदानः** = तू ज्ञानियों से संयुक्त होकर। **द्यावापृथिवी अनु आ ततन्थ** = द्युलोक और पृथिवीलोक का विस्तार करता है। **इन्दो** = हे सोमरस। **तस्मै ते** = उस तेरी हम। **हविषा विधेम** = हवि से सेवा करते हैं। **वयम्** = हम। **रयीणाम् पतयः स्याम** = धनों के स्वामी हों।

अनुवाद–हे सोम! तुम पितरों अर्थात् ज्ञानियों से युक्त होकर द्युलोक और पृथिवीलोक को क्रमशः विस्तृत करते हो। हे सोमरस! उस तुम्हारी हम हवि के द्वारा पूजा अर्थात् सेवा करते हैं। हम धनों के स्वामी बनें।

भावार्थ–ज्ञानियों की सहायता से इस सोम ने द्युलोक और पृथिवीलोक का ज्ञान दिया। उस ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य धनी बनें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– संविदानः = सम् + विद् + शानच् = संविदान। **द्यावापृथिवी** = द्यौश्च पृथिवी च वैदिक रूप। **आततन्थ** = आ + तनु विस्तारे धातु, लिट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **रयीणाम्** = रयि शब्द, षष्ठी का बहुवचन।

त्रा॒तारो॑ दे॒वा अधि॑ वोचता नो॒ मा नो॑ नि॒द्रा ई॑शत॒ मोत जल्पि॑ः।
व॒यं सोम॑स्य वि॒श्व ह॑ प्रि॒यास॑ः सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम॥ १४॥

अन्वय–त्रातारः देवाः। नः अधिवोचत। नः निद्रा मा ईशत उत जल्पिः मा। वयम् विश्वह सोमस्य प्रियासः सुवीरासः विदथम् आ वदेम।

शब्दार्थ–त्रातारः देवाः! = रक्षक देवो! **नः अधिवोचत** = हमें उत्तम उपदेश दो। **नः निद्रा मा ईशत** = हम आलस्य अधिकार न करें। **उतमा जल्पिः** = व्यर्थ का बड़बड़ाना भी हम पर अधिकार न करे। **वयम्** = हम। **विश्वह** = प्रतिदिन। **सोमस्य प्रियासः** = सोम के प्रिय हों। **सुवीरासः** = उत्तम पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर हम। **विदथम् आ वदेम** = इस सोम की स्तुति गायें।

अनुवाद–हे रक्षा करने वाले देवो! हमें उत्तम उपदेश दो। हमारे ऊपर आलस्य अथवा नींद अधिकार न करे और व्यर्थ का बड़बड़ाना भी हम पर अधिकार न करे, अर्थात् निन्दक हमें बाधा न पहुँचावें। हम प्रतिदिन अर्थात् सब दिनों में सोम के प्रिय बने रहें और उत्तम पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर इस सोम की स्तुति करते रहें।

भावार्थ–मनुष्य अपना समय आलस्य अथवा नींद और गप्प मारने में न गवायें। वह ज्ञानियों के पास जाकर सदा उत्तम उपदेश ग्रहण करता रहे। जो ऐसा करता है, वही सोम का प्रिय बनता है और उत्तम सन्तानों से युक्त होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– त्रातारः = त्रा + तृच् = त्रातृ। **वोचत** =वच् धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप। **प्रियासः** = प्रिय शब्द, प्रथमा का बहुवचन, वैदिक रूप। **सुवीरासः** =सुवीर, प्रथमा का बहुवचन, वैदिक रूप। **विदथम्** = विद् + अथक् = विदथ।

त्वं नः॑ सोम वि॒श्वतो॑ वयो॒धास्त्वं स्व॒र्विदा वि॑शा नृचक्षा॑ः।
त्वं न॑ इन्द ऊ॒तिभि॑ः स॒जोषा॑ः पा॒हि प॒श्चाता॑दु॒त वा॑ पु॒रस्ता॑त्॥१५॥

अन्वय–सोम। त्वम् नः विश्वत वयोधाः। स्वर्वित् नृचक्षाः त्वम् आ विश। इन्दो। ऊतिभिः सजोषाः त्वम् नः पश्चातात् उत वा पुरस्तात् पाहि।

शब्दार्थ–सोम = हे सोम! **त्वम् नः विश्वत वयोधाः** = तू हमें सब ओर से अन्न को देने वाला हो। **स्वर्वित् नृचक्षाः त्वम्** = सुख को जानने वाला तथा मनुष्यों का निरीक्षण करने वाला तू। **आ विदा** = हमारे अन्दर प्रविष्ट हो। **इन्दो** = हे सोम! **सजोषाः** = प्रसन्न होकर तू। **ऊतिभिः** = अपने संरक्षणों से। **नः पश्चातात् पुरस्तात् पाहि** = हमारी पीछे से और आगे से रक्षा कर।

अनुवाद–हे सोम! तुम हमें सब ओर से अर्थात् सब दिशाओं से अन्न को देने वाला हो। सुख को देने वाला हो, और सब मनुष्यों को देखने वाला अर्थात् निरीक्षण करने वाला तू हमारे अन्दर प्रविष्ट हो। हे सोम! प्रसन्न अथवा प्रीतिदायक होकर तू अपने संरक्षणों से अर्थात् रक्षाओं के साथ हमारी पीछे और सामने से रक्षा कर।

भावार्थ–सोम उदर में प्रविष्ट होकर शरीर का पोषण करने वाला होने

से अन्नरूप ही है। वह हमें प्रतिदिन प्राप्त हो और सब ओर से हमारी रक्षा करे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी– वयोधाः = वयः दधाति। वयम् + धा + क्विप्। **स्वर्वित्** = स्वः वेत्ति। स्वर् + विद् + क्विप्। **विश** = विश् धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **पाहि** = पा धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष।

०००

२३. यम (अन्त्येष्टि) सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १४**

ऋषि-वैवस्वतमनु देवता-यम एवं पितर **छन्द-१-१२ में त्रिष्टुप्, १३, १४, १६, में अनुष्टुप्, १५ में बृहती।**

प॒रे॒यि॒वांसं॑ प्र॒वतो॑ म॒हीरनु॑ ब॒हुभ्यः॒ पन्था॑मनुपस्प॒शानम्।
वै॒व॒स्व॒तं सं॒गम॑नं॒ जना॑नां य॒मं राजा॑नं ह॒विषा॑ दुवस्य॥१॥

अन्वय- यमं राजानं हविषा दुवस्य प्रवतः महीः परेयिवांसं अनु बहुभ्यः पन्थां अनुपस्पशानम् वैवस्वतं जनानां संगमनम्।

शब्दार्थ – यमं राजानं = पितरों के राजा यम की। **हविषा** = हवि आदि के द्वारा। **दुवस्य** = उपासना करो। **प्रवतः** = यम उत्तम पुण्यमय कर्म करने वालों को। **महीः** = सुखद स्थान में। **परेयिवांसं** = ले जाने वाला। **बहुभ्यः** = बहुतों के। **पन्थां अनुपस्पशानम्** = हितार्थ योग्य मार्ग के द्रष्टा हैं॥ **वैवस्वतम्** = विवस्वान् के पुत्र यम के पास ही। **जनानां** = मनुष्यों को। **संगमनम्** = जाना पड़ता है।

अनुवाद – हे यजमान! तुम पितरों के राजा यम की हवि आदि के द्वारा उपासना करो। यम उत्तम पुण्यमय कर्म करने वालों को सुखद स्थान में ले जाने वाला, और बहुतों के हितार्थ योग्य मार्ग के द्रष्टा हैं, विवस्वान् के पुत्र यम के पास ही मनुष्यों को जाना पड़ता है।

भावार्थ – हे यजमान ! तुम यम की हवि आदि के द्वारा उपासना करो।

पितरों के राजा यम उत्तम पुण्यमय कर्म करने वालों को सुखद स्थान में ले जाने वाला, और बहुतों के हितार्थ योग्य मार्ग के द्रष्टा हैं, उस यम के पास ही मनुष्यों को जाना पड़ता है।

टिप्पणी व्याकरण - पन्थाम् - पथिन्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन। **प्रवतः** - प्र + वतुत् = प्रवत्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। **वैवस्वतम्** = विवस्वत् + अण् = वैवस्वत। **अनुपस्पशानम्** = अनु + स्पश् + कानच् = अनुपस्पशान्। **दुवस्य** = वैदिक 'दुवस्' धातु, मध्यमपुरुष एकवचन।

य॒मो नो॑ गा॒तुं प्र॑थ॒मो विवे॑द॒ नैषा गव्यू॑ति॒रपभर्त॒वा उ॑।
यत्रा॑ न॒ः पूर्वे॑ पि॒तरः प॒रेयु॒रेना जज्ञा॒नाः प॒थ्या॒३॒' अनु स्वाः ॥२॥

अन्वय-प्रथमः यमः नः गातुं विवेद एषा गव्यूतिः अपभर्तवा न उ, पूर्वे यत्र नः पितरः परेयुः एना स्वाः पथ्याः यज्ञानाः अनु आ।

शब्दार्थ- प्रथमः = सबसे मुख्य। **यमः** = यम। **नः** = हमारे। **गातुं** = पाप पुण्य को। **विवेद** = जानता है। **एषा** = उसका। **गव्यूतिः** = वह मार्ग। **अपभर्तवा न उ** = बदल नहीं सकता। **पूर्वे** = पहले। **यत्र नः** = जिस मार्ग से हमारे। **पितरः** = पूर्वज। **परेयुः** = गये हैं। **एना** = उसी मार्ग से। **स्वाः** = अपने कर्मों के अनुसार। **पथ्याः अनु** = हम सब जायेंगे।

अनुवाद - सबसे मुख्य यम हमारे पाप पुण्य को जानता है; उसका वह मार्ग-नियम कोई बदल नहीं सकता। अर्थात् मार्ग का विनाश नहीं कर सकता। पहले जिस मार्ग से हमारे पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से अपने-अपने कर्मानुसार हम सब जायेंगे।

भावार्थ- सबसे प्रमुख यम हमारे शुभ अशुभ कर्मों को जानता है। यम के इस मार्ग का कोई निश्चय ही अपहरण नहीं कर सकता। जिस मार्ग पर हमारे पूर्वज, पितृगण गये हैं, उसी मार्ग से उत्पन्न होने वाले हम प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार जायेंगे।

टिप्पणी व्याकरण- विवेद - विद् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अपभर्तवै** - अप + भृ + तवै (तुमुन् के अर्थ में वैदिक 'तवै' प्रत्यय) अथवा अप + हृ + तवै। 'हृ' को 'भ' आदेश। **परेयुः** - परा + इ धातु लिट्लकार,

प्रथमपुरुष, बहुवचन। **एना** - 'एतेन' का वैदिक रूप। **जज्ञानाः** - 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से 'कानच्' प्रत्यय। **पथ्याः** - पथि साधु। पथिन् + यत् = पथ्य।

मात॑ली क॒व्यैर्य॒मो अङ्गि॑रोभि॒ र्बृह॒स्पति॒र्ऋक्व॑भिर्वावृधा॒नः ।
याँश्च॑ दे॒वा वा॑वृ॒धुर्ये च॑ दे॒वान् त्स्वाहा॒न्ये स्व॒धया॒न्ये म॑दन्ति ॥३॥

अन्वय - मातली कव्यैः यमः अङ्गिरोभिः बृहस्पतिः ऋक्वभिः वावृधानः देवाः यान् च वावृधुः ये च देवान् अन्ये स्वाहा अन्ये स्वधया मदन्ति॥

शब्दार्थ - **मातली** = इन्द्र देवता। **कव्यैः** = कव्यभुक् पितरों की सहायता से। **यमः** = यम। **अङ्गिरोभिः** = अंगिरसादि पितरों की सहायता से। **बृहस्पतिः** = बृहस्पति। **ऋक्वभिः** = ऋक्वदादि पितरों की सहायता से। **वावृधानः** = उत्कर्ष पाते हैं। **देवाः** = देव। **यान्** = जिनको। **वावृधुः** = उन्नत करते हैं। **ये देवान्** = जो देवों को बढ़ाते हैं। **अन्ये** = कोई। **स्वाहा** = स्वाहा के द्वारा। **अन्ये स्वधया** = कोई स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

अनुवाद - मातलि नामक सारथि वाले इन्द्र देवता कव्यभुक् पितरों की सहायता से यम अंगिरसादि पितरों की सहायता से और बृहस्पति, ऋक्वदादि पितरों की सहायता से उत्कर्ष पाते हैं। देव जिनको उन्नत करते हैं और जो देवों को बढ़ाते हैं, उनमें से कोई स्वाहा के द्वारा और कोई स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ - इन्द्र देवता कव्य नाम पितरों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, यम अङ्गिरा नामक पितरों से और बृहस्पति ऋक्वदादि पितरों की सहायता से उत्कर्ष पाते हैं। देव जिनको उन्नत करते हैं और जो देवों को बढ़ाते हैं, उनमें से कोई स्वाहा के द्वारा और दूसरे अर्थात् पितर स्वधा के द्वारा प्रसन्न होते हैं।

टिप्पणी - कव्य, अङ्गिरस् और ऋक्व पितरों के भेद हैं। इनमें कव्य का सम्बन्ध इन्द्र के साथ, अङ्गिरस् का सम्बन्ध यम के साथ और ऋक्व का सम्बन्ध बृहस्पति के साथ समझा जाता है। ऋक्व पुरोहितों का एक वर्ग भी कहलाता है। ऋक् + वन् = ऋक्वन्। वैदिक कर्मकाण्डों के अनुसार देवताओं को हवि स्वाहा के द्वारा दी जाती है, और पितरों के लिये स्वधा के द्वारा दिया जाता है। (स्वधा = पितरों का पिण्डदान)

व्याकरण - **वावृधानः** = वृध् + कानच्। **स्वाहा** = स्वाहा, तृतीया का

एकवचन। **वैदिक रूप स्वधया** = स्वधा, तृतीया का एकवचन। **मदन्ति** = मद् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व॥४॥

अन्वय - यम अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः इमं प्रस्तरं आसीद कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आ वहन्तु राजन् एना हविषा मादयस्व।

शब्दार्थ - **यम** = यम। **अङ्गिरोभि** = अंगिरादि। **पितृभिः** = पितरों के साथ। **संविदानः** = मिलकर। **इमं** = इस। **प्रस्तरं** = यज्ञ में। **आसीद** = आकर बैठो। **कविशस्ताः** = कवियों के द्वारा (विद्वान् लोगों के)। **मन्त्राः** = मन्त्र तुझे। **आवहन्तु** = बुलावें (आवाहन करें)। **राजन्** = राजा यम। **एना** = इन। **हविषा** = हवि से संतुष्ट होकर। **मादयस्व** = हमें प्रसन्न कर।

अनुवाद - हे यम ! अंगिरादि पितरों के साथ तुम इस श्रेष्ठ यज्ञ में आकर बैठो। कवियों (विद्वान् लोगों) के मन्त्र तुझे बुलावें; हे राजा यम ! इस हवि से सन्तुष्ट होकर तुम हमें प्रसन्न करो।

भावार्थ - हे यम ! अङ्गिरा नाम के इन पितरों के साथ एकमत होता हुआ इस विस्तृत यज्ञ विशेष में बिछे हुये आसन पर आकर बैठो। क्योंकि कवियों अर्थात् विद्वान् लोगों के मन्त्र तुम्हारा आवाहन करें। इसलिए हे राजन् यम! इस हवि के द्वारा प्रसन्न होकर तुम यजमानों को हर्षित करो।

व्याकरण - **प्रस्तरम्** - प्र + स्तृ + अच् = प्रस्तर। **संविदानः** - सम् + विद् + शानच् + संविदान। **मन्त्रा** :- मन् + ष्ट्रन् = मन्त्रः। **एना** - इदम् या इतद्, तृतीया विभक्ति, एकवचन वैदिक रूप। **मादयस्व** - णिजन्त 'मद्' धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥ ५॥

अन्वय - यम वैरूपैः यज्ञियेभिः अङ्गिरोभिः आ गहि इह मादयस्व यः ते पिता विवस्वन्तं हुवे अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि निषद्य आ)

शब्दार्थ - **यम** = हे यम! **वैरूपैः** = विविध रूप धारण करने वाले। **यज्ञियेभिः** = पूजा के योग्य। **अङ्गिरोभिः** = अंगिरों के साथ। **आगहि** = तुम आओ। **इह** = इस यज्ञ में। **मादयस्व** = यजमान को सन्तुष्ट कर। **यः ते पिता** = जो तुम्हारे पिता। **विवस्वन्तं** = विवस्वान्। **हुवे** = बुलाता हूँ। **अस्मिन् यज्ञे** = इस यज्ञ में। **बर्हिषि** = कुशासन पर। **निषद्य आ** = बैठकर।

अनुवाद - हे यम ! विविध रूप धारण करने वाले पूजा के योग्य अंगिरों के साथ तुम आओ और इस यज्ञ में सम्मान करने वाले यजमानों को सन्तुष्ट करो। जो तुम्हारे पिता विवस्वान् हैं उनको मैं यज्ञ में बुलाता हूँ; इस यज्ञ में वह कुशासन पर बैठकर हमें सन्तुष्ट करें।

भावार्थ - हे यम ! अनेक रूप धारण करने वाले यज्ञ के योग्य अंगिरा नामक पितरों के साथ इस यज्ञ में आओ और आकर यजमानों को सन्तुष्ट करो। जो विवस्वान् तुम्हारे पिता हैं, इस यज्ञ में उनका मैं आवाहन करता हूँ। वे बिछे हुये कुशासन पर बैठकर यजमानों को प्रसन्न करें।

व्याकरण - **गहि** - 'गम्' धातु के लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन का वैदिक रूप। **वैरूपै**- विरूपस्य भावः अर्थ में विरूप + अण् = वैरूप। **विवस्वन्तम्** = वि + वस् + विच् + मतुप्। **हुवे** - ह्वे धातु, लट्लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन, वैदिक रूप। **निषद्य** - नि+सद् + क्तवा (ल्यप्)

अङ्गि॑रसो नः पि॒तरो॒ नव॑ग्वा॒ अथ॑र्वाणो॒ भृग॑वः सोम्यासः॑।
तेषां॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिया॑ना॒मपि॑, भ॒द्रे सौ॑म॒नसे स्या॑म॥ ६॥

अन्वय - अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः नः पितरः नवग्वाः सोम्यासः तेषां यज्ञियानां सुमतौ वयं अपि भद्रे सौमनसे स्याम।

शब्दार्थ - **अङ्गिरसः** = अंगिरा। **अथर्वाणः** = अथर्वा। **भृगवः** = भृगु नाम के। **नः** = हमारे। **पितरः** = पितर। **नवग्वाः** = नवीन गमन वाले (अभी ही आये हैं)। **सोम्यासः** = सोमपान के अधिकारी। **तेषां** = उन। **यज्ञियानाम्** = यज्ञ के योग्य पितरों का। **सुमतौ वयं** = अनुग्रह हमें प्राप्त होवे। **भद्रे** = कल्याणमार्गी। **सौमनसे** = प्रसन्नता प्राप्त कर। **स्याम** = बनें।

अनुवाद - अङ्गिरा, अथर्वा और भृग्वादि हमारे पितर अभी ही आये हैं,

और वे सोमपान के अधिकारी हैं। उन यज्ञ के योग्य पितरों का अनुग्रह हमें प्राप्त होवे; और हम उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर कल्याणमार्गी बनें।

भावार्थ - अङ्गिरा नाम के, अथर्वा नाम के और भृगु नाम के हमारे पितर अभी ही आये हैं, और वे सोम के अधिकारी हैं। उन पितरों का अनुग्रह हमें प्राप्त हो और हम उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर कल्याण के भागी बनें।

व्याकरण - **नवग्वाः** - नव + गम् + औणादिक ड्वन (व) प्रत्यय 'टि' का, 'गम्' के 'अम्' का लोप होने पर = नवग्व। **सोम्यासः** - सोमम् अर्हति अर्थ में सोम + यत् = सोम्य। प्रथमा के बहुवचन में वैदिक रूप। लोक में 'सोम्याः' रूप होगा। **सौमनसे** - 'शोभनं मनः = सुमनस्। सुमनसः भावः अर्थ में सुमनस् + अण्।'

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥ ७॥

अन्वय - यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः पूर्वेभिः पथिभिः प्रेहि प्रेहि स्वधया मदन्ता राजाना यमं वरुणं च देवं उभा पश्यासि।

शब्दार्थ - **यत्र** = जहाँ। **नः** = हमारे। **पूर्वे** = पूर्व। **पितरः** = पितर। **परेयुः** = जीवन पार कर गये हैं। **पूर्वेभिः** = प्राचीन पितामह आदि के। **पथिभिः** = मार्गों से। **प्रेहि** = तुम भी जाओ। **स्वधया** = स्वधाकार (अमृतान्न से प्रसन्न)। **मदन्ता** = तृप्त होते हुए। **राजाना यमं** = राजा यम। **वरुणम्** = वरुण। **च** = और। **देव** = देवा। **उभा पश्यासि** = इन दोनों को देखो।

अनुवाद - हे पिता! जहाँ हमारे पूर्व पितर (पितामह आदि) जीवन पार कर गये हैं, उन प्राचीन मार्गों से तुम भी जाओ। स्वधाकार- अमृतान्न से प्रसन्न एवं तृप्त हुए राजा यम और वरुणदेव इन दोनों को देखो।

भावार्थ - हे पिता! जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गये हैं, उन प्राचीन मार्गों से तुम भी जाओ। वहां जाकर तुम पितरों के योग्य भोज्य पदार्थों से तृप्त होते हुए राजा यम और वरुण देव इन दोनों को देखो।

टिप्पणी - यम और वरुण को राजा कहा गया है। अवेस्ता में भी इनको

राजा कहा गया है। पौराणिक साहित्य में यम को राजा के रूप में (यमराज) से स्मरण किया जाता है। **व्याकरण** – **पूर्व्येभिः** – पूर्व भवैः अर्थ में 'यत्' प्रत्यय। पूर्व + य = पूर्व्य। तृतीया का बहुवचन वैदिक रूप। **प्रेहि** – प्र + इ, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **परेयुः** – परा + इण् गतौ धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **मदन्ता** – 'मदि हर्षे' धातु 'शतृ' प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति, द्विवचन। वैदिक रूप। **पश्यासि** – दृश (पश्य्) धातु, लोट्लकार मध्यमपुरुष, एकवचन।

सं ग॑च्छस्व पि॒तृभि॒ः सं य॒मेने॑ष्टापू॒र्तेन॑ पर॒मे व्यो॑मन्।
हि॒त्वाया॑व॒द्यं पुन॒रस्त॒मेहि॒ सं ग॑च्छस्व त॒न्वा॑ सु॒वर्चाः॑॥ ८॥

अन्वय – परमे व्योमन् पितृभिः सं गच्छस्व यमेन इष्टापूर्तेन सं अवद्यं हित्वाय पुनः अस्तम् एहि सुवर्चाः तन्वा सं गच्छस्व।

शब्दार्थ – **परमे** = श्रेष्ठ। **व्योमन्** = स्वर्ग में। **पितृभिः** = पितरों के साथ। **संगच्छस्व** = मिलो। **यमेन** = वैसे ही। **इष्टापूर्तेन सं** = अपने यज्ञ, दान आदि पुण्य कर्म के फल से भी मिलो। **अवद्यं** = पाप को। **हित्वाय** = छोड़कर। **पुनः** = फिर। **अस्तम् एहि** = घर में प्रवेश करो। **सुवर्चाः** = तेजस्वी। **तन्वा** = शरीर को। **सं गच्छस्व** = प्राप्त करो।

अनुवाद – हे पिता ! श्रेष्ठ स्वर्ग में अपने पितरों के साथ मिलो वैसे ही अपने यज्ञ, दान आदि पुण्य कर्म के फल से भी मिलो; पाप को छोड़कर फिर गृह में प्रवेश करो; और तेजस्वी शरीर को प्राप्त करो।

भावार्थ – हे मेरे पिता! उस श्रेष्ठ स्वर्ग (पितृलोक) में अपने पूर्वजों से मिलो, और श्रुति-स्मृति विहित दान आदि धर्म के अनुष्ठानभूत फलों से मिलो। पापाचरण को छोड़कर फिर गृह में प्रवेश करो; और तेजस्वी शरीर को प्राप्त करो॥ **टिप्पणी व्याकरण**- **इष्टापूर्तेन** – इष्टं च पूर्तं च तयोः समाहारः। द्वन्द्व समास। इष्ट के अ को दीर्घ। **संगच्छस्व** – सम् + गम्, मध्यमपुरुष, एकवचन, सम् के योग में गम् धातु में आत्मने पद। व्योमन् – सप्तमी विभक्ति का एकवचन। वैदिक विभक्ति का लोप। **सुवर्चाः** – शोभनं वर्चः यस्य तत्। तृतीया का एकवचन। वैदिक विभक्ति का लोप। **अस्तम्** – अस्यते क्षिप्यते सर्ववस्तु जातमस्मिन् अर्थ में अस् + त = अस्त। घर।

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒ता॒तो ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन्।
अहो॑भि॒रद्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै॥ ९॥

अन्वय - अतः अप इत वि इत विसर्पत च पितरः अस्मै एतं लोकं आ अक्रन् अहोभिः अक्तुभिः अद्भिः व्यक्तं यमः अस्मै अवसानं ददाति।

शब्दार्थ - **अतः अप इत** = यहाँ से चले जाओ। **वि इत** = हट-जाओ। **विसर्पत** = दूर चले जाओ। **पितरः** = पितरों ने। **अस्मै** = इस मृत मनुष्य के लिए। **अक्रन्** = बनाया है। **अहोभिः अक्तुभिः** = यह स्थान दिन-रात। **अद्भिः** = जल से। **व्यक्तम्** = युक्त है। **यमः** = यम ने। **अस्मै** = इस। **अवसानम्** = स्थान को। **ददाति** = मृत मनुष्य के लिए दिया है।

अनुवाद - हे दुष्ट पिशाचो! यहाँ से चले जाओ; हट जाओ; दूर चले जाओ; पितरों ने इस मृत मनुष्य के लिए यह स्थान आक्रमित किया है; यह स्थान दिन-रात और जल से युक्त है; यम ने इस स्थान को मृत मनुष्य के लिए दिया है।

भावार्थ - हे श्मशान में रहने वाले पिशाचो! इस स्थान से हट जाओ, जहां से दूर चले जाओ। पितरों ने इस मृत यजमान के लिए इस लोक को अर्थात् दहन स्थान को बनाया है। यह स्थान दिन-रात और जल से युक्त है; यम ने यह स्थान मृत मनुष्यों के लिये बनाया है।

टिप्पणी व्याकरण- अक्रन् - 'कृ धातु' लुङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप। **व्यक्तम्** = वि + अञ्ज् + क्त। **अक्तुभिः** - अनक्ति सिञ्चति अवश्या येन पृथिवीम् इस अर्थ में अञ्ज्+क्तु। **अवसानम्** - अव - षो अन्तकर्मणि + ल्युट् (अन)

अति॑ द्र॒व सार॒मेयौ श्वानौ॑ चतुर॒क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था।
अथा॑ पि॒तृन् त्सु॑वि॒दत्राँ॒, उपे॑हि य॒मेन॒ ये स॑ध॒माद॒ं मद॑न्ति॥ १०॥

अन्वय - चतुरक्षौ शबलौ सारमेयौ श्वानौ साधुना पथा अति द्रव। अथ ये यमेन सधमादं मदन्ति सुविदत्रान् पितृन् उपेहि।

शब्दार्थ - **चतुरक्षौ** = चार आँखों वाले। **शबलौ** = विचित्र वर्ण वाले।

सारमेयौ = सरमा के पुत्र। **श्वानौ** = दो कुत्ते। **साधुना पथा** = उत्तम मार्ग से। **अतिद्रव** = शीघ्र चले जाओ (पार करा दो)। **ये** = पितर। **यमेन** = यम के साथ। **सधमादम्** = सहर्ष। **मदन्ति** = आनन्द का अनुभव करते हैं। **सुविदत्रान्** = ज्ञानवान्। **पितॄन्** = पितरों को। **उपेहि** = प्राप्त करो।

अनुवाद - हे मनुष्य ! चार आँखों वाले और विचित्र वर्ण वाले सरमा (देवताओं की कुतिया) के पुत्र थे जो दो कुत्ते हैं, इनके पास से उत्तम मार्ग से तुम शीघ्र चले जाओ। अनन्तर जो पितर यम के साथ सदा आनन्द का अनुभ्नव करते हैं ; उन ज्ञानवान् पितरों को प्राप्त करो।

भावार्थ - हे मनुष्य ! तुम उत्तम मार्ग से चार आँखों वाले, चितकबरे थे जो दो कुत्ते हैं, इनके पास से शीघ्र चले जाओ। इन सुन्दर मार्ग से जाने के बाद तुम अच्छे ज्ञान वाले पितरों को प्राप्त करो, जो यम के साथ सहर्ष आनन्द को प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण- चतुरक्षौ - चत्वारि अक्षीणि ययोस्तौ। चतुर + अक्षि + अच् = चतुरक्ष। **सारमेयौ** = **सरमायाः** अपत्यम् अर्थ में **सरमा** + **ठक्** (एय) = सारमेय। द्रव - 'द्रु' धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **सुविदत्रान्** - विद् + अत्रच् = विदत्र। शोभनं विदत्रं यस्व स सुविदत्रः। **साधमादम्** - मदी हर्षे + घञ् = माद। **मादेन सह** = सधमादम् 'ह' को 'ध' आदेश।

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतु॒रक्षौ प॑थि॒रक्षी॑ नृ॒चक्ष॑सौ।
ताभ्या॑मेनं॒ परि॑ राजन् त्स्व॒स्ति चा॑स्मा अनमी॒वं च॑ धेहि॥ ११ ॥

अन्वय - यम ते रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ यौ श्वानौ ताभ्यां एनं परिदेहि राजन् अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि।

शब्दार्थ - यम = यम! **ते** = तुम्हारे (यम)। **रक्षितारौ** = गृह के रक्षक। **चतुरक्षौ** = चार आँखों वाले। **पथिरक्षी** = मार्ग के रक्षक। **नृचक्षसौ** = लोगों के द्वारा प्रसिद्ध। **यौ श्वानौ** = जो दो श्वान हैं। **ताभ्याम्** = उनसे। **एनम्** = इस मृत व्यक्ति को। **परिदेहि** = रक्षा करो। **राजन्** = राजा। **अस्मै** = इसे। **स्वस्ति** = कल्याणभागी। **अनमीवम्** = नीरोगी। **धेहि** = करो।

अनुवाद - हे यम ! तुम्हारे गृह के रक्षक चार आँखों वाले, मार्ग के रक्षक, और लोगों के द्वारा प्रसिद्ध जो दो कुत्ते हैं, उनसे इस मृत व्यक्ति की रक्षा करो। हे राजन् ! इसे कल्याणभागी और नीरोगी करो।

भावार्थ - हे राजन् यम ! जो तुम्हारे चार आँखों वाले, मार्ग की रक्षा करने वाले और लोगों के द्वारा प्रसिद्ध यम के घर की रक्षा करने वाले दो कुत्ते हैं, हे यम ! उन कुत्तों से इस प्रेत मनुष्य की रक्षा करो और प्रेत को कल्याण एवं नीरोगता प्रदान करो।

टिप्पणी व्याकरण- पथिरक्षी - पथिन् + रक्ष् + इनि = पथिरक्षिन्। द्वितीया का द्विवचन। **नृचक्षसौ** - नरः मनुष्याः चक्षते यौ तौ। नृ + चक्ष् + असुन् = नृचक्षस्। **अनमीवम्** = अमीवायाः अभावः।

उ॒रू॒ण॒साव॑सु॒तृपा॑ उदु॒म्ब॒लौ य॒मस्य॑ दू॒तौ च॑रतो॒, जनाँ॒ अनु॑।
ताव॒स्मभ्यं॑ दृ॒शये॒ सूर्या॑य॒ पुन॑र्दाता॒मसु॑म॒द्येह भ॒द्रम्॥ १२ ॥

अन्वय - यमस्य दूतौ उरूणसौ असुतृपा उदुम्बलौ जनान् अनुचरतः तौ अस्मभ्यं सूर्याय दृशये इह अद्य भद्रं असुं पुनः दाताम्।

शब्दार्थ - **यमस्य** = यमके। **दूतौ** = दूंत। **उरूणसौ** = लम्बी नाकों वाले। **असुतृपा** = प्राणिजीवी (प्राणों से तृप्त होने वाले)। **उदुम्बलौ** = अत्यंत बलशाली। **जनान्** = दो श्वान। **अनुचरतः** = मनुष्यों को लक्ष्य करके विचरण करते हैं। **तौ** = वे। **अस्मभ्यम्** = हमें। **सूर्याय** = सूर्य के। **दृशये** = दर्शन के लिये। **इह** = यहाँ। **अद्य** = आज। **भद्रम्** = कल्याणकारक। **असुं पुनः** = उचित प्राण। **दाताम्** = प्रदान करें।

अनुवाद - यम के दूत लम्बी नाकों वाले, प्राणिजीवी और अत्यंत बलशाली ऐसे दो श्वान मनुष्यों को लक्ष्य करके विचरण करते है; वे हमें सूर्य के दर्शन के लिए यहां आज कल्याणकारक उचित प्राण दें।

भावार्थ - बड़ी नासिका वाले प्राणों से तृप्त होने वाले, महान् बलशाली यम के वे दोनों कुत्ते मनुष्यों के पीछे-पीछे सब जगह घूमते हैं। वे दोनों सूर्य को देखने के लिए, अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त करने के लिए, आज इस कर्म में हमारे लिये पुनः कल्याणकारी प्राणों को प्रदान करें।

टिप्पणी व्याकरण – **उरूणसौ** – उरू प्रबले नासिके ययोः तौ। 'नासिका' को 'नस' आदेश। **असुतृपौ** – असुभिः तृप्यन्तौ। असु + तृप् + क्विप्। प्रथमा का द्विवचन। **उदुम्बलौ** – उरू बलं ययोः तौ। 'र्' को 'द्' आदेश और 'मुम्' का आगम छान्दस। **दृशये** – दृश् + कि = दृशि। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **दाताम्** – 'दा' धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन। वैदिक रूप, लोक में 'दत्ताम्' बनता है।

य॒माय॒ सोमं॑ सुनुत य॒माय॑ जुहुता ह॒विः।
य॒मं ह॑ य॒ज्ञो ग॑च्छत्य॒ग्निदू॑तो॒ अर॑ंकृतः॥ १३॥

अन्वय – यमाय सोमं सुनृत यमाय हविः जुहुत अग्निदूतः अरंकृतः यज्ञः यमं ह गच्छति।

शब्दार्थ – **यमाय** = यम के लिये। **सोमं** = सोम को। **सुनुत** = निचोडो। **यमाय** = यम के लिए। **हविः** = हवि का। **जुहूत** = हवन करो। **अग्निदूतः** = जिसके अग्नि दूत हैं। **अरंकृतः** = अनेक द्रव्यों से सुशोभित किया है। **यज्ञः** = वह यज्ञ है। **यमं** = यम की ओर। **गच्छति** = जाता है।

अनुवाद – हे ऋत्विजो ! यम के लिए सोम को निचोडो, और यम के लिये हवि का हवण करो। जिसके अग्नि दूत हैं और जिसे अनेक द्रव्यों से सुशोभित किया है, वह यज्ञ यम की ओर जाता है।

भावार्थ – हे ऋत्विजो ! यम देवता के लिये सोमलता को कूटकर उसका रस निकालो तथा यम के लिये हवि से हवन करो, अर्थात् आहुतियों को हवन में डालो। अग्नि रूप दूत वाला और नाना प्रकार के द्रव्यों से अलंकृत यज्ञ यम को ही निश्चय से प्राप्त होता है।

टिप्पणी व्याकरण– **सुनुत** – 'षुञ् अभिषवे' धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **अरंकृत** – अरम् + कृ + क्त। यह वैदिक रूप है, जिसका रूपान्तर संस्कृत में 'अलंकृत' है।

य॒माय॑ घृतव॑द्ध॒विर्जु॒होत॒ प्र च॑ तिष्ठत।
स नो॑ दे॒वेष्वा य॑मद् दी॒र्घमायु॒ः प्र जी॒वसे॑॥ १४॥

अन्वय - यमाय घृतवत् हविः जुहोत प्रतिष्ठत च देवेषु सः नः जीवसे दीर्घायुः प्र आ यमद्।

शब्दार्थ - **यमाय** = यम के लिए। **घृतवत्** = घी से युक्त। **हविः** = हवि का। **जुहोत** = हवन करो। **प्रतिष्ठत** = यम की स्तुति। **देवेषु** = देवों के बीच। **सः** = यम। **नः** = हमारे। **जीवसे** = दीर्घ जीवन के लिए। **दीर्घायुः** = दीर्घायुष्य। **प्र आ यमद्** = प्रदान करे।

अनुवाद - हे ऋत्विजो। यम के लिए घृतयुक्त हवि का हवन करो और यम की स्तुति एवं उपासना करो। देवों के बीच यम हमारे दीर्घ जीवन के लिये दीर्घायुष्य प्रदान करें।

भावार्थ - हे ऋत्विजो ! तुम यम देवता के लिये घी से युक्त हवि से हवन करो और उस यमराज की उपासना करो। देवताओं के मध्य में वह यम दीर्घ जीवन के लिए हमें दीर्घ आयु को प्रदान करें।

टिप्पणी व्याकरण- प्रतिष्ठत् - प्र + स्था, लोट्लकार, मध्यमपुरुष बहुवचन। **यमत्** - 'यम' धातु, लोट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **प्रजीवसे** - प्र + जीव् + असे। 'तुमुन्' के अर्थ में 'असे' प्रत्यय हुआ है।

य॒माय॒ मधु॑मत्तमं॒ राज्ञे॑ ह॒व्यं जु॑होतन।
इ॒दं नम॒ ऋषि॑भ्यः पूर्व॒जेभ्य॒ः पूर्वे॑भ्यः पथि॒कृद्भ्य॑ः॥ १५॥

अन्वय - राज्ञे यमाय मधुमत्तमं हव्यं जुहोतन। पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ऋषिभ्यः इदं नमः।

शब्दार्थ - **राज्ञे** = राजा। **यमाय** = यम के लिए। **मधुमत्तमम्** = अत्यंत मधुर। **हव्यं** = हवि। **जुहोतन** = अर्पण करो। **पूर्वजेभ्यः** = पूर्वज। **पूर्वेभ्यः** = पूर्व। **पथिकृद्भ्यः** = मार्गदर्शक। **ऋषिभ्यः** = ऋषियों के लिए। **इदम्** = यह। **नमः** = नमस्कार है।

अनुवाद - हे ऋत्विजो ! राजा यम के लिये अत्यंत मधुर हवि अर्पण करो। पूर्वज और पूर्व मार्गदर्शक ऋषियों के लिये यह नमस्कार है।

भावार्थ - हे ऋत्विजो ! राजा यम के लिये अतिशय मधुर हवि का हवन करो। सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले और हमसे पहले होने वाले शोभन मार्ग का दर्शन कराने वाले ऋषियों के लिये हमारा नमस्कार है।

टिप्पणी व्याकरण सम्बन्धि- मधुमत्तमम्- मधु + मतुप् = मधुमत्। **अतिशयेन मधुमत्** - मधुमत् + तमप्। **हव्यम्** - हव् + यत् = हव्य। **जुहोतन** - 'हु' धातु लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप। **पथिकृद्भ्यः** - पथिन् + कृ + क्विप् = पथिकृत्।

त्रिक॑द्रुकेभिः पतति॒ षळु॒र्वीरेक॒मिद्बृ॒हत्।
त्रि॒ष्टुब्गा॑य॒त्री छन्दां॑सि॒ सर्वा॒ ता य॒म आहि॑ता ॥ १६ ॥

अन्वय - त्रिकद्रुकेभिः षट् उर्वीः एकं इत् बृहत् पतति। त्रिष्टुप्, गायत्री, छन्दांसि ता सर्वा यमे आहिता।

शब्दार्थ - **त्रिकद्रुकेभिः** = यमराज त्रिकद्रुक नामक यज्ञ में (ज्योति गौ और आयु) संरक्षण के लिये प्राप्त होने। **षट् उर्वीः** = यम छः स्थानों में (द्युलोक, भूलोक, जल औषधियाँ, ऋक् और सूनृत) रहता है। **एकम्** = एक। **इत् बृहत् पतति** = संरक्षण के लिये प्राप्त होवे। **त्रिष्टुप्** = त्रिष्टुप्। **गायत्री** = गायत्री। **छन्दांसि** = सब छन्द। **ता सर्वा** = वे सब। **यमे** = यम में। **आहिता** = स्थापित है।

अनुवाद - यमराज तीन कद्रुकों (ज्योति, गौ, और आयु) नामक यज्ञ में संरक्षण के लिये प्राप्त होवें; यम छः स्थानों में (द्युलोक, भूलोक, जल, औषधियाँ, ऋक् और सुनृत) रहता है; यह एक ही के संरक्षण के लिये प्राप्त होवें। त्रिष्टुप्, गायत्री और अन्य सब छन्द- वे सब यम में स्थापित हैं।

भावार्थ - वह यम त्रिकद्रुक, अर्थात् ज्योति, आयु और गौ नामक यज्ञ में रक्षा करता है। वह यम छः भूमियों द्यौ, पृथिवी, आपः, ओषधयः, ऋक् और सूनृता तथा एकमात्र इस विराट् संसार की रक्षा करता है। त्रिष्टुप्, गायत्री आदि सभी छन्द उस यम में निहित हैं अर्थात् यजमान और ऋत्विज् इन छन्दों से यम की स्तुति करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण - त्रिकद्रुकेभिः - त्रि + क + द्रु + कन् (क) =

त्रिकद्रुक। तृतीया के बहुवचन में वैदिक रूप। यहां द्वितीया के अर्थ में वैदिक व्यत्यय से तृतीया का प्रयोग हुआ है। **आहिता** - आ + धा + क्त = आहिता।

सर्वा, ता, आहिता में नपुंसकलिंग में प्रथमा का बहुवचन है और ये वैदिक रूप है। लोक में सर्वाणि, तानि और आहितानि रूप बनेंगे।

○○○

२८. पितृ सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १५**

ऋषि-शंख देवता-पितर छन्द :- त्रिष्टुप्, ११ वें में जगती

उदी॑रता॒मव॑र॒ उत् परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑।
असुं॒ य ई॒युर॑वृ॒का ऋ॑त॒ज्ञास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु॥ १ ॥

अन्वय - अवरे उत् उदीरताम्। परासः पितरः उत् मध्यमाः सोम्यासः। ये ऋतज्ञा असुम् ईयुः अवृका ते पितरः हवेषु नः अवन्तु।

शब्दार्थ - **अवरे** = जो पितर पृथिवी पर हैं। **उत्** = वे। **उदीरताम्** = उन्नत स्थान को प्राप्त करें। **परासः** = उत्तम कोटि के। (स्वर्ग में उच्च स्थान पर) **पितरः** = जो पितर हैं। **उत्** = वे वहीं रहें और। **मध्यमाः** = मध्यम कोटि के पितर। **सोम्यासः** = उच्च स्थान को प्राप्त करें। **ये** = जो। **ऋतज्ञा** = यज्ञ को जानने वाले पितर हैं। **असुम्** = प्राणों की। **ईयुः** = रक्षा करने के लिए आये हैं। (और) **अवृका** = हिंसा से रहित हैं। **ते** = वे। **पितरः** = पितर। **हवेषु** = यज्ञ काल में। **नः** = हमारी। **अवन्तु** = रक्षा करें।

अनुवाद - जो पितर पृथिवी पर हैं, वे उन्नत स्थान को प्राप्त करें ; उत्तम कोटि के (स्वर्ग में उच्च स्थान पर) जो पितर हैं वे वहीं रहें। और मध्यम कोटि के पितर उच्च स्थान को प्राप्त करें। जो यज्ञ को जानने वाले पितर हैं वे प्राणों की रक्षा करने के लिए आये हैं और हिंसा से रहित हैं। वे पितर यज्ञकाल में हमारी रक्षा करें।

भावार्थ - पितर तीन प्रकार के हैं- उत्तम, मध्यम और अधम, जो वेदोक्त विधि से कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे उत्तम हैं। स्मार्त्त विधि से कर्मों का अनुष्ठान करने वाले मध्यम हैं। और जो दोनों प्रकार के कर्मों से रहित हैं, वे अधम हैं। इनमें जो अधम कोटि के पितर हैं वे उत्तम (उन्नत) स्थान को प्राप्त करें। जो उत्तम कोटि के स्वर्ग में हैं वे वहीं रहें; और मध्यम कोटि के पितर उच्च स्थान को प्राप्त करें। ये सभी पितर हमारे लिए सौम्य, बुद्धि वाले हों। जो हिंसा से रहित और यज्ञ को जानने वाले पितर हमारे प्राणों की रक्षा करने के लिए आयें हैं। वे पितर यज्ञकाल में हमारी रक्षा करें।

टिप्पणी व्याकरण- ऋतज्ञाः = ऋतं जानन्ति अर्थ में ऋृत + ज्ञा + क = ऋतज्ञ। **ईयुः** - 'इण् गतौ' प्रथमपुरुष का बहुवचन।

इ॒दं पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ अस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ य उप॑रास ई॒युः।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नं सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु ॥ २॥

अन्वय - ये पूर्वासः ये उपरासः ईयुः ये पार्थिवे रजस्य आनिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु पितृभ्यः अद्य इदं नमः अस्तु।

शब्दार्थ - **ये** = जो। **पूर्वासः** = पहले उत्पन्न होकर मृत हुए, (और) **ये** = जो। **उपरासः** = अनन्तर पीछे उत्पन्न होकर। **ईयुः** = पितृलोक को प्राप्त हुये हैं (मरे हैं) **ये** = जो। **पार्थिवे** = पृथिवीलोक में होने वाले। **रजस्य** = रजोगुणात्मक यज्ञ रूप कार्य में। **आनिषत्ता** = आकर पधारे हैं। (और) **ये** = जो। **वा** = अन्य। **नूनम्** = निश्चय से। **सुवृजनासु** = उत्तम धनों से सम्पन्न। **विक्षु** = बांधवों में हैं। **पितृभ्यः** = उन सब पितरों को। **अद्य** = आज। **इदम्** = यह। **नमः** = नमस्कार। **अस्तु** = है।

अनुवाद - जो पहले उत्पन्न होकर मृत हुये, और जो अनन्तर पीछे उत्पन्न होकर पितृलोक को प्राप्त हुये हैं, अर्थात् मरे हैं, जो पृथिवीलोक में होने वाले रजोगुणात्मक यज्ञरूप कार्य में आकर पधारे हैं। और जो अन्य निश्चय से उत्तम धनों से सम्पन्न बांधवों में हैं, उन सब पितरों को आज यह मेरा नमस्कार है।

भावार्थ - जन्म लेने से पहले जो पितामह आदि पूर्वज पितृलोक को प्राप्त हुये थे और जन्म लेने के बाद जो छोटे भाई, पुत्र आदि पितृलोक को

प्राप्त हुये हैं, जो पृथिवी पर राजस कार्य करके उत्तम पदों पर विराजमान हैं और जो उत्तम धनों से सम्पन्न प्रजाओं (बांधवों) में आकर पधारे हैं उन सब पितरों के लिए आज यह मेरा नमस्कार है।

टिप्पणी व्याकरण - उपरासः - उपरि + अस् + अण् = उपरास। **आनिषत्ताः** - 'आनिषण्णाः' के अर्थ में यह वैदिक प्रयोग है। **सुवृजनासु** - 'वृज्यते परित्यज्यते दारिद्रयम् 'अनेक' अर्थ में वृ + ल्युट् (अन) = वृजन। शोभनं वृजनं यासां तासु - सुवृजनासु।

आहं पि॒तॄन् त्सु॑विदत्राँ॑ अवित्सि॒ नपा॑तं च वि॒क्रम॑णं च॒ विष्णोः॑।
ब॒र्हि॒षदो॒ ये स्व॒धया॑ सु॒तस्य॒ भज॑न्त पि॒त्वस्त इ॒हाग॑मिष्ठाः ॥ ३ ॥

अन्वय - अहं सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि। विष्णोः नपातं च विक्रमणं च। ये बर्हिषदः सुतस्य पित्वः स्वधया भजन्त ते इह आगमिष्ठाः।

शब्दार्थ - **अहम्** = मैंने। **सुविदत्रान्** = ज्ञानवान्। **पितॄन्** = पितरों को। **अवित्सि** = पाया है। **विष्णोः** = विष्णु स्वरूप यज्ञ का। **नपातम्** = फल। **च** = और। **विक्रमणं च** = विशेष प्रवृत्ति को भी पाया है। **ये** = जो पितर। **बर्हिषदः** = कुशासन पर बैठकर। **सुतस्य** = उत्तम सोमरस। **पित्त्वः** = अन्न के साथ। **स्वधया** = पुरोड़ाश आदि भाग का। **भजन्त** = सेवन करते हैं। **ते** = वे सब। **इह** = यहाँ। **आगमिष्ठाः** = आये हैं।

अनुवाद - मैंने ज्ञानवान् पितरों को पाया है, विष्णुस्वरूप यज्ञ का फल और विशेष प्रवृत्ति को भी पाया है। जो पितर कुशासन पर बैठकर उत्तम सोमरस अन्न के साथ पुरोड़ाश आदि भाग का सेवन करते हैं। वे सब यहाँ आये हैं।

भावार्थ - मैं यजमान अपनी भक्ति को अच्छी प्रकार जानने वाले पितरों को प्राप्त कर चुका हूँ। मैंने यज्ञ के फल और प्रवृत्ति को भी प्राप्त कर लिया है। जो पितर कुशासन पर बैठकर उत्तम सोमरस अन्न के साथ पुरोड़ाश आदि भाग को ग्रहण करते हैं, वे सब पितर यहां आये हैं।

बर्हि॑षदः पितर ऊ॒त्य१॒र्वा॑गि॒मा वो॑ ह॒व्या च॑कृमा जु॒षध्व॑म्।
त आ ग॒ताव॑सा॒ शंत॑मे॒नाऽथा॑ न॒ः शं योर॑र॒पो द॑धात ॥ ४ ॥

अन्वय - बर्हिषदः पितरः अर्वाक् ऊती वः इमा हव्या चकृम जुषध्वम् ते आगत अथ शन्तमेन अवसा नः शंयोः दधात अरपः।

शब्दार्थ - (हे) **बर्हिषदः** = कुशासन पर बैठने वाले। **पितरः** = पितरो! **अर्वाक्** = अर्वाचीन हमारी आप। **ऊती** = रक्षा कीजिये। **वः** = तुम्हारे लिये। **इमा** = इन। **हव्या** = आहुतियों को। **चकृम** = अर्पण करते हैं। **जुषध्वम्** = इनका सेवन कीजिये। **ते** = वे आप। **आगत** = आइए। **अथ** = इसके बाद। **शन्तमेन** = मंगलप्रद और कल्याणमय। **अवसा** = प्रीति से। **नः** = हमें। **शंयोः** = सुख की प्राप्ति। **दधात** = प्रदान कीजिये। (और हमें) **अरपः** = पाप से दूर करो।

अनुवाद - हे कुशासन पर बैठने वाले पितरो! अर्वाचीन आप हमारी रक्षा कीजिये। तुम्हारे लिये इन आहुतियों को अर्पण करते हैं; इनका सेवन, कीजिये। वे आप। आइए इसके बाद मंगलप्रद और कल्याणमय प्रीति से हमें सुख की प्राप्ति प्रदान कीजिए। और हमें पाप से दूर कीजिए।

भावार्थ - यज्ञ में कुशाओं पर बैठने वाले पितरो! आप हमारी रक्षा कीजिये। हमने आपके लिये हवि द्रव्य तैयार किया है इसका आस्वाद लीजिए। आप आइए और मंगलप्रद, कल्याणमय प्रीति से हमें सुख प्राप्त कराइये, और हमें दुःख रहित करके पाप से दूर कीजिए।

टिप्पणी व्याकरण- शन्तमेन = शम् + तमप् = शन्तम। **शंयोः** = शं च युः च = शंयुः। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = शंयोः।

उप॑हूताः पि॒तरः॑ सो॒म्यासो॑ बर्हि॒ष्ये॑षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑।
त आ ग॑मन्तु त इ॒ह श्रु॑व॒न्त्वधि॑ ब्रुवन्तु॒ ते॑ऽवन्त्व॒स्मान्॥ ५॥

अन्वय- बर्हिष्येषु प्रियेषु निधिषु सोम्यासः पितरः उपहूताः। ते इह आगमन्तु ते अधि श्रवन्तु ब्रुवन्तु ते अस्मान् अवन्तु।

शब्दार्थ - **बर्हिष्येषु** = कुशों के ऊपर। **प्रियेषु** = मनोहर प्रीतिदायक। **निधिषु** = विपुल हविर्द्रव्य रखकर। **सोम्यासः** = सोमरस का उपभोग करने के लिए। **पितरः** = पितरों को। **उपहूताः** = सम्मानपूर्वक बुलाये हैं। **ते** = वे पितर। **इह** = यहाँ। **आगमन्तु** = आवें। **ते** = वे आकर। **श्रवन्तु** = हमारी स्तुतियों

को सुनें। **अधिब्रुवन्तु** = यह यजमान श्रेष्ठ है इस प्रकार बोलें। (और) **ते** = वे। **अस्मान्** = हमारी। **अवन्तु** = रक्षा करें।

अनुवाद - कुशों के ऊपर मनोहर, प्रीतिदायक, विपुल हविर्द्रव्य रखकर, सोमरस का उपभोग करने के लिए पितरों को सम्मानपूर्वक बुलाये हैं। वे पितर यहाँ आवें; वे आकर हमारी स्तुतियों को सुनें, यह यजमान श्रेष्ठ है, इस प्रकार बोलें, और वे हमारी रक्षा करें।

भावार्थ - कुशा आसन पर बैठने वाले मनोहर, प्रिय और निधि सदृश हवियों में सोमरस का उपभोग करने के लिये पितर सम्मानपूर्वक पुकारे गये हैं। वे पितर यहाँ आवें और हमारी स्तुति प्रसन्न मन से सुनें, ये यजमान श्रेष्ठ है, इस प्रकार बोलें और हमारी रक्षा करें।

टिप्पणी व्याकरण - निधिषु - नि + धा + कि (इ) = निधि।

आच्या॒ जानु॑ दक्षिण॒तो नि॒षद्ये॒मं य॒ज्ञम॒भि गृ॑णीत॒ विश्वे॑।
मा हिं॑सिष्ट पितरः॒ केन॑ चिन्नो॒ यद्व॒ आगः॑ पुरु॒षता॒ करा॑म॥ ६ ॥

अन्वय - पितरः विश्वे दक्षिणतः जानु आच्य निषद्य इमं यज्ञं अभिगृणीत। यद् वः पुरुषता आगः कराम केनचित् नः मा हिंसिष्ट।

शब्दार्थ - **पितरः** = (हे) पितरो। **विश्वे** = आप सब लोग। **दक्षिणतः** = दक्षिण की ओर। **जानु** = घुटने। **आच्य** = टेककर। **निषद्य** = बैठकर। **इमम्** = हमारे इस। **यज्ञम्** = यज्ञ की। **अभिगृणीत** = प्रशंसा करो। **यद्** = वैसे ही। **वः** = आपके प्रति। **पुरुषता** = मनुष्य होने के कारण। **आगः** = अपराध होना। **कराम** = सम्भव हैं। **केनचित्** = किसी भी कारण से। **नः** = हमारे उपर। **मा हिंसिष्ट** = हिंसा मत करो।

अनुवाद - हे पितरो! आप सब लोग दक्षिण की ओर घुटने टेककर बैठकर हमारे इस यज्ञ की प्रशंसा करो। वैसे ही आपके प्रति मनुष्य होने के कारण अपराध होना सम्भव है, किसी भी कारण हमारे ऊपर हिंसा मत करो।

भावार्थ - हे पितरो ! आप सब घुटनों को भूमि पर टेककर दक्षिण पार्श्व में बैठकर, हमारे इस यज्ञ की स्तुति करो। अर्थात् आप सब तृप्त होकर प्रशंसा

करो कि यह यज्ञ बहुत उत्तम है। हम आपके प्रति जो कोई भी अपराध करें, हे पितरो! उस किसी भी अपराध के कारण हमारे प्रति हिंसा मत करो, अर्थात् हमारे पर क्रोध नहीं करना।

आसी॑नासो अ॒रु॒णीना॑मु॒पस्थे र॒यिं ध॑त्त दा॒शु॒षे मर्त्या॑य।
पु॒त्रेभ्य॑: पित॒र॒स्तस्य॒ वस्व॒: प्रय॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात ॥ ७॥

अन्वय - पितर अरुणीनां उपस्थे आसीनासः दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त। तस्य पुत्रेभ्यः वस्वः प्रयच्छत ते इह ऊर्जम् दधात।

शब्दार्थ - **पितरः** = (हे) पितरो ! **अरुणीनाम्** = श्रेष्ठ देवों के। **उपस्थे** = समीप वेदि पर। **आसीनासः** = आसीन हुये तुम लोग। **दाशुषे** = हवि-दान देने वाले मनुष्य के लिए। **रयिम्** = धन। **धत्त** = दो। **तस्य** = तुम उस यजमान के। **पुत्रेभ्यः** = पुत्र के लिये। **वस्वः** = धन। **प्रयच्छत** = प्रदान करो। **ते** = वे तुम। **इह** = इस यज्ञ में। **ऊर्जम्** = बहुत धन। **दधात** = दो।

अनुवाद - हे पितरो! श्रेष्ठ देवों के समीप वेदि पर आसीन हुये तुम लोग हवि-दान देने वाले मनुष्य के लिए धन दो, तुम उस यजमान के पुत्र के लिये धन प्रदान करो। वे तुम इस यज्ञ में बहुत धन दो।

भावार्थ - देवताओं के पास बैठे हुये पितरो! तुम हवि को प्रदान करने वाले इस यजमान मनुष्य के लिये धनों को प्रदान करो। हे पितरो ! उस यजमान के पुत्र के लिये धन दो। वे तुम इस यज्ञ में बहुत सा धन प्रदान करो।

ये न॒: पूर्वे॑ पि॒त॒र॑: सो॒म्यासो॑ऽनूहि॒रे सोम॑पी॒थं वसि॑ष्ठाः।
तेभि॑र्य॒मः संर॑रा॒णो, ह॒वींष्यु॒शन्नु॒शद्भि॑: प्रति॒काम॒मत्तु॑ ॥ ८॥

अन्वय - ये नः सोम्यासः पूर्वे पितरः वसिष्ठाः सोमपीथं अनु ऊहिरे तेभिः उशद्भिः संरराणः यमः प्रतिकामं उशन् हवींषु अत्तु।

शब्दार्थ - **ये** = जो। **नः** = हमारे। **सोम्यासः** = सोम-पीने वाले। **पूर्वे** = प्राचीन। **पितरः** = पितर। **वसिष्ठाः** = धनवान् (वस्त्र से शरीर का आच्छादन करने वाले) थे। **सोमपीथम्** = उन्होंने सोमपान। **अनुऊहिरे** = आनुपूर्वीक्रम-से किया थाः। **तेभिः** = उन। **उशद्भिः** = हमारे हवि की इच्छा करने वाले पितरों

के साथ। **संरराणः** = सुखपूर्वक रहता हुआ। **यमः** = यम। **प्रतिकामम्** = इच्छा अनुसार। **उशन्** = पितरों के साथ मिलन को चाहने वाला। **हवींषु** = हविर्द्रव्यों का। **अत्तु** = भक्षण करें।

अनुवाद - जो हमारे सोम पीने वाले प्राचीन पितर धनवान् (वस्त्र से शरीर का अच्छादन करने वाले) थे, उन्होंने सोमपान आनुपूर्वीक्रम से किया था; उन हमारे हवि की इच्छा करने वाले, पितरों के साथ सुखपूर्वक रहता हुआ यम इच्छानुसार पितरों के साथ मिलन को चाहने वाला हविर्द्रव्यों का भक्षण करें।

भावार्थ - जो हमारे सोम पीने वाले पूर्वज (पितर) धनवान् थे, उन्होंने सोमपान यथा नियम किया था। उन हमारे हवि की अभिलाषा करने वाले पितरों के साथ सुखपूर्वक रहता हुआ पितृलोक का अधिपति यम, इन हवि द्रव्यों का इच्छानुसार भक्षण करें।

टिप्पणी व्याकरण- अनुहिरे - अनु + ऊह धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

ये ता॑तृ॒षुर्दे॑व॒त्रा जेह॑माना होत्रा॒विद॒ः स्तोम॑तष्टासो अ॒र्कैः॑।
आग्ने॑ याहि सुवि॒दत्रे॑भिर॒र्वाङ् स॒त्यैः क॒व्यैः पि॒तृभि॑र्घर्म॒सद्भिः॑ ॥ ९ ॥

अन्वय - अग्ने ये होत्राविदः स्तोमतष्टासः देवत्रा जेहमानाः तातृषुः अर्कैः सुविदत्रेभिः सत्यैः कव्यैः घर्मसद्भिः पितृभिः अर्वाङ् आयाहि।

शब्दार्थ - अग्ने = हे अग्निदेव। **ये** = जो पितर। **होत्राविदः** = अग्निहोत्र को जानने वाले। **स्तोमतष्टासः** = ऋचाओं से - स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। (और) **देवत्रा** = देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं। **जेहमानाः** = उनको प्राप्त होकर। **तातृषुः** = वे धनादि की इच्छा करते हैं। (उन) **अर्कैः** = अर्चनीय स्तोत्रों से। **सुविदत्रेभिः** = उत्तम ज्ञान से सम्पन्न। **सत्यैः** = सत्य बोलने वाले। **कव्यैः** = पितरों को दिये जाने वाले भक्ष्य अन्नों वाले। **घर्मसद्भिः** = यज्ञ में अवस्थित होने वाले। **पितृभिः** = पितरों के साथ। **अर्वाङ्** = तुम हमारे अभिमुख। **आयाहि** = आओ।

अनुवाद - हे अग्निदेव ! जो पितर अग्निहोत्र को जानने वाले, ऋचाओं से-(स्तोत्रों से) स्तुति करते हैं और देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं, उनको प्राप्त

होकर यदि वे धनादि की इच्छा करते हैं, उन अर्चनीय स्तोत्रों से, उत्तम ज्ञान से सम्पन्न सत्य बोलने वाले, पितरों को दिये जाने वाले भक्ष्य अन्नों वाले यज्ञ में अवस्थित होने वाले, पितरों के साथ तुम हमारे अभिमुख आओ।

भावार्थ - हे अग्निदेव ! जो पितर यज्ञों के करने की विधियों को ठीक प्रकार से जानने वाले, ऋचाओं-स्तोत्रों से स्तुति करते हैं और देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं; यदि वे धनादि की इच्छा करते हैं; उन अर्चनीय स्तोत्रों से ज्ञानी, सत्यवादी, पितरों को दिये जाने वाले भक्ष्य अन्नों वाले यज्ञ में अवस्थित होने वाले पितरों के साथ तू हमारे पास आ।

व्याकरण - जेहमानाः - 'जेह्' धातु से 'शानच्' प्रत्यय।

ये स॒त्यासो॑ हवि॒रदो॑ हवि॒ष्पा इन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॒ दधा॑नाः।
आग्ने॑ याहि स॒हस्रं॑ देवव॒न्दैः प॒रैः पूर्वैः॑ पि॒तृभि॑र्घर्म॑सद्भि॑ः ॥ १० ॥

अन्वय - ये सत्यासः हविरदः हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः। अग्ने! सहस्रं देववन्दैः पूर्वैः परैः घर्मसद्भिः पितृभिः आयाहि।

शब्दार्थ - ये = जो। **सत्यासः** = सत्य बोलने वाले। **हविरदः** = हवि का भक्षण करने वाले (और) **हविष्पा** = रसपान करने वाले पितर हैं। (वे) **इन्द्रेण** = इन्द्र के साथ। (और) **देवैः** = देवताओं के साथ। **सरथम्** = एक ही रथ में। **दधानाः** = बैठे हैं। **अग्ने** ! = हे अग्नि देव ! (तुम) **सहस्रम्** = हजारों। **देववन्दैः** = देव सम्बन्धी स्तुतियों से युक्त। **पूर्वैः** = पहले उत्पन्न होने वाले। (और) **परैः** = बाद में उत्पन्न होने वाले। **घर्मसद्भिः** = यज्ञ में अवस्थित होने वाले। **पितृभिः** = पितरों के साथ। **आयाहि** = आओ।

अनुवाद - जो सत्य बोलने वाले, हवि का भक्षण करने वाले और रसपान करने वाले पितर हैं, वे इन्द्र के साथ और देवताओं के साथ एक ही रथ में बैठे हैं। हे अग्निदेव! तुम हजारों देव सम्बन्धी स्तुतियों से युक्त, पहले उत्पन्न होने वाले और बाद में उत्पन्न होने वाले, यज्ञ में अवस्थित होने वाले पितरों के साथ आओ।

भावार्थ - सत्याचरण, हवि का भोग करने वाले और रस का पान करने वाले जो पितर हैं, वे इन्द्र और देवों के साथ एक रथ में ही बैठे हैं। हे अग्नि

देव ! तुम हजारों स्तुतियों से युक्त, पूर्व और प्राचीन यज्ञ के अनुष्ठाता पितरों के साथ आओ।

अग्नि॑ष्वात्ताः पित॒र एह ग॑च्छत॒ स॑दः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अ॒त्ता ह॒वींषि॒ प्रय॑तानि ब॒र्हिष्यथा॑ र॒यिं सर्व॑वीरं दधातन ॥११॥

अन्वय - अग्निष्वात्ताः पितरः इह आगच्छत। सदः सदः सदत बर्हिषि सुप्रणीतयः प्रयतानि हवींषि आ अत्त अथ सर्ववीरं रयिं दधातन।

शब्दार्थ - अग्निष्वात्ताः = हे अग्निदग्ध पितरो ! **इह** = यहाँ। **आगच्छत** = आओ। (और) **सदः सदः** = अपने उस उस उचित स्थान पर। **सदत** = बैठो। **बर्हिषि** = इस यज्ञमें। **सुप्रणीतयः** = हे पूज्य। **प्रयतानि** = प्रदत्त, पवित्रपात्रों में। **हवींषि** = हविर्द्रव्यों का। **आ अत्त** = आकर भक्षण करो। **अथ** = इसके बाद। **सर्ववीरम्** = सब वीर पुत्र पौत्र से सम्पन्न। **रयिम्** = धन को। **दधातन** = प्रदान करो।

अनुवाद - हे अग्निदग्ध पितरो! यहाँ आओ और अपने उस उस पवित्र स्थान पर बैठो। इस यज्ञ में हे पूज्य ! प्रदत्त पवित्र पात्रों में हविर्द्रव्यों का आकर भक्षण करो; इसके बाद सब वीर पुत्र-पौत्र से सम्पन्न धन को प्रदान करो।

भावार्थ - अग्नि में दग्ध पितरो! तुम यहाँ और सब अपने-अपने आसन पर बैठो। यहाँ आकर इस यज्ञ में हे पूज्य पितरो! पात्रों में दिये हुये हविद्रव्यों का भक्षण करो; और पुत्र- पौत्र आदि से युक्त धन हमें प्रदान करो।

टिप्पणी व्याकरण- सदः सदः = सदसि सीदन्ति अर्थ में सदस् + सद् + क्विप्। अथवा सदः सदः प्रतिसदम्। प्रत्येक स्थान में।

त्वम॑ग्न ईळि॒तो जा॑तवे॒दोऽवा॑ड्ढव्यानि॑ सु॒रभी॑णि कृ॒त्वी ।
प्रादाः पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॒ ते अ॑क्ष॒न्नद्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥१२॥

अन्वय - जातवेदः अग्ने ! त्वं ईळितः हव्यानि सुरभीणि कृत्वी अवाट्। पितृभ्यः प्रादाः ते स्वधया अक्षन् देवं ! त्वं प्रयता हवींषि अद्धि।

शब्दार्थ - जातवेदः = उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत् को जानने वाले। **अग्ने** = हे अग्निदेव। **त्वं ईळितः** = हमने तुम्हारी स्तुति की है। **हव्यांनि** = हमारी

हवि को मान्य करके। **सुरभीणि** = उत्तम गन्धयुक्त। **कृत्वी** = करके। **अवाट्** = पितरों को वहन कर दिया है। **ते** = वे। **पितृभ्यः** = पितर। **प्रादाः** = दिये गये। **स्वधया** = स्वधाकार से दी गई हवियों का। **अक्षन्** = भक्षण करें ;। **देवम्** = हे देव ! **त्वम्** = तुम भी। **प्रयता** = प्रयत्न से अर्पण किये। **हवींषि** = हवि की। **अद्धि** = भक्षण करो।

अनुवाद - उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत् को जानने वाले, हे अग्निदेव! हमने तुम्हारी स्तुति की है; हमारी हवि को मान्य करके, उत्तम गन्धयुक्त करके पितरों को वहन कर दिया है। वे पितर दिये गये स्वधाकार से दी गई हवियों का भक्षण करें। हे देव तुम भी प्रयत्न से अर्पण किये हवि का भक्षण करो।

भावार्थ - हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! हमारे द्वारा स्तुति किये जाते हुये हमारी हवि को मान्य करके, सुगन्धित करके पितरों को दे चुके हो। वे पितर स्वधा से दिये गये हवि का भक्षण करें; हे देव तुम भी प्रयत्न से दिये गये हविर्द्रव्यों का भक्षण करो।

टिप्पणी व्याकरण - **अवाट्** - 'वह्' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एक वचन। **अक्षन्** - 'घस' धातु, लङ्लकार प्रथमपुरुष, बहुवचन।

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ उ॑ च॒ न प्र॑विद्म।
त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञं सुकृ॑तं जुषस्व ॥ १३॥

अन्वय - जातवेदः ! ये पितरः इह च यान् विद्म् च ये इह न च यान् उ प्रविद्म यति ते त्वं वेत्थ स्वधाभिः सुकृतं यज्ञं जुषस्व।

शब्दार्थ - **जातवेदः** ! = हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! **ये** = जो। **पितरः** = पितर। **इह** = यहाँ आये हैं। **च** = और। **यान्** = जिनको हम। **विद्म** = जानते हैं। **च** = और। **ये** = जो। **इह** = यहाँ। **न** = नहीं आये हैं। **च** = और। **यान्** = जिनको। **उ न प्रविद्म** = हम नहीं जानते हैं। **यति ते** = उन सबकों। **त्वम्** = तुम। **वेत्थ**= जानते हो; (तो)। **स्वधाभिः** = स्वधा नामक हवियों के द्वारा। **सुकृतम्** = अच्छी प्रकार से सम्पादित। **यज्ञम्** = इस यज्ञ का। **जुषस्व** = सेवन करो।

अनुवाद - हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जो पितर यहाँ आये हैं और जिनको हम जानते हैं और जो यहाँ नहीं आये हैं और जिनको हम नहीं जानते हैं; उन सबको तुम जानते हो; (तो) स्वधा नामक हवियों के द्वारा अच्छी प्रकार से सम्पादित इस यज्ञ का सेवन करो।

भावार्थ - जो पितर यहाँ हमारे पास हैं और जो यहाँ हमारे पास नहीं हैं, जिनको समीप होने के कारण हम जानते हैं और जिन पितरों को दूर होने के कारण हम नहीं जानते हैं, हे अग्नि देव ! तुम उन सबको जानते हो। हे सर्वज्ञ अग्नि देव! स्वधायुक्त, हमारे इस सुप्रतिष्ठित यज्ञ का सेवन करो।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वरालसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ १४॥

अन्वय - ये अग्निदग्धाः ये अनग्निदग्धाः दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते स्वराट् तेभिः एताम् असुनीतिं तन्वं यथावशं कल्पयस्व।

शब्दार्थ - **ये** = जो पितर। **अग्निदग्धाः** = अग्नि से जलाये गये हैं, **ये** = जो पितर। **अनग्निदग्धाः** = नहीं जलाये गये हैं। (वे सब) **दिवः** = स्वर्ग के। **मध्ये** = मध्य में। **स्वधया** = स्वधारूप अन्न से। **मादयन्ते** = तृप्त होते हैं। **स्वराट्** = स्वयं देदीप्यमान हे अग्ने। **तेभिः** = उनके साथ तू मिलकर। **एताम्** = हमारे पितरों के। **असुनीतिम्** = प्राणों को ले जाने वाले। **तन्वम्** = शरीर को। **यथावशम्** = यथा शक्ति। **कल्पयस्व** = समर्थ बनाओ।

अनुवाद - जो पितर अग्नि से जलाये गये हैं, जो पितर नहीं जलाये गये हैं, वे सब स्वर्ग के मध्य में स्वधारूप अन्न से तृप्त रहते हैं; स्वयं देदीप्यमान हे अग्ने ! उनके साथ तू मिलकर हमारे पितरों के प्राणों को ले जाने वाले शरीर को यथाशक्ति समर्थ बनाओ।

भावार्थ - जो पितर श्मशान में ले जाकर जलाये गये हैं और जो नहीं जलाये गये हैं। वे सब स्वर्ग में स्वधारूप अन्न से तृप्त होकर आनन्दित रहते हैं; हे अग्निदेव! तुम उन पितरों के सहित प्राणों को ले जाने वाले इस शरीर को, कर्मों के अनुसार यथायोग्य समर्थ बनाओ।

व्याकरण-स्व - राज् + क्विप् = स्वराट्

०००

२५. अक्ष सूक्त

मण्डल १० **सूक्त ३४**

ऋषि-कवष ऐलूष **देवता-अक्षकृषिप्रशंसा** **छन्द-सातवें मन्त्र में जगती शेष सब में त्रिष्टुप्**

प्रा॒वे॒पा मा॑ बृहती मा॑दयन्ति प्रवाते॒जा इरि॑णे॒ वर्वृ॑ताना:।
सोम॑स्येव मौजव॒तस्य॑ भ॒क्षो विभीद॑को॒ जागृ॑वि॒र्मह्य॑मच्छान् ॥ १ ॥

अन्वय - बृहत: प्रवातेजा: इरिणे वर्वृताना: प्रावेपा: मादयन्ति। मौजवतस्य सोमस्य भक्ष: इव विभीदक: जागृवि: मह्यं अच्छान्।

शब्दार्थ - **बृहत:** = बड़े-बड़े। **प्रवातेजा:** = नीचे के भूमि में पैदा हुए। **इरिणे** = जुआ खेलने के पट्ट पर। **वर्वृताना:** = फैलाये जाते हुये। **प्रावेपा:** = कम्पनशील अक्ष-पासे। **मा** = मुझे। **मादयन्ति** = आनन्दित करते हैं। **मौजवतस्य** = मूजवान् पर्वत पर उत्पन्न। **सोमस्य** = सोमलता के। **भक्ष: इव** = रसपान से जैसे प्रसन्नता होती है, वैसे ही। **विभीदक:** = बहेडे के बृक्ष के काठ से बना। **जागृवि:** = जीता जागता अक्ष। **मह्यम्** = मुझे। **अच्छान्** = अत्यधिक उन्मादित करता है।

अनुवाद - बड़े-बड़े, नीचे के भूमि में पैदा हुये, जुआ खेलने के पट्ट पर फैलाये जाते हुये, कम्पनशील अक्ष पासे मुझे आनन्दित करते हैं। मूजवान् पर्वत पर उत्पन्न सोमलता के रसपान से जैसे प्रसन्नता होती है, वैसे ही बहेड़े के वृक्ष काठ से बना जीता जागता अक्ष मुझे अत्यधिक उन्मादित करता है।

भावार्थ - बड़े-बड़े, नीचे की भूमि पर उत्पन्न हुये, जुआ खेलने के पट्ट पर फैलाये जाते हुये, कम्पनशील खेलने के पासे मुझ को मस्त कर देते हैं। मूजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाले सोमलता के रसपान जिस प्रकार मदोन्मत कर देता है; उसी प्रकार दिन-रात जगाने वाला बहेड़े के वृक्ष का पासा मुझे अत्यधिक उन्मादित करता है।

टिप्पणी व्याकरण - **प्रावेपाः** - प्र + आ + वेप् + अच् = प्रावेप। **मादयन्ति** - णिजन्त मद् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **प्रावतेजाः** - प्रवाते जायन्ते + प्रवाते + जन् + ड = प्रवातेजाः। **जागृविः** = जागृ + विन् (वि) अच्छान् = अच्छ + अन् प्राणने लङ् का रूप है। **मौजवतस्य** - मूजवति जायते। **मूजवत्** + अण् मौजवत्। **ववृतानाः** - वृत् + कानच् = ववृतान।

न मा॑ मिमेथ॒ न जि॑हीळ ए॒षा शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत्।
अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तो रनु॑व्रता॒मप॑ जा॒याम॑रोधम् ॥ २ ॥

अन्वय - एषा मा न मिमेथं न जिहीळे सखिभ्यः उत मह्यं शिवा आसीत्। एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अहं अनुव्रतां जायां अप अरोधम्।

शब्दार्थ - **एषा** = यह मेरी पत्नी। **मा** = मुझ पर। **न मिमेथम्** = क्रोध नहीं करती। **न** = न कभी। **जिहीले** = मुझ से लज्जित होती। **सखिभ्यः** = मेरे मित्रों। **उत मह्यम्** = और मेरे लिये। **शिवा** = कल्याणकारिणी। **आसीत्** = था। **एकपरस्य** = एकमात्र। **अक्षस्य** = जुये के। **हेतोः** = कारण। **अहम्** = मैंने। **अनुव्रताम्** = पतिव्रता। **जायाम्** = पत्नी को। **अप अरोधम्** = छोड़ दिया।

अनुवाद - यह मेरी पत्नी मुझ पर क्रोध नहीं करती, न कभी मुझसे लज्जित होती; मेरे मित्रों और मेरे लिये कल्याणकारिणी है; एकमात्र जुये के कारण मैंने पतिव्रता पत्नी को छोड़ दिया।

भावार्थ - यह मेरी पत्नी कभी मेरा अनादर नहीं करती, न कभी मुझ से लज्जित होती है। यह मेरे मित्रों और मेरे लिए सुख देने वाली थी। एकमात्र जुये के कारण मैंने इस अनुरागिणी पत्नी को छोड़ दिया।

टिप्पणी व्याकरण- मिमेथ, जिहीले - मिथ् और हीळ धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **अरोधम्** - रुध् धातु, लङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

द्वेष्टि॑ श्व॒श्रूरप॑ जा॒या रु॑णद्धि॒ न ना॑थि॒तो वि॑न्दते मर्डि॒तार॑म्।
अश्व॑स्येव॒ जर॑तो॒ वस्न्य॑स्य॒ नाहं वि॑न्दामि कित॒वस्य॒ भोग॑म् ॥ ३ ॥

अन्वय - श्वश्रूः द्वेष्टि जाया अपरुणद्धि नाथितः मर्डितारं न विन्दते। जरतः अश्वस्य इव वस्न्यस्य अहं कितवस्य भोगं न विन्दामि।

शब्दार्थ - **श्वश्रूः** = जुआरी की सास। **द्वेष्टिः** = उससे द्वेष करती है। (और) **जाया** = उसकी पत्नी। **अपरुणद्धि** = उसके विरुद्ध हो जाती है। **नाथितः** = याचना करने पर भी जुआरी। **मर्डितारम्** = सुख (धन) देने वाले व्यक्ति को। **नविन्दते** = प्राप्त नहीं करता। (जिस प्रकार) **जरतः** = बूढ़े। **अश्वस्य** = घोड़े के। **इव** = समान। **वस्न्यस्य** = अमूल्य होकर। **अहम्** = मैं भी। **कितवस्य** = जुआरी के समान। **भोगम्** = भोगों को। **न** = नहीं। **विन्दामि** = पाता हूँ।

अनुवाद - जुआरी की सास, उससे द्वेष करती है और उसकी पत्नी उसके विरुद्ध हो जाती है। याचना करने पर भी जुआरी सुख (धन) देने वाले व्यक्ति को प्राप्त नहीं करता। जिस प्रकार बूढ़े घोड़े के समान अमूल्य होकर मैं भी जुआरी के समान भोगों को नहीं पाता हूँ।

भावार्थ - जो जुआरी जुआ खेलता है, उसकी सास भी उससे द्वेष करती है और उसकी पत्नी भी उसके विरुद्ध हो जाती है। और वह याचित होकर किसी से कुछ मांगता है, तो उसे कोई धन नहीं देता। जिस प्रकार बहुमूल्य किन्तु बूढ़े घोड़े का मूल्य प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार मैं भी जुआरी के समान सुख और आदर नहीं पाता हूँ।

टिप्पणी व्याकरण - **द्वेष्टि, रुणद्धि, विन्दते** - द्विष्, रुध् और विद् (विन्द्) धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **नाथितः** - नाथ् + (इट्) + क्त। **मर्डितारम्** - मृड़ + (इट्) + तृच् = मर्डितृ। द्वितीया का बहुवचन। **जरतः** - जृ + शतृ = जरत्। षष्ठी का एकवचन। **वस्न्यस्य** - वस्न + यत् = वस्न्य। षष्ठी का एकवचन।

अ॒न्ये जा॒यां परि॑ मृशन्त्यस्य॒ यस्यागृ॑ध॒द्वेद॑ने वा॒ज्य१॒क्ष॑ः।
पि॒ता मा॒ता भ्रा॒त॑र एन माहुर्न जा॑नीमो॒ नय॑ता ब॒द्धमे॒तम् ॥ ४॥

अन्वय - यस्य वेदने वाजी अक्षः अगृधत् अस्य जायां अन्ये परिमृशन्ति। पिता माता भ्रातरः एतं आहुः न जानीमः एतं बद्धं नयत।

शब्दार्थ - **यस्य** = जिस जुआरी के। **वेदने** = धन पर। **वाजी** = बलवान्। **अक्षः** = जुये का पासा। **अगृधत्** = ललचाने लगता है। **अस्य** = इस

जुआरी की। **जायाम्** = स्त्री को। **अन्ये** = दूसरे जीतने वाले जुआरी लोग। **परिमृशन्ति** = अपमानित करते हैं। **पिता** = उसके पिता। **माता** = माता। **भ्रातरः** = भाई। **एनम्** = इसके विषय में। **आहुः** = कहते हैं कि। **न जानीमः** = हम इसे नहीं जानते। **एतम्** = इसे। **बद्धम्** = बांधकर। **नयत** = ले जाओ।

अनुवाद - जिस जुआरी के धन पर बलवान् जुये का पासा ललचाने लगता है, उस जुआरी की पत्नी को दूसरे जीतने वाले जुआरी लोग अपमानित करते हैं। उसके पिता, माता (और) भाई उसके विषय में कहते हैं कि हम इसे नहीं जानते; इसे बांधकर ले जाओ।

भावार्थ - जिस पुरुष के धन पर बलवान् जुये का पासा ललचाने लगता है अर्थात् जो अपनी सम्पत्ति को जुये में लगाने लगता है। तो इसकी स्त्री को भी दूसरे लोग हाथ, वस्त्र, केश आदि खींचकर अपमानित करते हैं। जुआरी के पकड़ लिये जाने पर उसके माता, पिता और भाई भी कहते हैं, कि हम इसे नहीं जानते ; इसको बांधकर ले जाओ।

टिप्पणी व्याकरण - **परिमृशन्ति** - परि + मृश् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष, बहुवचन। **अगृधत्** - गृध् धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

यदा॒दीध्ये॒ न द॑विषाण्येभिः परा॒यद्भ्योऽव॑ हीये॒ सखिभ्यः।
न्यु॑प्ताश्च ब॒भ्रवो॒ वाच॒मक्र॑तँ॒ एमीदेषां निष्कृ॒तं जा॒रिणी॑व ॥ ५ ॥

अन्वय - यद् आदीध्ये एभिः न दविषाणि परायद्भ्यः सखिभ्यः अवहीये। च बभ्रवः न्युप्ताः वाचं अक्रतम् एषां निष्कृतम् जारिणी इव एभि इत्।

शब्दार्थ - **यद्** = जब मैं। **आदीध्ये** = विचार करता हूँ, (कि) **एभिः** = इन पासों से। **न** = नहीं। **दविषाणि** = खेलूँगा। (ऐसा निश्चय करके) **परायद्भ्यः** = जुये के स्थान की और जाते हुए। **सखिभ्यः** = मित्रों से। **अवहीये** = छिप जाता हूँ। **च** = और (जब)। **बभ्रवः** = वे लाल-पीले रंग के पासे। **न्युप्ताः** = अक्ष पट्ट पर फैंके जाते हुये। **वाचम्** = शब्द। **अक्रतम्** = करते हैं। **एषाम्** = मैं भी इनके। **निष्कृतम्** = स्थान पर। **जारिणी** = व्यभिचारिणी के। **इव** = समान। **एमि इत्** = पहुँच ही जाता हूँ।

अनुवाद - जब मैं विचार करता हूँ कि इन पासों से नहीं खेलूँगा, (ऐसा निश्चय करके) जुये के स्थान पर जाते हुए मित्रों से छिप जाता हूँ। और (जब) वे लाल-पीले रंग के पासे अक्ष पट्ट पर फैंके जाते हुये शब्द करते हैं, मैं भी इनके स्थान पर व्यभिचारिणी स्त्री के समान पहुँच ही जाता हूँ।

भावार्थ - जब मैं मन से निश्चय करता हूँ कि अब इन पासों से नहीं खेलूँगा, इस प्रकार का निश्चय करके जुए के स्थान की और जाते हुये मित्रों से छिप जाता हूँ। और जब भूरे रंग के पासे अक्ष पट्ट पर फैंके जाते हुये शब्द करते हैं, तो मुझ से नहीं ठहरा जाता ; उस समय मैं भी इस स्थान पर अर्थात् जुआ खेलने के स्थान में व्यभिचारिणी स्त्री के समान मैं पहुँच ही जाता हूँ।

टिप्पणी व्याकरण- आदीध्ये - आ + दीधी धातु, लट्लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। **दविषाणि** - दिव् धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **न्युप्ता** - नि + वप् + क्त = न्युप्त। सम्प्रसारण। **अक्रत्** - कृ धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥ ६ ॥

अन्वय - तन्वा शूशुजानः कितवः जेष्यामि इति पृच्छमानः सभां एति। प्रतिदीन्वे कृतानि आदधतः अक्षासः अस्य कामं वितिरन्ति।

शब्दार्थ - **तन्वा** = शरीर से। **शूशुजानः** = दीप्यमान्। **कितवः** = जुआरी। **जेष्यामि** = मैं सबको जुये में जीत लूँगा। **इति** = ऐसे मन से। **पृच्छमानः** = पूछता हुआ। **सभाम्** = द्यूतसभा में। **एति** = आता है। (वहाँ) **प्रतिदीन्वे** = प्रतिद्वन्द्वी जुआरी के साथ। **कृतानि** = दावों को। **आदधतः** = लगाते हुये। **अक्षासः** = पासे। **अस्य** = उसकी। **कामम्** = इच्छा को। **वितिरन्ति** = बढ़ा देते हैं।

अनुवाद - शरीर से दीप्यमान् जुआरी, मैं सबको जुये में जीत लूँगा। ऐसे मन से पूछता हुआ द्यूतसभा में आता है; वहाँ प्रतिद्वन्दी जुआरी के साथ दावों को लगाते हुये पासे उसकी इच्छा को बढ़ा देते हैं।

भावार्थ - अपने शरीर से दीप्यमान् अर्थात् सुन्दर रूप से सजा धजा, जुआरी, मैं सबको जुये में जीत लूँगा, इस प्रकार से जुये खाने को पूछता हुआ जुआ खेलने के लिये द्यूत सभा में आता है। वहाँ विपक्षी जुआरी के साथ दावों को लगाते हुये उसके वे पासे उसकी इच्छा को, अर्थात् धन-कामना को बढ़ा देते हैं।

टिप्पणी व्याकरण - शूशुजानः - शुज् + कानच् = शूशुजान। **पृच्छमानः** - पृच्छ् + (मूक्) + शानच् = पृच्छमानः। **दधतः** - धा + शतृ = दधत्।

अ॒क्षास॒ इद॑ङ्कुशिनो॑ नितो॒दिनो॑ नि॒कृत्वा॑न॒स्तप॑नास्तापयि॒ष्णवः॑।
कु॒मा॒रदे॑ष्णा॒ जय॑तः पुन॒र्हणो॒ मध्वा॒ संपृ॑क्ताः कित॒वस्य॑ ब॒र्हणा॑ ॥ ७॥

अन्वय - अक्षासः इत् अंकुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः। जयतः कितवस्य कुमारदेष्णाः मध्वा संपृक्ताः पुनः बर्हणा हणः

शब्दार्थ - अक्षासः = ये पासे। **इत्** = निश्चय ही। **अंकुशिनः** = अंकुश के समान चुभते हैं। **नितोदिनः** = चाबुक से युक्त होते हैं। **निकृत्वानः** = जड़मूल से बरबाद करने वाले हैं। **तपनाः** = जुआरी को सन्ताप देने वाले हैं। (और) **तापयिष्णवः** = कुटुम्ब को दुःख देने वाले होते हैं। **जयतः** = जीतने वाले। **कितवस्य** = जुआरी के लिये (पासे)। **कुमारदेष्णाः** = पुत्र जन्म के समान आनन्ददायक होते हैं। (और) **मध्वा** = शहद से। **संपृक्ताः** = सने हुये से। **पुनः** = पुनः। **बर्हणा** = सर्वस्व हरण करके जुआरी को। **हणः** = मारने वाले होते हैं।

अनुवाद - ये पासे निश्चय ही अंकुश के समान चुभते हैं, चाबुक से युक्त होते हैं। जड़मूल से बरबाद करने वाले हैं। जुआरी को सन्ताप देने वाले हैं और उसके कुटुम्ब को दुःख देने वाले होते हैं। जीतने वाले जुआरी के लिये पासे पुत्र जन्म के समान आनन्ददायक होते हैं; और शहद से सने हुये से पुनः सर्वस्व हरण करके जुआरी को मारने वाले होते हैं।

भावार्थ - जुये के ये पासे ही अंकुश के समान चुभते हैं, चाबुक से युक्त होते हैं, अर्थात् जिस प्रकार चाबुक गाय बैल आदि को चलाता है, उसी प्रकार वे जुआरी को चलाते हैं। जड़मूल से बरबाद करने वाले हैं। जुआरी को

सन्ताप देने वाले तथा सर्वस्व हरण होने पर कुटुंबी जनों को दुःख देने वाले हैं। विजयी जुआरी के लिये पासे पुत्र जन्म के समान प्रसन्नता देने वाले होते हैं; और मधुता से युक्त मीठे वचनों के समान होते हैं। परन्तु हारे हुये जुआरी को मारने वाले होते हैं।

टिप्पणी व्याकरण - **अङ्कुशिनः** - अङ्कुश + इनि = अङ्कुशिन्। **नितोदिन :** - नि + तुद् + णिनि = नितोदिन्। **निकुत्वानः** - नि + कृत् + क्वनिप् = निकृत्वन्। **तपनाः** - तप् + ल्युट् (अन) = तपन। **तापयिष्णवः** - णिजन्त तप् + (इट्) + इष्णुच् = तापयिष्णु। **कुमारदेष्णा :**- कुमार + दा + ष्ण = कुमारदेष्ण। **पुनर्हण :** - पुनः हन्ति। पुनर् + हन् + क्विप् = पुनर्हन्। **बर्हणा** - बृह् + युच् (अन) = बर्हण। **सम्पृक्ताः** - सम् + पृच् + क्त = सम्पृक्त।

त्रि॒प॒ञ्चा॒शः क्री॑ळति॒ व्रात॑ एषां दे॒व इ॑व सवि॒ता स॒त्यध॑र्मा।
उ॒ग्रस्य॑ चिन्म॒न्यवे॒ ना न॑मन्ते॒ राजा॑ चिदेभ्यो॒ नम॒ इत् कृ॑णोति ॥ ८ ॥

अन्वय - एषां त्रिपञ्चाशः व्रातः सत्यधर्मा सविता देवः इव क्रीडन्ति। उग्रस्य चित् मन्यवे न नमन्ते राजा चित् एभ्यः नमः इत् कृणोति।

शब्दार्थ - **एषाम्** = इन अक्षों का। **त्रिपञ्चाशः** = ५३ संख्या का। **व्रातः** = समूह। **सत्यधर्मा** = सत्यधर्म का स्वरूप। **सविता** = सूर्य। **देवः** = देव के। **इव** = समान। **क्रीडन्ति** = विहार करता है। **उग्रस्य** = अत्यंत उग्र मनुष्य के। **चित्मन्यवे** = क्रोध के आगे भी। **न नमन्ते** = नहीं झुकते, उसके वश में नहीं आते। **राजा** = राजा। **चित्** = भी। **एभ्यः** = पासों को खलते समय। **नमः** = नमस्कार। **इत्** = ही। **कृणोति** = करता है।

अनुवाद - इन अक्षों का ५३ संख्या का समूह सत्यधर्म का स्वरूप सूर्य देव के समान विहार करता है; अत्यंत उग्र मनुष्य के क्रोध के आगे भी नहीं झुकते, उसके वश में नहीं आते; राजा भी पासों को खेलते समय नमस्कार ही करता है।

भावार्थ - इन (अक्षों) पासों का तिरेपन (५३) संख्या का समूह सत्य नियमों वाले सबके प्रेरक सूर्यदेवता के समान विहार करता है। ये पासे क्रोधी

मनुष्य के आगे भी नहीं झुकते, इनके वश में नहीं आते। राजा भी इन पासों को खेलते समय नमस्कार ही करता है।

टिप्पणी व्याकरण – **त्रिपञ्चाशः** - त्रिपञ्चाशतः पूरणः। त्रिपञ्चाशत् + डट् = त्रिपञ्चाश। **नमन्ते** - नम् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन। वैदिक रूप।

नी॒चा व॑र्तन्त उ॒परि॑ स्फुरन्त्यह॒स्तासो॒ हस्त॑वन्तं सहन्ते।
दि॒व्या अङ्गा॑रा॒ इरि॑णे॒ न्यु॑प्ताः शी॒ताः सन्तो॒ हृद॑यं॒ निर्द॑हन्ति ॥ ९ ॥

अन्वय - नीचाः वर्तन्ते उपरि स्फुरन्ति। अहस्तासः हस्तवन्तं सहन्ते। दिव्याः अङ्गाराः इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तः हृदयं निर्दहन्ति।

शब्दार्थ - **नीचाः** = ये पासे नीचे अक्षपट्ट पर। **वर्तन्ते** = डाले जाते हैं। (परन्तु) **उपरि** = ऊपर। **स्फुरन्ति** = जुआरियों के हृदय को उछाल देते हैं। **अहस्तासः** = ये पासे हाथों से रहित होते हुये भी। **हस्तवन्तम्** = हाथों वाले जुआरिओं को। **सहन्ते** = पराजित करते हैं। **दिव्याः** = ये पासे दिव्य। **अङ्गाराः** = प्रज्वलित अंगारों के समान। **इरिणे** = अक्षपट्ट पर। **न्युप्ताः** = फैंके जाते हुये। **शीताः सन्तः** = छूने में ठंडे होने पर भी जुआरी के। **हृदयम्** = हृदय को। **निर्दहन्ति** = जला देते हैं।

अनुवाद - ये पासे नीचे अक्षपट्ट पर डाले जाते हैं, परन्तु ऊपर जुआरियों के हृदय को उछाल देते हैं। ये पासे हाथों से रहित होते हुये भी हाथों वाले जुआरियों को पराजित करते हैं। ये पासे दिव्य प्रज्वलित अंगारों के समान अक्षपट्ट पर फैंके जाते हुये छूने में ठंडे होने पर भी जुआरी के हृदय को जला देते हैं।

भावार्थ - ये अक्ष-पासे अक्ष पट्ट पर फैंके जाते है; परन्तु ऊपर जुआरियों के हृदय को उछाल देते हैं। ये पासे यदि हाथों से रहित हैं, तो भी हाथों वाले जुआरियों को पराजित करते हैं। ये पासे दिव्य हैं; तो भी प्रज्वलित अंगारों के समान अक्षपट्ट पर फैंके जाते हुये स्पर्श में शीतल होते हुये भी जुआरी के अन्तःकरण को पराजित होने के भय के कारण जला देते हैं।

टिप्पणी व्याकरण – न्युप्ताः – नि + वप् + क्त = न्युप्त। व को सम्प्रसारण।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥ १०॥

अन्वय – कितवस्य हीना जाया तप्यते क्वस्वित् चरतः पुत्रस्य माता। ऋणावा धनं इच्छमानः बिभ्यद् नक्तम् अन्येषां अस्तं उप एति।

शब्दार्थ – कितवस्य = जुआरी की। **हीना** = त्यागी हुई। **जाया** = पत्नी। **तप्यते** = दुःखित होती है। **क्वस्वित्** = (और) कहीं-कहीं। **चरतः** = विचरते। **पुत्रस्य** = पुत्र की। **माता** = माता दुःखी रहती है। **ऋणावा** = ऋणग्रस्त जुआरी। **धनम्** = धन की। **इच्छमानः** = इच्छा करता हुआ। **बिभ्यद्** = भयभीत होकर। **नक्तम्** = रात्री के समय। **अन्येषाम्** = दूसरों के। **अस्तम्** = घर में। **उप एति** = चोरी करने के लिये जाता है।

अनुवाद – जुआरी की त्यागी हुई पत्नी दुःखित होती है और कहीं-कहीं विचरते पुत्र की माता दुःखी रहती है। ऋणग्रस्त जुआरी धन की इच्छा करता हुआ, भयभीत होकर रात्रि के समय दूसरों के घर में चोरी करने के लिए जाता है।

भावार्थ – हारे हुये जुआरी की त्यागी हुई पत्नी दुःखी होती है; और कहीं-कहीं घूमते हुये उस जुआरी पुत्र की माता दुःखी रहती है। कर्जदार होता हुआ जुआरी चोरी के धन की इच्छा करता हुआ, भयभीत होकर रात के समय दूसरों के घर में चोरी करने के लिए जाता है।

टिप्पणी व्याकरण :- ऋणावा – ऋण् + वनिप् = ऋणावन्। प्रथमा का एकवचन। **इच्छमानः** – इष् (इच्छ) + (शप्) + (मुक्) + शानच् = इच्छमान्

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापाऽन्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून् त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥ ११॥

अन्वय – कितवम् स्त्रियम् अन्येषाम् जायाम् च सुकृतम् योनिम् दृष्ट्वाय ततापा। पूर्वाह्णे हि बभ्रून् अश्वान् युयुजे। सो वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद।

शब्दार्थ - कितवम् = जुआरी। **स्त्रियम्** = अपनी-पत्नी को। **अन्येषाम्** = दूसरों की। **जायाम्** = पत्नी को। **च** = और। **सुकृतम्** = सुन्दर सजाये गये। **योनिम्** = घर को। **दृष्ट्वाय** = देखकर। **तताप** = दुःखी होता है। **पूर्वाह्णे** = प्रातः काल होते। **हि** = ही वह। **बभ्रून्** = गेरू (भूरे) रंग के। **अश्वान्** = पासों से (घोड़ों से) यह खेलना। **युयुजे** = शुरु करता है। **सो** = वह। **वृषलः** = मूढ़ मनुष्य रात में। **अग्नेः** = आगे के। **अन्ते** = समीप। **पपाद** = पड़ा रहता है।

अनुवाद - जुआरी अपनी पत्नी को, दूसरों की पत्नी को और उनके सुन्दर सजाये गये घर को देखकर दुःखी होता है। प्रातः काल होते ही वह गेरू (भूरे) रंग के पासों से (घोड़ों से) यह खेलना शुरू करता है। वह मूढ़ मनुष्य रात में आग के समीप पड़ा रहता है। अर्थात् अग्नि के पास पड़े-पड़े रात बिताता है।

भावार्थ - जुआरी दूसरों की स्त्रियों का सुख और उनके सुन्दर सजाये गये घर को देखकर, अपनी स्त्री की दशा देखकर दुःखी होता है। फिर प्रातः काल होते ही वह भूरे रंग के पासों से यह खेलना शुरू करता है। उसके बाद वह मूढ़ मनुष्य रात में आग के समीप पड़ा रहता है।

टिप्पणी व्याकरण - दृष्ट्वा - दृश् + क्त्वाय। अथवा - दृश् + क्त्वा + - य। **पपाद** - पद् धातु, लिट्लकार, प्र० पु०, एकवचन। **कितवम्** - प्रथमा के अर्थ में छान्दस् द्वितीया।

यो व॑ः सेना॒नीर्म॑ह॒तो ग॒णस्य॒ रा॒जा॒ व्रात॑स्य प्र॒थ॒मो बभूव॑।
तस्मै॑ कृणोमि॒ न धना॑ रुणध्मि॒ द॒शा॒हं प्रा॒ची॒स्तदृ॒तं व॑दामि॥ १२॥

अन्वय - वः महतः गणस्य यः सेनानीः व्रातस्य प्रथमः राजा बभूव, तस्मै अहम् दश प्राचीः कृणोमि, धना न रुणध्मि, तत् ऋतं वदामि।

शब्दार्थ - (हे अक्षो !) **वः** = तुम्हारे। **महतः** = महान् (बड़े) ५३ संख्या वाले। **गणस्य** = सुमुदाय का। **यः** = जो। **सेनानीः** = नायक है (और) **व्रातस्य प्रथमः** = जो तुम्हारे समूह में मुख्य। **राजा** = राजा। **बभूव** = है। **तस्मै** = उसको। **अहम्** = मैं। **दश** = दश अंगुलियों को। **प्राचीः** = सामने करके हाथ जोड़कर। **कृणोमि** = नमस्कार करता हूँ। **धना** = उसके लिये में धन भी।

न = नहीं। **रुणध्मि** = चाहता हूँ। **तत्** = यह मैं। **ऋतम्** = सच्ची बात। **वदामि** = कहता हूँ।

अनुवाद - हे अक्षो ! तुम्हारे महान् (बड़े) ५३ संख्या वाले समुदाय का जो नायक है और जो तुम्हारे समूह में मुख्य राजा है, उसको मैं दश अंगुलियों को सामने करके हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ; उसके लिये मैं धन भी नहीं चाहता हूँ; यह मैं सच्ची बात कहता हूँ।

भावार्थ - हे पासो ! तुम्हारे बड़े संघ का जो मुख्य नायक है और जो प्रमुख राजा है। मैं उसको अपनी दसों अंगुलियाँ जोड़कर, अर्थात् हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। उसके लिये मैं धन भी नहीं चाहता। यह मैं सत्य कहता हूँ।

टिप्पणी व्याकरण– कृणोमि - कृ धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **रुणध्मि** - रुध्, धातु, लट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

अ॒क्षैर्मा दी॑व्यः कृ॒षिमित् कृ॑षस्व वि॒त्ते र॑मस्व ब॒हु मन्य॑मानः।
तत्र॒ गाव॑: कित॒व तत्र॑ जा॒या तन्मे॒ वि च॑ष्टे सवि॒तायम॒र्य : ॥ १३ ॥

अन्वय - कितव! अक्षै: मा: दीव्य: कृषिं इत् कृषस्व बहु मन्यमान: वित्ते रमस्व। तत्र गाव:, तत्र जाया। अयं सविता अर्य: मे तत् विचष्टे।

शब्दार्थ - **कितव** = हे जुआरी। **अक्षैः** = पासों से। **माः दिव्यः** = जुआ मत खेलना। **कृषिम्** = खेती। **इत** = ही। **कृषस्व** = करो। (और) **बहु** = उसी को बहुत। **मन्यमानः** = मानता हुआ। **वित्ते** = प्राप्त धन में। **रमस्व** = आनन्द प्राप्त करो। **तत्र** = उसी से। **गावः** = गौ आदि भोग्य पदार्थ। (और) उसी से। **जाया** = स्त्री प्राप्त करोगे। **अयम्** = इस संसार के प्रेरक साक्षात्। **सूर्यः** = सूर्य। **अर्यः** = देव ने। **मे** = मुझ से। **तत्** = ऐसा। **विचष्टे** = कहा है।

अनुवाद - हे जुआरी ! पासों से जुआ मत खेलना; खेती ही करो और उसी को बहुत मानता हुआ प्राप्त धन में आनन्द प्राप्त करो। उसी से गौ आदि भोग्य पदार्थ और उसी से स्त्री प्राप्त करोगे। इस संसार के प्रेरक साक्षात् सूर्य देव ने मुझ से ऐसा कहा है।

भावार्थ - हे जुआरी! तुम कभी भी जुआ मत खेलना; तुम परिश्रम करके खेती ही करना और खेती द्वारा प्राप्त धन को बहुत समझते हुये उसी में आनन्द

प्राप्त करो। इसी से गौ आदि भोग्य पदार्थ प्राप्त होंगे और इसी से तुमको स्त्री, अर्थात् दाम्पत्य सुख प्राप्त होगा। स्वयं साक्षात् सूर्यदेव ने मुझसे यह बात बताई है।

टिप्पणी व्याकरण– दीव्यः - दिव् धातु, लुङ् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन मा के योग के कारण अट् के आगम का निषेध। **विचष्टे** - वि + चक्ष् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

मि॒त्रं कृ॑णुध्वं॒ खलु॑ मृ॒ळता॑ नो॒ मानो॑ घो॒रेण॑ चरता॒भि धृ॒ष्णु।
नि वो॒ नुः म॒न्युर्वि॑शता॒मरा॑ति र॒न्यो ब॑भ्रू॒णां प्रसि॑तौ॒न्व॑स्तु॥ १४॥

अन्वय - मित्रं कृणुध्वम् खलु नः मृळतः। नः धृष्णु घोरेण मा अभिचरत। वः मन्युः आरातिः नि विशताम्। अन्यः बभ्रूणां प्रसितौ नु अस्तु।

शब्दार्थ - हे पासो ! **मित्रम्** = हमें अपना मित्र। **कृणुध्वम्** = बनाओ। **खलु नः** = निश्चय हमारा। **मृडतः** = कल्याण करो। **नः** = हमारे प्रति। **धृष्णु** = दबाने वाले। **घोरेण** = भयानक क्रोध से। **मा अभिचरत** = आचरण को मत करो। **वः** = तुम्हारे। **मन्युः** = क्रोध में। **आरातिः** = हमारा शत्रु। **निविशताम्** = ही गिरे। **अन्यः** = दूसरे हमारे शत्रु। **बभ्रूणाम्** = बभ्रूवर्ण के पासों के। **प्रसितौ** = बन्धन में। **नु अस्तु** = फंसे रहें।

अनुवाद - हे पासो ! हमें अपना मित्र बनाओ; निश्चय ही हमारा कल्याण करो। हमारे प्रति दबाने वाले भयानक क्रोध से आचरण को मत करो। तुम्हारे क्रोध में हमारा शत्रु ही गिरे; दूसरे हमारे शत्रु बभ्रूवर्ण के पासों के बन्धन में फंसे रहें।

भावार्थ - हे अक्षो! तुम हमें अपना मित्र बनाओ; और हमारा कल्याण करो। हमें दुःखद दुर्धर्ष क्रोध से आक्रमण मत करो। तुम्हारा क्रोध निश्चय से हमारे शत्रुओं में प्रवेश करे। और कोई दूसरा हमारा शत्रु तुम्हारे भूरे रंग के पासों के बन्धन में पड़ा रहे।

टिप्पणी व्याकरण- कृणुध्वम् - कृ धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। **विशताम्** = विश् धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। **प्रसितौ** - प्र+सि (षिञ् बन्धने) +क्तिन् = प्रसिति। सप्तमी का एकवचन।

२६. पुरुष सूक्त

मण्डल १० सूक्त ९०
ऋषि-नारायण देवता-पुरुष छन्द-अनुष्टुप् अन्तिम मन्त्र में त्रिष्टुप्

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥

अन्वय- पुरुषः सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपात्। सः भूमिम् विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अत्यतिष्ठत्।

शब्दार्थ- पुरुषः = यह परम (आदि) पुरुष विराट् परमेश्वर। **सहस्र शीर्षा** = हजारों (अनन्त) सिरों (मस्तकों) वाला। **सहस्राक्षः** = सहस्र आँखों वाला, **सहस्र-पात्** = तथा हजारों पाँवों वाला है। **सः भूमिम्** = वह भूमि को, **विश्वतः** = चारों ओरे से। **वृत्वा** = आच्छादित (घेर) कर के। **दशाङ्गुलम्** = वह दस अंगुलियों की लम्बाई से परे तक के प्रमाण में। **अति अतिष्ठत्** = इससे ऊपर उठ गया (वह ब्रह्माण्ड को पार कर के स्थित है) अर्थात्-वह मनुष्यों के सामान्य नाप की सीमा से भी परे तक फैल गया।

अनुवाद- वह आदि पुरुष विराट् परमेश्वर सहस्र (अनन्त) सिरों वाला, हजारों आँखों वाला तथा हजारों (अनन्त) पाँवों वाला है। वह भूमि को चारों ओर से आच्छादित (व्याप्त) करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके अवस्थित है। अर्थात्- वह परम पुरुष दस अंगुल रूप इस अल्प सृष्टि को व्यापकर बाहर भी है।

भावार्थ- विराट् पुरुष परमेश्वर सहस्र (अनन्त) शिरों, अनन्त चक्षुओं और अनन्त चरणों वाले हैं। वे भूमि (ब्रह्माण्ड-गोलक को चारों ओर से व्याप्त

करके तथा दश-अंगुल-परिमाण अधिक होकर, अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहर भी व्याप्त होकर अवस्थित हैं।

टिप्पणी व्याकरण– पुरुषः = पुरि शेते, पुर + शी + क। वैदिक निपातनात् रूप बनता है। **सहस्त्रशीर्षाः** - सहस्त्रं असंख्यं शिरांसि यस्य सः। **सहस्त्राक्षः** - सहस्त्रं अक्षीणि यस्य स। सहस्त्र+अक्षि। समासान्त 'षच्' - प्रत्यय तथा 'टि' लोप। **सहस्त्रपात्** - सहस्त्रं पादाः यस्य स। **दशाङ्गुलम्** - दशानां अङ्गुलीनां समाहारः। दश+अङ्गुली।

पु॑रुष एवेदं सर्व॒ं यद्भूतं यच्च॒ भव्य॑म्।
उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥ २ ॥

अन्वय - यत् भूतम् यत् च भव्यम् इदम् सर्वम् पुरुषः एव उत अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति।

शब्दार्थ– यद्भूतम् = जो कुछ हो चुका है, अर्थात् जो भूतकाल में हुआ था। **यत् च भव्यम्** = तथा जो कुछ होगा अर्थात् जो भविष्यत् काल में होने वाला है। **इदं सर्वम्** = यह सब कुछ दृश्यमान् वर्तमान जगत्। **पुरुषः एव** = आदि पुरुष ही है। **उत** = और वह पुरुष। **अमृतत्वस्य** = अमरत्व (अमरपन) का। मोक्ष का, देवताओं का। **ईशानः** = स्वामी है। (और मरण धर्मा प्राणिसमूह का भी स्वामी है)। **यद्** = जो पुरुष। **अन्नेन** = अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के द्वारा। **अतिरोहति** = बढ़ता है अर्थात् इस वर्तमान जगत् रूप दशा को प्राप्त होता है।

भावार्थ - जो कुछ हुआ है तथा जो कुछ होने वाला है, वह सब परमेश्वर (पुरुष) ही हैं। वे देवत्व के स्वामी हैं ; क्योंकि प्राणियों के भोग्य के निमित्त अपनी कारणावस्था को छोड़कर जगदावस्था को प्राप्त करते हैं।

व्याकरण - भू + यत् = भव्यम्। ईश + शानच् = ईशानः।

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्या॑याँश्च॒ पूरु॑षः।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥ ३ ॥

अन्वय - अस्य एतावान् महिमा। पुरुषः च अतः ज्यायान्। विश्वा भूतानि अस्य पादः। अस्य त्रिपात् अमृतम् दिवि।

शब्दार्थ - **अस्य** = इस पुरुष की। **एतावान्** = इतनी। **महिमा** = विशाल महिमा है, अर्थात् वर्तमान भूत् और भविष्यत् कालत्रयवर्ती यह सम्पूर्ण जगत् इसकी विशाल महिमामात्र है, इसका वास्तविक स्वरूप नहीं। **पुरुषः च अतः ज्यायान्** = और वह आदि (विराट्) पुरुष इस से भी अधिक विराट् (बड़ा) है। **विश्वा** = सम्पूर्ण। **भूतानि** = प्राणी अर्थात् यह समस्त सृष्टि तो। **अस्य** = इसका। **पादः** = केवल एकपाद (चतुर्थांश) है। **अस्य** = इसके। **त्रिपात्** = तीन पाद (तीन-चौथाई भाग)। **अमृतम्** = अविनाशी रूप से। **दिवि** = द्युलोक में अवस्थित हैं।

अनुवाद– इस पुरुष की इतनी विशाल महिमा है, अर्थात् वर्तमान-भूत और भविष्यत् कालत्रयवर्ती, यह सम्पूर्ण जगत् इसकी विशाल महिमा मात्र है। यह इसका वास्तविक स्वरूप नहीं हैं और वह आदि विराट् पुरुष इससे भी अधिक विराट् (बड़ा) है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समस्त सृष्टि तो इसका एकपाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद (तीन चौथाई भाग) अविनाशी रूप से द्युलोक में अवस्थित हैं।

टिप्पणी व्याकरण – एतावानस्य - एतावान् + अस्य। एतद् + मतुप्। **महिमा** - महत् + इमनिच् = महिमन्। **त्रिपाद्** - त्रयाणां पादानां समाहारः। **दिवि** - सप्तमी एकवचन। **पूरुषः** - आदि उ का छान्दस दीर्घ है।

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त् पुरु॑ष॒ः पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त् पुन॑ः।
त॒तो विष्व॒ङ् व्य॑क्रामत् साऽशनानश॒ने अ॒भि॥ ४॥

अन्वय– त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्। अस्य पादः इह पुनः अभवत्। ततः साशनानशने अभि विष्वङ् व्यक्रामत्।

शब्दार्थ– **त्रिपाद्** = तीन पादों वाला। **पुरुष** = विराट् पुरुष। **ऊर्ध्वः** = संसार से ऊपर (द्युलोक में)। **उदैत्** = उठा हुआ है। **अस्य** = इसका, **पादः** = एक पाद। **इह** = इस भौतिक जगत् के रूप में। **पुनः** = बार-बार। **अभवत्** = उत्पन्न होता है। **ततः** = इसके उपरान्त अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने पर। **स-अशन-अनशने** = अन्न खाने वाले और अन्न (भोजन) न खाने वाले अर्थात् चेतन और अचेतन जगत् को। **विष्वङ्-अभि-वि-अक्रामत्** = लक्ष्य करके अनेक रूपों वाला व्याप्त करके स्थित है।

अनुवाद– संसार से ऊपर त्रिपाद पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है, अर्थात्–संसार के गुण–दोषों से रहित है। इस पुरुष का एक भाग यहाँ यह विश्व के रूप में पुनः पुनः उत्पन्न होता रहता है, अर्थात् इसमें सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय होते रहते हैं। इसके पश्चात् अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति होने पर अन्न खाने वाले और अन्न न खाने वाले; अर्थात् चेतन और अचेतन जगत् को लक्ष्य करके अनेक रूपों वाला पुरुष, विश्व को चारों ओर से व्याप्त करके स्थित है।

भावार्थ– त्रिपाद पुरुष ऊपर द्युलोक में रहता है। इस विराट् पुरुष का एक भाग यहाँ इस विश्व के रूप में पुनः पुनः उत्पन्न होता रहता है। पश्चात् उसने भोजन करने वाले और भोजन न करने वाले विश्व को चारों ओर से व्याप लिया।

टिप्पणी व्याकरण – उदैत् = उत्+इ लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **व्यक्रामत्** = वि+क्रम् लङ्लकार प्र० पु० एकवचन।

तस्मा॑द्विराळजायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥५॥

शब्दार्थ – तस्मात् = उस परमात्मा से। **विराट्** = विराट् पुरुष। **अजायत** = उत्पन्न हुआ। **विराजः** = विराट् के। **अधि** = ऊपर एक अधिष्ठाता। **पुरुषः** = पुरुष हुआ। **सः** = वह। **जातः** = उत्पन्न होने पर। **अत्यरिच्यत** = विभक्त होने लगा। **पश्चात्** = प्रथम (उस पुरुष ने)। **भूमिम्** = भूमि आदि गोल हुए। **अथो** = अन्तर (पश्चात्)। **पुरः** = शरीर हुए।

अनुवाद – उस परमात्मा से विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ। विराट् के ऊपर एक अधिष्ठाता पुरुष हुआ। वह उत्पन्न होने पर विभक्त होने लगा। प्रथम भूमि आदि गोल हुए। अनन्तर उस पर के शरीर हुए।

भावार्थ – उस आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड–देह, व्यक्त जगत्) उत्पन्न हुआ। विराट् का आश्रय लेकर उस से पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होने पर विभक्त होने लगा; अर्थात् पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के रूप में चेतनता को प्राप्त करके अन्य जगत् से बढ़कर था। पश्चात् उस पुरुष ने भूमि को और शरीरों को बनाया।

टिप्पणी व्याकरण – विराट् = विशेषेण राजते अर्थ में– वि+राज्+क्विप्। **अत्यरिच्यतः** = अतिरिचिर् (रिच्) धातु, कर्म कारक में लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **पुरः** = पूर्यन्ते सप्यभिः धातुभिः अर्थ में पुर् + क्विप्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन

यत् पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा यज्ञमत॑न्वत।
व॒स॒न्तो अ॑स्यासी॒दाज्यं ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः॥ ६॥

अन्वय – यत् देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत, अस्य वसन्तः आज्यं आसीत्, ग्रीष्मः इध्मः शरत् हविः।

शब्दार्थ – यत् = जब। **देवाः** = देवों ने। **पुरुषेण हविषा** = विराट् पुरुष रूपी हवि के द्वारा। **यज्ञम्** = यज्ञ करना। **अतन्वत** = शुरू किया। **अस्य** = इस यज्ञ में। **वसन्तः** = वसन्त ऋतु। **आज्यम्** = घी का कार्य करता। **आसीत्** = था। **ग्रीष्मः** = ग्रीष्म ऋतु। **इध्मः** = ईंधन। **शरत्** = शरद् ऋतु। **हविः** = हवन हुआ था।

अनुवाद – जब देवों ने विराट् पुरुष रूपी हवि के द्वारा यज्ञ करना शुरू किया। तब वसन्त ऋतु इस यज्ञ में घी का कार्य करता था, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और शरद् ऋतु हवन हुआ था।

भावार्थ – जब देवताओं ने सृष्टि के क्रम को आगे बढ़ाने के लिये पुरुष रूप हवि के द्वारा यज्ञ को किया; अर्थात् आगे सृष्टि की रचना का आरम्भ किया तो वसन्त ऋतु इस यज्ञ का घृत था, ग्रीष्म ईंधन और शरद् ऋतु हवन बनी। अर्थात् विभिन्न ऋतुयें उत्पन्न हुईं।

टिप्पणी व्याकरण – यत्–यह 'यदा' का वैदिक रूपान्तर है। **अतन्वत**– 'तनु विस्तारे' धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **आज्यम्** – 'अञ्ज्' धातु 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय। **इध्मः** – इन्ध् धातु से निपातनात् बनता है।

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न् पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः।
तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये॥ ७॥

अन्वय – तं अग्रतः जातं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन्, ये देवाः साध्याः ऋषयः च तेन अयजन्त।

शब्दार्थ – तम् = उस। **अग्रतः** = प्रथम। **जातं यज्ञम्** = उत्पन्न हुए यजनीय। **पुरुषम्** = विराट् पुरुष को। **बर्हिषि** = यज्ञ में (मानसिक यज्ञ में)। **प्रौक्षन्** = प्रोक्षण करके (जल छिड़का)। **ये देवाः** = जो देव। **साध्याः** = साध्य। **ऋषयः** = ऋषि थे। **च** = और। **तेन** = उस विराट् पुरुष से। **अयजन्त** = यज्ञ चलाया था।

अनुवाद – उस प्रथम उत्पन्न हुए यजनीय विराट् पुरुष को यज्ञ में प्रोक्षण (जल छिड़क कर) करके जो देव, साध्य और ऋषि थे, उन्होंने उस विराट् पुरुष से ही यज्ञ चलाया था।

भावार्थ – उस प्रथम अर्थात् सृष्टि से पूर्व उत्पन्न हुये, यजनीय विराट् पुरुष को यज्ञ की वेदी पर देवताओं ने प्रोक्षण करके अर्थात् उसको जल छिड़क कर पवित्र किया। उस प्रोक्षित पुरुष रूप पशु से देवताओं ने, साध्य अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के साधनभूत प्रजापति आदियों ने और मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यजन किया।

टिप्पणी व्याकरण – प्रौक्षन् = प्र+ उक्ष् सेचने, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **साध्याः** = साध्+ण्यत् = साध्य। **अयजन्त** = यज् धातु, लङ् लकार प्रथमपुरुष, बहुवचन।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात् स॑र्व॒हुत॒ संभृ॑तं पृषदा॒ज्यम्।
प॒शून् ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॑ नार॒ण्यान् ग्रा॒म्याश्च॒ ये॥ ८॥

अन्वय – तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् पृषद् आज्यं संभृतम्। तान् वायव्यान् आरण्यान् पशून् ये ग्राम्याः चक्रे।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस। **सर्वहुतः** = सर्वहुत (जिसमें सभी कुछ आहुत कर दिया जाता है)। **यज्ञात्** = यज्ञ से। **पृषद् आज्यम्** = दही के साथ मिला घी। **संभृतम्** = प्राप्त हुआ। **तान्** = उन। **वायव्यान्** = वायु में उड़ने वाले पक्षी। **आरण्यान्** = जंगल में रहने वाले। **पशून्** = पशुओं को। **ये ग्राम्याः** = ग्राम्य पशु। **चक्रे** = बनायें।

अनुवाद – उस सर्वहुत यज्ञ से दही के साथ मिला घी प्राप्त हुआ। वायु में उड़ने वाले पक्षी तथा वायु देवता के जंगल में रहने वाले उन पशुओं को तथा ग्राम्य पशुओं को बनाया।

भावार्थ – जिस यज्ञ में सभी कुछ आहुत कर दिया जाता है, ऐसे इस यज्ञ से दही से युक्त घी बनाया गया और उसने वायु या अन्तरिक्ष में विचरने वाले पशु, अर्थात् पक्षी, जंगलों में रहने वाले हरिण आदि पशु और जो गाँवों में रहने वाले अश्व, गौ आदि पशु हैं, वे भी बनाये।

टिप्पणी व्याकरण सम्बन्धि

सर्वहुतः = सर्व+हु+क्विप् = सर्वहुत्। पञ्चमी विभक्ति का एकवचन। **संभृतम्** = सम्+भृ+क्त= संभृत। **पृषदाज्यम्** = पृषत् च आज्यम् च तयोः समाहारः। **वायव्यान्** = वायु+यत्= वायव्य। **आरण्यान्** = आरण्य+अण् (अ) = आरण्य। **ग्राम्याः** = ग्राम्+यत् = ग्राम्य।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ९॥

अन्वय – तस्मात् सर्वहुः यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे। तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुः अजायत्।

शब्दार्थ – **तस्मात्** = उस। **सर्वहुतः** = सर्वहुत। **यज्ञात्** = यज्ञ से। **ऋचः** = ऋग्वेद के मन्त्र। **सामानि** = सामगान। **जज्ञिरे** = बने। **तस्मात्** = उसी से। **छन्दांसि** = छन्द अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र। **जज्ञिरे** = उत्पन्न हुए। **तस्मात्** = उसी से। **यजुः** = यजुर्वेद के मंत्र भी। **अजायत्** = उत्पन्न हुए।

अनुवाद – उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्वेद के मन्त्र तथा सामगान बने। छन्द अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र भी उसी से उत्पन्न हुए, और उसी से यजुर्वेद के मन्त्र भी उत्पन्न हुए।

भावार्थ – जिस यज्ञ में सबका आत्मरूप पुरुष आहुत कर दिया जाता है, ऐसे उस यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुये। उसी से गायत्री आदि छन्द, अर्थात् अथर्ववेद और उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

टिप्पणी व्याकरण– ऋच्+क्विप्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **सामानि** = षो (सो) + मनिन्= सामन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। नपुंसकलिङ्ग। **यज्ञिरे**–'जनी प्रादुर्भावे' धातु लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **अजायत्**–'जनि प्रादुर्भावे' धातु लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

तस्मा॒दश्वा॑ अजाय॒न्त ये के चो॑भ॒याद॑तः।
गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त् तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वय॑ः ॥ १० ॥

अन्वय– तस्मात् अश्वाः अजायन्त ये के च उभयादतः तस्मात् गावः ह जज्ञिरे तस्मात् अजावयः जाताः।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस सर्वहुत यज्ञ से। **अश्वाः** = घोड़े। **अजायन्त**= उत्पन्न हुए। **ये के च** = और जो (घोड़ों के अतिरिक्त)। **उभयादतः** = दोनों ओर दांत वाले हैं। **तस्मात्** = उसी से। **गावः** = गौवें। **ह जज्ञिरे** = उत्पन्न हुईं। **तस्मात्** = उसी से। **अजावयः** = बकरियाँ और भेड़ें। **जाताः** = उत्पन्न हो गयीं।

अनुवाद– उस सर्वहुत यज्ञ से घोड़े हुए, जो दोनों ओर दाँत वाले हैं। उसी से गौवें उत्पन्न हुईं और उसी से बकरियाँ और भेड़ें उत्पन्न हो गयीं।

भावार्थ – उस यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुये। और जो घोड़ों के अतिरिक्त ऊपर-नीचे दोनों ओर दान्तों वाले गधे, खच्चर आदि पशु हैं, वे उत्पन्न हुये। उसी से गायें उत्पन्न हुईं और उस यज्ञ से बकरियाँ और भेड़ें उत्पन्न हुई।

टिप्पणी व्याकरण– उभयादतः = उभयतः दन्ताः येषां ते अर्थ में, उभय+ दन्त। 'उभय' के अन्तिम 'अ' को दीर्घ और 'दन्त' को 'दत्' आदेश। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **अजावयः** = अजाश्च अवयश्च। अजावयः। द्वन्द्व समास।

यत् पुरु॑षं व्यद॑धुः क॒तिधा व्य॑कल्पयन्।
मुख॒ं किम॑स्य॒ कौ बा॒हू का ऊ॒रू पादा॑ उच्येते ॥११ ॥

अन्वय – यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यल्पयन्। अस्य मुखं किम्? कौ बाहू? कौ ऊरु पादौ उच्येते?

शब्दार्थ – यत् = जिस। **पुरुषम्** = पुरुष का। **व्यदधुः** = वर्णन किया है (विभाजित किया)। **कतिधा** = कितने (रूपों में) प्रकार से। **व्यकल्पयन्** = कल्पना की गयी है। **अस्य** = इसका। **मुखम्** = मुख। **किम्** = क्या है ? **बाहू** = दोनों बाहू। **कौ** = कौन है? **को ऊरू** = जांघे कौन सी है? **पादौ** = पांव। **उच्येते** = कहा जाता है?

अनुवाद – जिस पुरुष का यहां वर्णन किया है, उसकी कितने प्रकार से कल्पना की गयी है। इसका मुख क्या है? दोनों बाहू कौन सी हैं? उसकी जांघें कौन सी हैं? और उसके पांव कौन से हैं, ऐसा कहा जाता है?

भावार्थ – देवताओं ने जब विराट्रूप पुरुष को विभाजित किया तो उसकी कितने प्रकार से कल्पना की गयी। इस पुरुष का मुख कौन सा था? कौन सी भुजायें थीं? कौन सी जंघायें थीं? और कौन इसके पैर कहे जाते हैं?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १२॥

अन्वय – अस्य मुखं ब्राह्मणः आसीत् बाहू राजन्यः कृतः ऊरू अस्य तत् यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रः अजायत।

शब्दार्थ – **अस्य** = इस पुरुष का। **मुखम्** = मुख। **ब्राह्मणः** = ब्राह्मण (ज्ञानी)। **आसीत्** = हुआ है। **बाहु** = इस पुरुष के बाहु। **राजन्यः** = क्षत्रिय (शूर पुरुष)। **कृतः** = हुए हैं। **अस्य** = इसकी। **यद्** = जो। **ऊरु** = जांघें। **तत्** = वे। **वैश्यः** = वैश्य हैं। **पद्भ्याम्** = पावों से। **शूद्रः** = शूद्र। **अजायत** = हुआ है।

अनुवाद – इस पुरुष का मुख ब्राह्मण (ज्ञानी) हुआ है। इस पुरुष के बाहु क्षत्रिय अर्थात् शूर पुरुष हुए हैं। इसकी जो जांघें वे वैश्य हैं और पांवों के स्थान में शूद्र हुआ है।

भावार्थ – ब्राह्मण इस पुरुष के मुख से उत्पन्न हुआ है। भुजाओं से क्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय इसकी भुजाओं से उत्पन्न हुये। जो इसकी जाँघें थी, वे वैश्य हुये और इसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥ १३॥

अन्वय – मनसः चन्द्रमा जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखात् इन्द्रः च अग्निः च प्राणात् वायुः अजायत।

शब्दार्थ – **मनसः** = मन से। **चन्द्रमा** = चन्द्रमा। **जातः** = हुआ है।

चक्षोः = आँखों से। **सूर्यः** = सूर्य। **अजायत** = हुआ है। **मुखात्** = मुख से। **इन्द्रः** = इन्द्र। **च** = और। **अग्नि** = अग्नि हुए। **च** = और। **प्राणात्** = प्राण से। **वायुः** = वायु। **अजायत** = हुआ।

अनुवाद – इस परमात्मा के मन से चन्द्रमा हुआ है। आँखों से सूर्य हुआ है, मुख से इन्द्र और अग्नि हुए और प्राण से वायु हुआ।

भावार्थ – प्रजापतिरूप पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, आँख से सूर्य हुआ, मुख से इन्द्र, अग्नि उत्पन्न हुये और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

टिप्पणी – मन में शान्ति, आँखों में प्रकाश, मुख अर्थात् वाणी में शक्ति और पवित्रता तथा प्राणों में वायु का आना परमपुरुष (प्रजापति) द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं। **व्याकरण – चक्षो** :– 'चक्षु' शब्द, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'चक्षुषः' रूप होगा।

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षं शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्तत।
प॒द्भ्यां भू॒मिर्दि॒शः श्रोत्रा॒त् तथा॑ लो॒काँ अ॑कल्पयन्॥ १४॥

अन्वय – नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत् शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिः श्रोत्रात् दिशः तथा लोकान् अकल्पयन्।

शब्दार्थ – नाभ्याः = नाभि से। **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष लोक। **आसीत्** = हुआ है। **शीर्ष्णः** = सिर से। **द्यौः** = द्युलोक। **समवर्तत** = उत्पन्न हुआ। **पद्भ्याम्** = पांवों से। **भूमिः** = भूमि हुई। **श्रोत्रात्** = कानों से। **दिशः** = दिशाएं हुईं। तथा इस तरह। **लोकान्** = अन्य लोकों की। **अकल्पयन्** = रचना की।

अनुवाद – नाभि से अन्तरिक्षलोक हुआ है, सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ, पावों से भूमि हुई, कानों से दिशाएं हुईं, इस तरह अन्य लोकों की रचना की।

भावार्थ – उस परम पुरुष की नाभि से अन्तरिक्षलोक बना, सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ और दोनों पैरों से भूमि उत्पन्न हुई। कानों से दिशायें उत्पन्न हुईं। इस प्रकार उस पुरुष से देवताओं ने लोकों की रचना की है।

टिप्पणी व्याकरण – नाभ्याः = नाभि शब्द, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन। **शीर्ष्णः** – शिरस्, शब्द को वैदिक 'शीषर्न्' आदेश। पञ्चमी विभक्ति का एकवचन। **समवर्तत** = सम+वृत धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥ १५॥

अन्वय – अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवाः यत् यज्ञं तन्वानाः पुरुषं पशुं अबध्नन्।

शब्दार्थ – अस्य = इस यज्ञ की। **सप्त** = सात। **परिधयः** = परिधियें। **आसन्** = थीं। **त्रिः सप्त** = तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस। **समिधः** = समिधायें। **कृताः** = बनाई गई। **देवाः** = देव। **यत्** = जिस। **यज्ञम्** = यज्ञ को। **तन्वानाः** = फैला रहे थे। **पुरुषम्** = इस पुरुषरूपी। **पशुम्** = पशु को। **अबध्नन्** = बांधते थे।

अनुवाद – इस यज्ञ की सात परिधियें थीं और तीन गुणा सात, अर्थात् इक्कीस समिधायें थीं। देव जिस यज्ञ को फैला रहे थे, उसमें इस पुरुषरूपी पशु को बाँधते थे।

भावार्थ – देवताओं ने सृष्टि उत्पत्ति रूप मानस यज्ञ का सम्पादन करते हुये, जब विराट् पुरुषरूपी पशु को बाँधा, तो इस यज्ञ की सात परिधियाँ और इक्कीस समिधायें बनाई गईं। यज्ञ वेदी के चारों ओर चढ़ने उतरने के लिए जिन सीढ़ियों को बनाया जाता है, उनको परिधिं कहा जाता है। परिधियाँ तो तीन होती हैं, किन्तु प्रस्तुत मन्त्र में सात कही गई है। सायण ने गायत्री अनुष्टुप् आदि सात छन्दों को सात परिधि माना है। या आह्वनीय यज्ञ की तीन, उत्तर-वेदिका की तीन तथा आदित्य की प्रतिनिधि रूप एक = २१ समिधाएँ हैं, १२ वैशाखादि मास, ५ वसन्तादि ऋतुएँ, ३ लोक तथा आदित्य।

टिप्पणी व्याकरण– परिधयः – परि+धा + कि = परिधि। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **समिधः** – सम् + इन्ध् + क्विप् = समिध् प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **कृताः** – कृ + क्त = कृत। **तन्वानाः** – तनु + ड + शानच् = तन्वान् प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **अबध्नन्** – बन्ध् धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑: सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१६॥

अन्वय – देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त। तानि प्रथमानि धर्माणि आसन्। यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति, ते ह महिमानः नाकं सचन्त।

शब्दार्थ – देवाः = देवों ने। **यज्ञेन** = संकल्परूप मानस यज्ञ के द्वारा। **यज्ञम्** = परमपुरुष यज्ञरूप प्रजापति का। **अयजन्त** = यजन (पूजन) किया था। **तानि** = वे। **प्रथमानि** = प्रारंभ के। **धर्माणि** = धर्मश्रेष्ठ (धार्मिक लोक)। **आसन्** = थे। **यत्र** = यहाँ। **पूर्वे** = पूर्वसमय के। **साध्याः** = साधन सम्पन्न (सिद्धि को प्राप्त करने वाले)। **देवाः** = यज्ञ करने वाले लोग। **सन्ति** = रहते थे। **ते ह** = वे ही। **महिमानः** = महात्मा लोग। **नाकम्** = दिव्य स्वर्ग को। **सचन्त** = प्राप्त करते हैं।

अनुवाद – देवों ने संकल्परूप मानसयज्ञ के द्वारा परम पुरुष प्रजापति का यजन (पूजन) किया था। वे प्रारम्भ के धर्मश्रेष्ठ (धार्मिक लोग) थे। यहाँ पूर्व समय के साधन सम्पन्न (सिद्धि को प्राप्त करने वाले) यज्ञ करने वाले लोग रहते थे। वे ही महात्मा लोग दिव्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ – देवताओं ने इस यज्ञपुरुष के साधन से जो यज्ञ का कार्य करना प्रारम्भ किया था। उससे उत्पन्न हुये उनके वे धर्म (नियम या सृष्टि उत्पत्ति के विधान) सबसे मुख्य थे। यहाँ प्राचीन समय से साधन सम्पन्न यज्ञ करने वाले लोग रहते हैं, वे ही महात्मा लोग दिव्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– अयजन्त – यज् धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **धर्माणि** – धृ + मनिन् (मन्) = धर्म। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **नाकम्** – कमिति सुखम्। न + कः अकः दुःखम्। न + अकः = नाकः सुखम्। **महिमान** – महत् + इमनिच् = महिमन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **सचन्त** – षच् (सच्) लङ्लकार, प्रथमपुरुष का बहुवचन। वैदिक रूप है धातु के पूर्व का 'अ' लुप्त है। वर्तमान के अर्थ में लङ् लकार। **साध्याः** – साध् + ण्यत् = साध्य।

०००

२७. हिरण्यगर्भ सूक्त

मण्डल १० सूक्त १२१

ऋषि-हिरण्यगर्भ देवता-क संज्ञक प्रजापति छन्द त्रिष्टुप्

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत्।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १ ॥

अन्वय- अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्। सः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **अग्रे** = इस सृष्टि के निर्माण होने से पहले। **हिरण्यगर्भः** = हिरण्यगर्भ परमात्मा। **समवर्तत** = विद्यमान था (उत्पन्न हुआ)। **जातः** = वही उत्पन्न होते ही। **भूतस्य** = सब जगत् का। **पतिः** = एकमात्र अद्वितीय स्वामी। **आसीत्** = है। **सः** = वह। **पृथिवीं** = पृथिवी। **उत** = और। **इमाम्** = इस। **द्याम्** = अन्तरिक्ष को भी। **दाधार** = धारण करता है। **कस्मै** = उस सुखदायी। **देवाय** = परमेश्वर की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना-पूजा करते हैं।

अनुवाद -इस सृष्टि के निर्माण होने से पहले हिरण्यगर्भ परमात्मा विद्यमान था। वही उत्पन्न होते ही सब जगत् का एकमात्र अद्वितीय स्वामी है। वह इस अन्तरिक्ष को भी धारण करता है। उस सुखदायी परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना-पूजा करते हैं।

भावार्थ - परमात्मा का वह हिरण्यगर्भ रूप सबसे पहले अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से भी पूर्व विद्यमान था। उत्पन्न होते ही वह सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ। वह पृथिवी और द्युलोक को धारण किये हुये है। उस सुखस्वरूप हिरण्यगर्भ परमेश्वर का हम हवन के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-हिरण्यगर्भः - हिरण्यस्य हिरण्मयस्य गर्भः गर्भभूतः। षष्ठी तत्पुरुष समास। **हिरण्य** - हिरण्य+मयट्। 'हिरण्य' के 'य' और 'मयट्' के 'अ' का छान्दस लोप। **समवर्तत** - सम्+वृ धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **दाधार** - धृ धातु, लङ् लकार, प्र० पु० एकवचन।

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः।
यस्य॑ छा॒यामृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ २॥

अन्वय- यः आत्मदाः बलदाः यस्य प्रशिषं विश्वे यस्य देवाः उपासते यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ– यः = जो। **आत्मदा** = आत्मज्ञान देने वाला। **बलदाः** = बल देने वाला है। **यस्य** = जिसके। **प्रशिषम्** = उत्कृष्ट शासन को। **विश्वे** = सब लोग। **यस्य** = जिसकी आज्ञा को। **देवाः** = समस्त देव। **उपासते** = मानते हैं। **यस्य** = जिसकी शरणवत्। **छाया** = छाया। **अमृतम्** = अमृतरूपिणी है। **यस्य** = जिसकी शरण न लेना। **मृत्युः** = मृत्यु ही है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा (उत्तम प्रकार से)। **विधेम** = उपासना करते (पूजा करते) हैं।

अनुवाद - जो आत्मज्ञान देने वाला और बल देने वाला है, जिसके उत्कृष्ट शासन को सब लोग और जिसकी आज्ञा को समस्त देव मानते हैं। जिसकी शरण न लेना मृत्यु ही है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा (उत्तम प्रकार से) उपासना करते (पूजा करते) हैं।

भावार्थ - जो परमेश्वर जीवन और बल को देने वाला है, जिसके शासन को सभी प्राणी मानते हैं, जिसकी आज्ञा को सब देवता मानते हैं ; जिसकी शरण न लेना मृत्यु ही है। उस परमेश्वर हिरण्यगर्भ का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण - आत्मदाः - आत्मानं ददाति अर्थ में आत्मन् + दा + क्विप्। अथवा आत्मन् + दैप् शोधने + क्विप्। **बलदाः** - बलं ददाति अर्थ में बल + दा + क्विप् = बलदा। **प्रशिषम्** - प्र + शास् + क्विप् 'शास इदङ् हलोः' सूत्र से 'हत्व' और शासिवसिघसीनां च' सूत्र से 'स्' को 'ष्' आदेश।

प्रशिष्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **उपासते** - उप + अस् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **अमृतम्** - न मृतं मरणम् अस्मिन् तद् अमृतम् मोक्षः।

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ इद्राजा॒ जग॑तो बभूव॑।
य ईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम ॥ ३ ॥

अन्वय- यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव अस्य द्विपदः चतुष्पदः यः ईशे कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - यः = जो। **प्राणतः** = श्वास-प्रश्वास करने वाले। **निमिषतः** = आँख झपकने वाले। **जगतः** = सम्पूर्ण चर-जंगम जगत का। **महित्वा** = अपनी महिमा से। **एकः** = एक ही। **इत्** = अद्वितीय। **राजा** = राजा। **बभूव** = है। **अस्य** = इस। **द्विपदः** = दो पैरों वाले प्राणियों। **चतुष्पदः** = चतुष्पद (चौपायों) का। **यः** = जो। **ईशे** = स्वामी है। **कस्मै** = उस सुख प्रदान करने वाले। **देवाय** = परमेश्वर की। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना (भक्ति) करते हैं।

अनुवाद - जो श्वास-प्रश्वास करने वाले और आँख झपकने वाले सम्पूर्ण चर-जंगम जगत् का अपनी महिमा से एक ही अद्वितीय राजा है। और इस द्विपद (प्राणियों) और चतुष्पद (चौपायों) का जो स्वामी है। उस सुख प्रदान करने वाले परमेश्वर की हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - जो परमात्मा अकेला ही अपनी महिमा से श्वासोच्छ्वास लेने वाले और आँख झपकने वाले सम्पूर्ण गतिशील जगत् का राजा हुआ है, जो दो पैरों मनुष्य आदि तथा चार पैरों गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की सब प्रकार से हम उपासना (भक्ति) करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– प्राणतः - प्र + अन प्राणने + शतृ = प्राणत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **निमिषतः** - नि + मिष् + शतृ = निमिषत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **महित्वा** - महत् + त्व = महित्व। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **ईशे** - ईश् धातु, लट्लकार प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **द्विपदः** - द्वौ पादौ यस्य अर्थ में द्विपाद्। षष्ठी का एकवचन। **चतुष्पदः** - चत्वारः पादः यस्य = चतुष्पाद्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रं र॒सया॑ स॒हाहुः।
यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बाहू कस्मै॑ दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम ॥ ४॥

अन्वय- इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः रसया सह समुद्रम् यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेय।

शब्दार्थ - **इमे** = ये। **हिमवन्तः** = बर्फीले पर्वत। **यस्य** = जिसकी। **महित्वा** = महिमा को। **आहुः** = बतलाते हैं (कहते हैं)। **रसया** = नदियों। **सह** = के साथ। **समुद्रम्** = समुद्र (जिसकी महिमा को कहते हैं)। **यस्य** = जिसके महान् सामर्थ्य को। **इमाः** = ये। **प्रदिशः** = मुख्य दिशाएं। **यस्य** = जिसके। **बाहु** = बाहुवत् होकर (महान् सामर्थ्य को बतला रही हैं)। **कस्मै** = उस। **देवाय** = परमेश्वर की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - ये बर्फीले पर्वत जिसकी महिमा को बतलाते हैं और नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा को कहते हैं, जिसके महान् सामर्थ्य को ये मुख्य दिशायें, जिसके बाहुवत् होकर महान् सामर्थ्य को बतला रही हैं। उस परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - ये सब हिमाच्छन्न पर्वत जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति की महिमा को कहते हैं, जिसके महान् सामर्थ्य नदियों के साथ समुद्र बतला रहे हैं और ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) जिसके बाहुवत् होकर जिसकी महिमा को कहती हैं। उस परमेश्वर का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ळहा येन॒ स्वः स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑।
यो अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम॥ ५॥

अन्वय- येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ- **येन** = जिस प्रजापति ने। **द्यौः** = द्युलोक को। **उग्रा** = ऊपर उठाया हुआ है। **च** = और। **पृथिवी** = पृथिवी को। **दृळहा** = स्थिर कर दिया -है। **येन** = जिसने। **स्वः** = स्वर्गलोक को। **स्तभितम्** = ऊपर थामा हुआ है।

येन = (और) जिसने। **नाकः** = सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया। **यः** = जो। **अन्तरिक्षे** = आकाश में। **रजसः** = उदक का। **विमानः** = निर्माण करता है। **कस्मै** = उस एकमेव सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर का हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजन करते हैं।

अनुवाद – जिस प्रजापति ने द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है। और पृथिवी को स्थिर कर दिया है। जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया और जो आकाश में उदक का निर्माण करता है। उस एकमेव सुखस्वरूप परमेश्वर का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

भावार्थ – जिस से यह आकाश–अन्तरिक्ष सामर्थ्य सम्पन्न हुआ और पृथिवी स्थिर रूप से स्थापित हुई है। जिसने स्वर्ग को स्थिर किया और जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है, उस सुखस्वरूप हिरण्यगर्भ प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण सम्बन्धी– **दृळ्हा** – दृह् + क्त + टाप् = दृळ्हा। **उग्रा** – उद् + गुरी उद्यमने + क (अ) + टाप् = उग्रा। **स्तभितम्** – स्तम्भ धातु से निपात् 'क्त' होकर निष्पन्न होता है। **विमानः** – विविध मानं निर्माणं यस्य सः विमानः। वि + मा + ल्युट् (अन)।

यं क्रन्द॑सी॒ अव॑सा तस्तभा॒ने अ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने।
यत्राधि॒ सूर॒ उदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ६ ॥

अन्वय– क्रन्दसी अवसा तस्तभाने रेजमाने यं मनसा अभ्यैक्षेताम्। यत्राधि सूरः उदितः विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – **क्रन्दसी** = द्युलोक और पृथिवी लोगों की। **अवसा** = रक्षा के लिये। **तस्तभाने** = स्थिरभूत होकर। (और) **रेजमाने** = अत्यन्त प्रकाशित होकर। **यम्** = जिसको। **मनसा** = मन से। **अभ्यैक्षेताम्** = प्रत्यक्ष देखते हैं। **यत्राधि** = जिसे आश्रय से। **सूरः** = सूर्य। **उदितः** = उदित होकर (आकाश में) **विभाति** = चमकता है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = प्रजापति का हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजन करते हैं।

अनुवाद - द्युलोक और पृथिवीलोक की रक्षा के लिये स्थिरभूत होकर और अत्यन्त प्रकाशित होकर जिसको मन से देखते हैं। जिसके आश्रय से सूर्य उदित होकर (आकाश में) चमकता है। उस सुखस्वरूप प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

भावार्थ - संसार की रक्षा करने के लिये और प्रकाशमान् होते हुये द्युलोक और पृथिवीलोक जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति को अपने मन से देखते हैं इस प्रकार देखते हैं, जिसके आश्रय से सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है, उस सुखस्वरूप प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– क्रन्दसी - क्रन्द् + असून् = क्रन्दस्। स्त्रीलिंग में प्रथमा का द्विवचन। **अवसा** - अव + असुन् = अवस्। तृतीया का एकवचन। **तस्तभाने** - स्तभ्भ् + कानच् + टाप् = तस्तभाना। प्रथमा का द्विवचन। **रेजमाने** - राज् + कानच् + टाप् = रेजमाना 'फणाञ्च सप्तानाम्' नियम से एत्व और अभ्यास का लोप। **अभ्यैक्षेताम्** - अभि + ईक्ष् धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन। **उदितः** - उत् + इ + क्त = उदितः।

आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्वि॑श्व॒माय॒न् गर्भ॒ं द॒धा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम्।
ततो॑ दे॒वाना॒ं सम॑वर्त॒तासु॒रेक॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ७॥

अन्वय- बृहतीः अग्निं जनयन्तीः गर्भे दधानाः आपः ह विश्वं आयन्। यत् ततः देवानां असुः एकः समवर्तत कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **बृहतीः** = महान्। **अग्निम्** = अग्न्यादि समस्त जगत् को। **जनयन्ती** = उत्पन्न करने वाला (और)। **गर्भम्** = हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को। **दधानाः** = धारण करने वाला। **आपः** = जल। **ह** = ही। **विश्वम्** = सब जगत् को। **आयन्** = व्यापता है। (और) **यत्** = जिससे। **ततः** = उस कारण। **देवानाम्** = देवादि सब प्राणियों का। **असुः** = प्राणभूत वायु। **एकः** = एक अद्वितीय प्रजापति। **समवर्तत** = उत्पन्न हुआ। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर की हम **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - महान् अग्न्यादि समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला और हिरण्यगर्भरूप प्रजापति को धारण करने वाला जल ही सब जगत् को व्यापता

है। और जिससे उस कारण देवादि सब प्राणियों का प्राणभूत वायु एक अद्वितीय प्रजापति उत्पन्न हुआ। उस सुख स्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - महान् अग्न्यादि (अग्नि के उपलक्षण से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँच महाभूतों का ग्रहण किया जाता है।) समस्त जगत् को और हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को गर्भ के रूप में धारण करने वाला, जल ही सब जगत् को व्याप्त किया हुआ था। उसके बाद देवताओं का एक प्राणभूत वायु एक अद्वितीय प्रजापति उत्पन्न हुआ। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– **बृहतीः** – 'बृहतीशब्द' प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'बृहत्यः' रूप होगा। **दधानाः** – धा + शानच् + टाप् = दधाना। **जनयन्तीः** – णिजन्त जन् धातु + शतृ + ङीप् = जनयन्तीः। **आयन्** – 'इण् गतौ' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द् द॒क्षं दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम्।
यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त् कस्मै दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम ॥८॥

अन्वय– यज्ञं जनयन्तीः दक्षं आपः दधानाः महिना यः चित् पर्यपश्यत् यः देवेषु अधि एकः देवः आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **यज्ञम्** = जिसने यज्ञ। **जनयन्ती** = उत्पन्न करने वाला। **दक्षम्** = सृष्टि-उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को। **आपः** = (और) प्रलय-कालीन जल को। **दधानाः** = उत्पन्न किया (धारण किया), **महिना** = जिसने अपनी महिमा से। **यः चित्** = उस जल के ऊपर। **पर्यपश्यत्** = चारों ओर निरीक्षण किया। (और) **यः** = जो। **देवेषु** = देवों में। **अधि** = जो उनका भी स्वामी है। **एकः** = एक अद्वितीय। **देवः** = देव। **आसीत्** = है। **कस्मै** = उस परम पुरुष सुख स्वरूप। **देवाय** = देव की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - जिसने यज्ञ उत्पन्न करने वाला, सृष्टि-उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को, और प्रलय-कालीन जल को उत्पन्न किया (धारण किया) जिसने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया। और जो देवों में जो

उनका भी स्वामी है, एक अद्वितीय देव है, उस परम सुखस्वरूप देव की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ – जो हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि उत्पत्तिरूप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले और प्रलयकालीन जल को धारण करने वाले, जिसने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया और जो सभी देवों के मध्य में उनका अद्वितीय देव है, उस परम सुखस्वरूप देव की हम उपासना करते हैं।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥

अन्वय- नः मा हिंसीत् यः पृथिव्याः जनिता यः वा सत्यधर्मा दिवं जजान। यः च बृहतीः चन्द्राः अपिः जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **नः** = हमें। **मा हिंसीत्** = पीडित न करे। **यः** = जो। **पृथिव्याः** = पृथ्वी का। **जनिता** = जनिता-सृष्टि को रचने वाला है। **यः** = जो। **वा सत्य धर्मा** = सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है। **दिवम्** = स्वर्ग का। **जजान** = निर्माण करता है। **च** = और। **यः** = जो। **बृहतीः** = महान्। **चन्द्राः** = आनन्द प्रदान करने वाले जल को। **अपि** = भी। **जजान** = उत्पन्न कर्ता है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमात्मा की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजा करते हैं।

अनुवाद - वह परमात्मा हमें पीडित न करें जो पृथ्वी का जनिता-सृष्टि को रचने वाला है, जो सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है और जो स्वर्ग का निर्माता है और जो महान् आनन्द प्रदान करने वाले जल को भी उत्पन्न करता है। उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम हवि के द्वारा पूजा करते हैं।

भावार्थ - वह हमारी हिंसा न करें, जो सारी पृथिवी को रचने वाला है और जो सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया था। और जिसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया है। उस परमेश्वर की हम उत्तम प्रकार से उपासना करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– हिंसत् - 'हिंस्' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष,

एकवचन। ''न माङ्योगे'' सूत्र से 'मा' के योग में 'अर' का अभाव। **जनिता** – जन् + णिच् + तृच्। 'इट्' का 'आगम' 'जनितामन्त्रे' नियम से 'णिच्' का लोप = जनितृ। प्रथमा विभक्ति का एकवचन। लोक में 'जनयिता' रूप होगा। **सत्यधर्मा** – सत्यः धर्मः यस्य सः। बहुब्रीहि समास। सत्य + धर्म + अनिच् = सत्यधर्मन् प्रथमा का एकवचन। **चन्द्रः** – 'चदि आह्लादे' धातु से 'अच्' और 'नुम्' का आगम। **जजान** – णिजन्त जन् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

अन्वय– प्रजापते त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परि बभूव। यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु वयं रयीणां पतयः स्याम।

शब्दार्थ – **प्रजापते** = हे प्रजापति। **त्वत्** = तेरे। **अन्यः** = सिवाय दूसरा कोई। **एतानि** = इन वर्तमान, भूत और भविष्य के। **विश्वा जातानि** = समस्त उत्पन्न वस्तुओं की। **ता न** = उन सारे भूतकालीन पदार्थों को जगत् में नहीं। **परि बभूव** = व्याप सकता, अर्थात् तू ही व्यापता है। **यत् कामः** = जिस फल की कामना करते हुये। **ते** = हम तेरी। **जुहुमः** = उपासना (हवन) करते हैं। **तत्** = वह फल। **नः** = हमें। **अस्तु** = प्राप्त हो। **वयम्** = हम। **रयीणाम्** = समस्त ऐश्वर्यों के। **पतयः** = स्वामी। **स्याम** = हों।

अनुवाद – हे प्रजापति ! तेरे सिवाय दूसरा कोई इन वर्तमान, भूत और भविष्य के समस्त उत्पन्न वस्तुओं को उन सारे भूतकालीन पदार्थों को जगत् में नहीं व्याप सकता, अर्थात् तू ही व्यापता है। जिस फल की कामना करते हुये हम तेरी उपासना (हवन) करते हैं, वह फल हमें प्राप्त हो। हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

भावार्थ – हे परमात्मा ! तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुये पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त किये हुये नहीं है; अर्थात् तुम ही इन सबको व्याप्त करते हो। जिसकी अभिलाषा करके हम तेरी पूजा करते हैं, वह इच्छा हमारी पूरी हो और हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होवें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-हिरण्यगर्भः – हिरण्यस्य हिरण्मयस्य गर्भः गर्भभूतः। षष्ठी तत्पुरुष समास। **हिरण्य** – हिरण्य+मयट्। 'हिरण्य' के 'य' और 'मयट्' के 'अ' का छान्दस लोप। **समवर्तत** – सम्+वृ धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **दाधार** – धृ धातु, लङ् लकार, प्र० पु० एकवचन।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २॥

अन्वय- यः आत्मदाः बलदाः यस्य प्रशिषं विश्वे यस्य देवाः उपासते यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ– यः = जो। **आत्मदा** = आत्मज्ञान देने वाला। **बलदाः** = बल देने वाला है। **यस्य** = जिसके। **प्रशिषम्** = उत्कृष्ट शासन को। **विश्वे** = सब लोग। **यस्य** = जिसकी आज्ञा को। **देवाः** = समस्त देव। **उपासते** = मानते हैं। **यस्य** = जिसकी शरणवत्। **छाया** = छाया। **अमृतम्** = अमृतरूपिणी है। **यस्य** = जिसकी शरण न लेना। **मृत्युः** = मृत्यु ही है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा (उत्तम प्रकार से)। **विधेम** = उपासना करते (पूजा करते) हैं।

अनुवाद - जो आत्मज्ञान देने वाला और बल देने वाला है, जिसके उत्कृष्ट शासन को सब लोग और जिसकी आज्ञा को समस्त देव मानते हैं। जिसकी शरण न लेना मृत्यु ही है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा (उत्तम प्रकार से) उपासना करते (पूजा करते) हैं।

भावार्थ - जो परमेश्वर जीवन और बल को देने वाला है, जिसके शासन को सभी प्राणी मानते हैं, जिसकी आज्ञा को सब देवता मानते हैं ; जिसकी शरण न लेना मृत्यु ही है। उस परमेश्वर हिरण्यगर्भ का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण - **आत्मदाः** - आत्मानं ददाति अर्थ में आत्मन् + दा + क्विप्। अथवा आत्मन् + दैप् शोधने + क्विप्। **बलदाः** - बलं ददाति अर्थ में बल + दा + क्विप् = बलदा। **प्रशिषम्** - प्र + शास् + क्विप् 'शास इदङ् हलोः' सूत्र से 'हत्व' और शासिवसिघसीनां च' सूत्र से 'स्' को 'ष्' आदेश।

प्रशिष्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **उपासते** – उप + अस् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। **अमृतम्** – न मृतं मरणम् अस्मिन् तद् अमृतम् मोक्षः।

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ इद्राजा॒ जग॑तो बभूव॑।
य ईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम ॥ ३ ॥

अन्वय– यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव अस्य द्विपदः चतुष्पदः यः ईशे कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – **यः** = जो। **प्राणतः** = श्वास–प्रश्वास करने वाले। **निमिषतः** = आँख झपकने वाले। **जगतः** = सम्पूर्ण चर–जंगम जगत का। **महित्वा** = अपनी महिमा से। **एकः** = एक ही। **इत्** = अद्वितीय। **राजा** = राजा। **बभूव** = है। **अस्य** = इस। **द्विपदः** = दो पैरों वाले प्राणियों। **चतुष्पदः** = चतुष्पद (चौपायों) का। **यः** = जो। **ईशे** = स्वामी है। **कस्मै** = उस सुख प्रदान करने वाले। **देवाय** = परमेश्वर की। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना (भक्ति) करते हैं।

अनुवाद – जो श्वास–प्रश्वास करने वाले और आँख झपकने वाले सम्पूर्ण चर–जंगम जगत् का अपनी महिमा से एक ही अद्वितीय राजा है। और इस द्विपद (प्राणियों) और चतुष्पद (चौपायों) का जो स्वामी है। उस सुख प्रदान करने वाले परमेश्वर की हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ – जो परमात्मा अकेला ही अपनी महिमा से श्वासोच्छ्वास लेने वाले और आँख झपकने वाले सम्पूर्ण गतिशील जगत् का राजा हुआ है, जो दो पैरों मनुष्य आदि तथा चार पैरों गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की सब प्रकार से हम उपासना (भक्ति) करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– प्राणतः – प्र + अन प्राणने + शतृ = प्राणत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **निमिषतः** – नि + मिष् + शतृ = निमिषत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। **महित्वा** – महत् + त्व = महित्व। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **ईशे** – ईश् धातु, लट्लकार प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **द्विपदः** – द्वौ पादौ यस्य अर्थ में द्विपाद्। षष्ठी का एकवचन। **चतुष्पदः** – चत्वारः पादः यस्य = चतुष्पाद्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४॥

अन्वय- इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः रसया सह समुद्रम् यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेय।

शब्दार्थ - इमे = ये। **हिमवन्तः** = बर्फीले पर्वत। **यस्य** = जिसकी। **महित्वा** = महिमा को। **आहुः** = बतलाते हैं (कहते हैं)। **रसया** = नदियों। **सह** = के साथ। **समुद्रम्** = समुद्र (जिसकी महिमा को कहते हैं)। **यस्य** = जिसके महान् सामर्थ्य को। **इमाः** = ये। **प्रदिशः** = मुख्य दिशाएं। **यस्य** = जिसके। **बाहु** = बाहुवत् होकर (महान् सामर्थ्य को बतला रही हैं)। **कस्मै** = उस। **देवाय** = परमेश्वर की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - ये बर्फीले पर्वत जिसकी महिमा को बतलाते हैं और नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा को कहते हैं, जिसके महान् सामर्थ्य को ये मुख्य दिशायें, जिसके बाहुवत् होकर महान् सामर्थ्य को बतला रही हैं। उस परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - ये सब हिमाच्छन्न पर्वत जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति की महिमा को कहते हैं, जिसके महान् सामर्थ्य नदियों के साथ समुद्र बतला रहे हैं और ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) जिसके बाहुवत् होकर जिसकी महिमा को कहती हैं। उस परमेश्वर का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥

अन्वय- येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ- येन = जिस प्रजापति ने। **द्यौः** = द्युलोक को। **उग्रा** = ऊपर उठाया हुआ है। **च** = और। **पृथिवी** = पृथिवी को। **दृळहा** = स्थिर कर दिया -है। **येन** = जिसने। **स्वः** = स्वर्गलोक को। **स्तभितम्** = ऊपर थामा हुआ है।

येन = (और) जिसने। **नाकः** = सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया। **यः** = जो। **अन्तरिक्षे** = आकाश में। **रजसः** = उदक का। **विमानः** = निर्माण करता है। **कस्मै** = उस एकमेव सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर का हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजन करते हैं।

अनुवाद – जिस प्रजापति ने द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है। और पृथिवी को स्थिर कर दिया है। जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया और जो आकाश में उदक का निर्माण करता है। उस एकमेव सुखस्वरूप परमेश्वर का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

भावार्थ – जिस से यह आकाश–अन्तरिक्ष सामर्थ्य सम्पन्न हुआ और पृथिवी स्थिर रूप से स्थापित हुई है। जिसने स्वर्ग को स्थिर किया और जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थिर बनाया, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है, उस सुखस्वरूप हिरण्यगर्भ प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण सम्बन्धी– दृळ्हा – दृह् + क्त + टाप् = दृळ्हा। **उग्रा** – उद् + गुरी उद्यमने + क (अ) + टाप् = उग्रा। **स्तभितम्** – स्तम्भ धातु से निपात् 'क्त' होकर निष्पन्न होता है। **विमानः** – विविध मानं निर्माणं यस्य सः विमानः। वि + मा + ल्युट् (अन)।

यं क्रन्द॑सी॒ अव॑सा तस्तभा॒ने अ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने।
यत्राधि॒ सूर॒ उदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ६॥

अन्वय– क्रन्दसी अवसा तस्तभाने रेजमाने यं मनसा अभ्यैक्षेताम्। यत्राधि सूरः उदितः विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – **क्रन्दसी** = द्युलोक और पृथिवी लोगों की। **अवसा** = रक्षा के लिये। **तस्तभाने** = स्थिरभूत होकर। (और) **रेजमाने** = अत्यन्त प्रकाशित होकर। **यम्** = जिसको। **मनसा** = मन से। **अभ्यैक्षेताम्** = प्रत्यक्ष देखते हैं। **यत्राधि** = जिसे आश्रय से। **सूरः** = सूर्य। **उदितः** = उदित होकर (आकाश में) **विभाति** = चमकता है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = प्रजापति का हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजन करते हैं।

अनुवाद - द्युलोक और पृथिवीलोक की रक्षा के लिये स्थिरभूत होकर और अत्यन्त प्रकाशित होकर जिसको मन से देखते हैं। जिसके आश्रय से सूर्य उदित होकर (आकाश में) चमकता है। उस सुखस्वरूप प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

भावार्थ - संसार की रक्षा करने के लिये और प्रकाशमान् होते हुये द्युलोक और पृथिवीलोक जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति को अपने मन से देखते हैं इस प्रकार देखते हैं, जिसके आश्रय से सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है, उस सुखस्वरूप प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– क्रन्दसी - क्रन्द् + असून् = क्रन्दस्। स्त्रीलिंग में प्रथमा का द्विवचन। **अवसा** - अव + असुन् = अवस्। तृतीया का एकवचन। **तस्तभाने** - स्तभ्भ् + कानच् + टाप् = तस्तभाना। प्रथमा का द्विवचन। **रेजमाने** - राज् + कानच् + टाप् = रेजमाना 'फणाञ्च सप्तानाम्' नियम से एत्व और अभ्यास का लोप। **अभ्यैक्षेताम्** - अभि + ईक्ष् धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन। **उदितः** - उत् + इ + क्त = उदितः।

आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भ॒ं दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम्।
ततो॑ दे॒वानां॒ सम॑वर्त॒तासु॒रेक॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ७॥

अन्वय- बृहतीः अग्निं जनयन्तीः गर्भे दधानाः आपः ह विश्वं आयन्। यत् ततः देवानां असुः एकः समवर्तत कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **बृहतीः** = महान्। **अग्निम्** = अग्न्यादि समस्त जगत् को। **जनयन्ती** = उत्पन्न करने वाला (और)। **गर्भम्** = हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को। **दधानाः** = धारण करने वाला। **आपः** = जल। **ह** = ही। **विश्वम्** = सब जगत् को। **आयन्** = व्यापता है। (और) **यत्** = जिससे। **ततः** = उस कारण। **देवानाम्** = देवादि सब प्राणियों का। **असुः** = प्राणभूत वायु। **एकः** = एक अद्वितीय प्रजापति। **समवर्तत** = उत्पन्न हुआ। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमेश्वर की हम **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - महान् अग्न्यादि समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला और हिरण्यगर्भरूप प्रजापति को धारण करने वाला जल ही सब जगत् को व्यापता

है। और जिससे उस कारण देवादि सब प्राणियों का प्राणभूत वायु एक अद्वितीय प्रजापति उत्पन्न हुआ। उस सुख स्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - महान् अग्न्यादि (अग्नि के उपलक्षण से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँच महाभूतों का ग्रहण किया जाता है।) समस्त जगत् को और हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को गर्भ के रूप में धारण करने वाला, जल ही सब जगत् को व्याप्त किया हुआ था। उसके बाद देवताओं का एक प्राणभूत वायु एक अद्वितीय प्रजापति उत्पन्न हुआ। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण– बृहतीः – 'बृहतीशब्द' प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'बृहत्यः' रूप होगा। **दधानाः** – धा + शानच् + टाप् = दधाना। **जनयन्तीः** – णिजन्त जन् धातु + शतृ + ङीप् = जनयन्तीः। **आयन्** – 'इण् गतौ' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द् दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम्।
यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त् कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ८ ॥

अन्वय– यज्ञं जनयन्तीः दक्षं आपः दधानाः महिना यः चित् पर्यपश्यत् यः देवेषु अधि एकः देवः आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - **यज्ञम्** = जिसने यज्ञ। **जनयन्ती** = उत्पन्न करने वाला। **दक्षम्** = सृष्टि-उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को। **आपः** = (और) प्रलय-कालीन जल को। **दधानाः** = उत्पन्न किया (धारण किया), **महिना** = जिसने अपनी महिमा से। **यः चित्** = उस जल के ऊपर। **पर्यपश्यत्** = चारों ओर निरीक्षण किया। (और) **यः** = जो। **देवेषु** = देवों में। **अधि** = जो उनका भी स्वामी है। **एकः** = एक अद्वितीय। **देवः** = देव। **आसीत्** = है। **कस्मै** = उस परम पुरुष सुख स्वरूप। **देवाय** = देव की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = उपासना करते हैं।

अनुवाद - जिसने यज्ञ उत्पन्न करने वाला, सृष्टि-उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को, और प्रलय-कालीन जल को उत्पन्न किया (धारण किया) जिसने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया। और जो देवों में जो

उनका भी स्वामी है, एक अद्वितीय देव है, उस परम सुखस्वरूप देव की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

भावार्थ - जो हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि उत्पत्तिरूप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले और प्रलयकालीन जल को धारण करने वाले, जिसने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया और जो सभी देवों के मध्य में उनका अद्वितीय देव है, उस परम सुखस्वरूप देव की हम उपासना करते हैं।

मा नो॑ हिंसीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या यो वा॒ दिवं॑ स॒त्यध॑र्मा ज॒जान॑।
यश्चा॒पश्च॒न्द्रा बृ॑ह॒तीर्ज॒जान॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ हविषा॑ विधेम ॥ ९ ॥

अन्वय- नः मा हिंसीत् यः पृथिव्याः जनिता यः वा सत्यधर्मा दिवं जजान। यः च बृहतीः चन्द्राः अपिः जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ - नः = हमें। **मा हिंसीत्** = पीडित न करे। **यः** = जो। **पृथिव्याः** = पृथ्वी का। **जनिता** = जनिता-सृष्टि को रचने वाला है। **यः** = जो। **वा सत्य धर्मा** = सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है। **दिवम्** = स्वर्ग का। **जजान** = निर्माण करता है। **च** = और। **यः** = जो। **बृहतीः** = महान्। **चन्द्राः** = आनन्द प्रदान करने वाले जल को। **अपि** = भी। **जजान** = उत्पन्न कर्ता है। **कस्मै** = उस सुखस्वरूप। **देवाय** = परमात्मा की हम। **हविषा** = हवि के द्वारा। **विधेम** = पूजा करते हैं।

अनुवाद - वह परमात्मा हमें पीडित न करें जो पृथ्वी का जनिता-सृष्टि को रचने वाला है, जो सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है और जो स्वर्ग का निर्माता है और जो महान् आनन्द प्रदान करने वाले जल को भी उत्पन्न करता है। उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम हवि के द्वारा पूजा करते हैं।

भावार्थ - वह हमारी हिंसा न करें, जो सारी पृथिवी को रचने वाला है और जो सत्य धर्म और जगत् को धारण करने वाला है जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया था। और जिसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया है। उस परमेश्वर की हम उत्तम प्रकार से उपासना करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण- हिंसत् - 'हिंस्' धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष,

एकवचन। ''न माङ्योगे'' सूत्र से 'मा' के योग में 'अर' का अभाव। **जनिता** – जन् + णिच् + तृच्। 'इट्' का 'आगम' 'जनितामन्त्रे' नियम से 'णिच्' का लोप = जनितृ। प्रथमा विभक्ति का एकवचन। लोक में 'जनयिता' रूप होगा। **सत्यधर्मा** – सत्यः धर्मः यस्य सः। बहुब्रीहि समास। सत्य + धर्म + अनिच् = सत्यधर्मन् प्रथमा का एकवचन। **चन्द्रः** – 'चदि आह्लादे' धातु से 'अच्' और 'नुम्' का आगम। **जजान** – णिजन्त जन् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

अन्वय– प्रजापते त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परि बभूव। यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु वयं रयीणां पतयः स्याम।

शब्दार्थ – **प्रजापते** = हे प्रजापति। **त्वत्** = तेरे। **अन्यः** = सिवाय दूसरा कोई। **एतानि** = इन वर्तमान, भूत और भविष्य के। **विश्वा जातानि** = समस्त उत्पन्न वस्तुओं की। **ता न** = उन सारे भूतकालीन पदार्थों को जगत् में नहीं। **परि बभूव** = व्याप सकता, अर्थात् तू ही व्यापता है। **यत् कामः** = जिस फल की कामना करते हुये। **ते** = हम तेरी। **जुहुमः** = उपासना (हवन) करते हैं। **तत्** = वह फल। **नः** = हमें। **अस्तु** = प्राप्त हो। **वयम्** = हम। **रयीणाम्** = समस्त ऐश्वर्यों के। **पतयः** = स्वामी। **स्याम** = हों।

अनुवाद – हे प्रजापति ! तेरे सिवाय दूसरा कोई इन वर्तमान, भूत और भविष्य के समस्त उत्पन्न वस्तुओं को उन सारे भूतकालीन पदार्थों को जगत् में नहीं व्याप सकता, अर्थात् तू ही व्यापता है। जिस फल की कामना करते हुये हम तेरी उपासना (हवन) करते हैं, वह फल हमें प्राप्त हो। हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

भावार्थ – हे परमात्मा ! तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुये पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त किये हुये नहीं है; अर्थात् तुम ही इन सबको व्याप्त करते हो। जिसकी अभिलाषा करके हम तेरी पूजा करते हैं, वह इच्छा हमारी पूरी हो और हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होवें।

टिप्पणी व्याकरण– विश्वा, ता - वैदिक रूप हैं। विभक्ति का लोप हुआ है। लोक में विश्वानि और तानि रूप बनते हैं। **जातानि** - जन् + क्त = जात। नपुंसकलिंग में द्वितीया का बहुवचन। **जुहुमः** - हु धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

ooo

२८. वाक् सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १२५**

ऋषि-वाक् **देवता-परमात्मा** **छन्द–दूसरे मन्त्र में जगती और सब में त्रिष्टुप्**

संहिता–पाठ :

अ॒हं रु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिश्चराम्य॒हमा॑दि॒त्यैरु॒त विश्वदे॑वैः।
अ॒हं मि॒त्रावरु॑णो॒भा बि॑भर्म्य॒हमि॑न्द्रा॒ग्नी अ॒हम॒श्विनो॒भा ॥ १ ॥

अन्वय–अहम् रुद्रेभिः चरामि वसुभिः। अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः। अहम् मित्रावरुणा उभा बिभर्मि। अहम् इन्द्राग्नी अहम् उभा अश्विना।

शब्दार्थ– अहम् = मैं। **रुद्रेभिः** = ग्यारह रुद्रों के रूप में। **चरामि** = विचरण करती हूँ। **वसुभिः** = आठ वसुओं के रूप में। **अहम्** = मैं। **आदित्यैः** = बारह आदित्यों के रूप में। **उत** = और। **विश्वेदेवैः** = विश्वेदेवों के साथ रहती हूँ। **अहम्** = मैं। **मित्रावरुण** = मित्र और वरुण को। **बिभर्मि** = धारण करती हूँ। **अहम्** = मैं। **इन्द्राग्नि** = इन्द्र अग्नि (और)। **उभा अश्विना** = दोनों अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ।

अनुवाद - संसार के कारणरूप ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव करती हुई, अम्भृण ऋषि की पुत्री, मैं वाक्, ग्यारह रुद्रों के रूप में विचरण करती हूँ, आठ वसुओं के रूप से विचरण करती हूँ। मैं बारह आदित्यों के रूप में और विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। मैं, मित्र और वरुण इन दोनों देवताओं को धारण करती हूँ। मैं इन्द्र और अग्नि को धारण करती हूँ और दोनों अश्विनी देवताओं को धारण करती हूँ।

भावार्थ - परम्परा के अनुसार अम्भृण ऋषि की 'वाक्' नामक पुत्री को प्रस्तुत सूक्त का ऋषि माना जाता है। यह वाक् जगत्कारण, जगद्व्यापक तथा जगदाधार तत्त्व परमात्मा के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करती हुई प्रस्तुत सूक्त में उद्गार प्रकट कर रही है। प्रस्तुत सूक्त को 'वाक् सूक्त' इसलिए कहा जा सकता है कि वाक् ने परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव कर यहाँ अपने विषय में सब कुछ कहा है। वाक् स्वयं को ब्रह्म रूप में प्रतिपादित करके अपनी महत्ता का वर्णन कर रही है कि मैं रुद्रों का स्वरूप धारण करके विचरण करती हूँ। मैं वसुओं, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ विचरण करती हूँ। मित्र और वरुण दोनों को तथा इन्द्र और अग्नि को भी धारण करती हूँ। मैं दोनों अश्विनी कुमारों को भी धारण करती हूँ।

व्याकरण– चरामि = चर् धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **रुद्रेभिः**– तृतीया का बहुवचन वैदिक रूप है। लोक में 'रुद्रैः' रूप होगा। **मित्रावरुणा, उभा, अश्विना** - द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में वैदिक रूप हैं। विभक्ति के स्थान पर 'आ' हुआ है। लोक में मित्रावरुणौ, उभौ और अश्विनी रूप बनेंगे। **बिभर्मि** - भृ धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

विशेष - प्रस्तुत सूक्त में वाक् की महत्ता का वर्णन किया गया है। अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन वाणी है। वाक् स्वयं को ब्रह्मरूप में प्रतिपादित करके अपनी महत्ता का वर्णन कर रही है। यह हो सकता है कि इस सूक्त का ऋषि कोई और हो और उसने वाणी पर ऋषित्व का आरोप किया हो। सायण ने लिखा है, महर्षि अम्भृण की पुत्री वाक् ब्रह्मविद्या निष्णात थी। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म या परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव करती हुई उसने अपनी इस प्रकार स्तुति की है कि वह सम्पूर्ण संसार की स्वामिनी है।

अ॒हं सोम॑माह॒नसं॑ बिभर्म्य॒हं त्वष्टा॑रमु॒त पू॒षणं॒ भ॑गम्।
अ॒हं द॑धामि॒ द्रवि॑णं ह॒विष्म॑ते सु॒प्रा॒व्ये॒३यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥ २॥

अन्वय– अहम् आहनसम् सोमम् बिभर्मि। अहम् त्वष्टारम्, पूषणम् उत भगम्। अहम् हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणम् दधामि।

शब्दार्थ - **अहम्** = मैं। **आहनसम्** = कूट पीस कर अभिषवन करने योग्य, शत्रुहन्ता। **सोमम्** = सोम रस को, सोम देवता को। **बिभर्मि** = धारण करती हूँ। **अहम्** = मैं। **त्वष्टारम्** = निर्माण करने वाले देवता को। **पूषणम्** = पोषण करने वाले सूर्य देवता को। **उत** = और। **भगम्** = ऐश्वर्य देवता भग को। **अहम्** = मैं। **हविष्मते** = हवि से युक्त, हवि प्रदान करने वाले। **सुप्राव्ये** = देवताओं के लिए सुन्दर हवि पहुँचाने वाले। **सुन्वते** = सोम का अभिषव करने वाले। **यजमानाय** = यजमान के लिए। **द्रविणम्** = यज्ञ के फल रूप धन को। **दधामि** = प्रदान करती हूँ।

अनुवाद - कूट पीस कर अभिषवन योग्य सोमरस को अथवा शत्रुओं का वध करने वाले, द्युलोक में विद्यमान् सोम देवता को मैं ही धारण करती हूँ। मैं त्वष्टा (निर्माण करने वाला देवता), पूषा (पोषण करने वाला सूर्य देवता) और भग (भग नामक ऐश्वर्य का देवता या ऐश्वर्य) को मैं ही धारण करती हूँ। मैं हवि से युक्त या हवि प्रदान करने वाले देवताओं के लिए सुन्दर हवि पहुँचाने वाले और सोम का अभिषव करने वाले यजमान के लिए यज्ञ के फलरूप धन को धारण करती हूँ।

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में ब्रह्मवादिनी वाक् ब्रह्म के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करती हुई कह रही है कि मैं यज्ञ में अभिषवन किये जाने वाले सोम को धारण करती हूँ, मैं त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। मैं हवियुक्त, शोभन हवि को देवताओं तक पहुँचाने वाले तथा सोमाभिषव करने वाले यजमान के लिए धन धारण करती हूँ। अतः वाक् अन्न ऋषियों के समान देवों से कुछ मांगती नहीं, अपितु वह स्वयं ही अपने को देवों का धारक मानती हुई, यजमान को समृद्धि देने की सामर्थ्य का अनुभव करती है।

व्याकरण - **आहनसम्** - आ + हन् धातु से वैदिक असुन् (अस्) **प्रत्यय** = आहनसम् द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **त्वष्टारम्** = त्वक्ष् + तृच् त्वष्ट्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **सुप्राव्ये** - सु + प्र + अव् धातु से "अवितृस्तृतन्त्रिभ्यः" इस उणादि सूत्र से 'इ' प्रत्यय = सुप्रावी। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **हविष्मते** - हविष् + मतुप् = हविष्मत्। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **सुन्वते** - सू+(श्नु)+शतृ - सुन्वत् चतुर्थी का एकवचन।

अ॒हं राष्ट्री॑ सं॒गम॑नी॒ वसू॑नां चिकि॒तुषी॑ प्रथ॒मा य॒ज्ञिया॑नाम्।
तां मा॑ दे॒वा व्य॑दधुः पुरु॒त्रा भूरि॑स्थात्रां॒ भूर्या॑वे॒शय॑न्तीम् ॥ ३ ॥

अन्वय– अहम् राष्ट्री वसूनाम् संगमनी चिकितुषी यज्ञियानाम् प्रथमा। ताम् भूरिस्थात्राम् भूरि आवेशयन्तीम् मा देवा पुरुत्रा व्यदधुः।

शब्दार्थ - **अहम्** = मैं। **राष्ट्री** = जगत् की ईश्वरी। **वसूनाम्** = धनों की। **संगमनी** = प्राप्त कराने वाली। **चिकितुषी** = ज्ञान से सम्पन्न, ब्रह्म को जानने वाली। **यज्ञियानाम्** = यजन करने योग्य व्यक्तियों में। **प्रथमा** = सबसे प्रमुख। **तां** = उस मुझको। **भूरिस्थात्राम्** = अनेक रूपों में अवस्थित। **भूर्यावेशयन्तीम्** = बहुत सी वस्तुओं को अपने अन्दर आवेशित करने वाली। **मा** = मुझे। **देवा** = देवताओं ने। **पुरुत्रा** = विभिन्न स्थानों में। **व्यदधुः** = रखा है।

अनुवाद– मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ, धनों को प्राप्त कराने वाली हूँ, खोज करने वाली, ज्ञान से सम्पन्न या ब्रह्म को जानने वाली हूँ, और यजन करने योग्य व्यक्तियों में सबसे प्रमुख हूँ। ऐसे गुणों से युक्त उस अनेक रूपों में अवस्थित और बहुत ही वस्तुओं को अपने अन्दर आवेशित करने वाली मुझ को देवताओं ने विभिन्न स्थानों में रखा है। अर्थात् भिन्न देवताओं की जो पूजा की जाती है, वह वस्तुतः मेरी ही पूजा है।

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में वाक् देवी कह रही है कि मैं सम्पूर्ण जगत् की शासिका हूँ, सबकी अधिष्ठात्री हूँ, अपने उपासकों को धन प्राप्त कराने वाली अर्थात् धनों को एकत्र करने वाली रानी हूँ तथा पूजनीय देवों में प्रमुख हूँ। अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाली और यज्ञ के भागी देवताओं में प्रमुख हूँ सत्कार के योग्य लोगों में प्रथम हूँ। अनेक रूपों में अवस्थित तथा बहुतों में प्रवेश कराने वाली उस मुझ को देवों ने अनेक स्थानों पर विविध प्रकार से धारण किया है। अर्थात् अनेक प्रकार से प्रपञ्च रूप में अवस्थित, अनेक वीरों को आवेश प्रदान करने वाली अथवा उन्हें स्फुरित करने वाली वाक् को अनेक स्थानों में अथवा बहुत से देशों में रखा है। क्योंकि विविध स्थानों में जो भी देवी-देवता प्रचलित हैं, वे सब उस ब्रह्मस्वरूपा वाक् के ही अवान्तर रूप हैं। वाक् विराट्-रूपेण स्थित है, इसलिए देवता-गण जो कुछ भी करते हैं, उसे ही करते हैं।

व्याकरण - राष्ट्री - 'राष्ट्री' शब्द से मतुप् अर्थ में इनि। स्त्रीलिंग में राष्ट्री। **संगमनी** - सम् + गम् + ल्युट् (अन) + ङीप्। **चिकितुषी** - कित् + क्वस् प्रत्यय + ङीप्। **यज्ञियानाम्** - यज्ञम् अहति अर्थ में यज्ञ + घ (इय) = यज्ञिय। **भूरिस्थात्राम्** - भूरि + स्था + तृच् + टाप्। लोक में ङीप् होकर 'भूरिस्थात्री' रूप होगा। **भूर्यावेशयन्तीम्** - भूरि + आ + णिजन्त दिश् धातु + शतृ + ङीप्। **पुरुत्रा** - पुरु + त्रल् + टाप् = पुरुत्रा। **व्यदधुः** - वि + धा धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन। **विशेष** - ग्रासमान और लुडविग ने 'चिकितुषी और यज्ञियानाम्' का अर्थ 'देवताओं' को सबसे पहले जानने वाली' (The First to know the Gods) किया है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४॥

अन्वय– यः अन्नम् अत्ति सः मया, यः विपश्यति, यः प्राणिति, यः ईम् उक्तम् शृणोति। ये माम् अमन्तव्यः उपक्षियन्ति। श्रुत ! श्रुधिः श्रद्धिवम् ते वदामि।

शब्दार्थ - **यः** = जो। **अन्नम् अत्ति** = अन्न को खाता है, सांसारिक भोगों को भोगता है। **सः** = वह। **मया** = मेरे द्वारा ही करता है। **यः विपश्यति** = जो देखता है। **यः** = जो। **प्राणिति** = श्वास लेता है। **यः** = जो। **ईम उक्तम्** = कहे गए वचनों को। **शृणोति** = सुनता है। **ये** = जो। **माम्** = मुझको। **अमन्तवः** = न मानने वाले, न जानने वाले। **उपक्षियन्ति** = हीनता को प्राप्त होते हैं। **श्रुत** = विद्वान्। **श्रुधि** = सुनो। **श्रद्धिवं** = श्रद्धा से प्राप्त होने योग्य वचन का। **ते** = तुम्हें। **वदामि** = कहती हूँ।

अनुवाद– इस जगत् में जो भी व्यक्ति अन्न को खाता है, अर्थात् सांसारिक भोगों को भोगता है, वह मेरे द्वारा ही अन्न का भोग करता है, जो देखता है वह मेरे द्वारा ही देखता है, जो श्वास लेता है वह मेरे द्वारा लेता है और जो भी कहे गये वचनों को सुनता है, वह मेरे द्वारा ही सुनता है। जो व्यक्ति इस प्रकार से अन्तर्यामी रूप से अवस्थित मुझ को नहीं जानते या मानते वे संसार में हीनता को प्राप्त होते हैं। हे विद्वान् मित्र ! सुनो श्रद्धा से प्राप्त होने योग्य वचन का मैं उपदेश देती हूँ।

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में वाक् देवी शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कह रही है - हे शिष्य ! जो विविध प्रकार से देखता है, जो सांस लेता है, जो कहे हुए को सुनता है, वह मेरे द्वारा ही अन्न अर्थात् उक्त विषयों को भोगता अथवा भोग का अनुभव करता है। वे जन इसको नहीं जानते हैं। अर्थात् मेरी शक्ति को न जानने वाले भी मेरे पास निवास करते हैं वे सब मेरे नियन्त्रण में है। हे विज्ञ पुरुष ! सुनो। तुम्हारे लिए श्रद्धा से युक्त अर्थात् श्रद्धा और प्रयत्न से प्राप्त ब्रह्मात्मक वस्तु अथवा सत्य वचन कहती हूँ।

व्याकरण - **अत्ति** - अद् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **प्राणिति** - प्र + अन् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन। **अमन्तवः** - न + मन् धातु से औणदिक 'तु' प्रत्यय = अमन्तु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। **क्षियन्ति** - क्षि धातु, लट्लकार। **श्रुधि** - 'श्रु' धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **श्रद्धिवम्** - श्रत् सत्यं दधाति अर्थ में श्रत् + धा + कि = श्रद्धि। श्रद्धि : अस्य अस्ति अर्थ में व प्रत्यय = श्रद्धिव। **विशेष** - सायण के अर्थ को स्वीकार किया है। किन्तु पाश्चात्त्य विद्वानों ने अन्वय दूसरी प्रकार से करके यह अर्थ किया है - जो देखता है, जो श्वास लेता है और जो सुनता है, वह मेरे द्वारा ही अन्न को खाता है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५॥

अन्वय– अहम् स्वयम् एव देवेभि: उत मानुषेभि: जुष्टम् इदम् वदामि। यम् कामये तम् तम् उग्रम् कृणोमि। तम् ब्रह्माणम्, तम् ऋषिम्, तम् सुमेधाम्।

शब्दार्थ - **अहम्** = मैं। **स्वयम् एव** = स्वयं ही। **देवेभिः** = देवताओं के द्वारा। **उत** = और। **मानुषेभिः** = मनुष्यों के द्वारा। **जुष्टम्** = सेवित। **इदम्** = इस (ब्रह्मतान) का। **वदामि** = उपदेश करती हूँ। **कामये** = चाहती हूँ। **तं तम्** = उसको। **उग्रम्** = प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ। **कृणोमि** = बनाती हूँ। **यं कामये** = मैं जिसे चाहती हूँ। **ब्रह्माणम्** = सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा। **ऋषिम्** = भूत-भविष्य का द्रष्टा ऋषि। **सुमेधाम्** = उत्तम बुद्धि वाला।

अनुवाद– मैं स्वयं ही इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा और मनुष्यों के द्वारा

सेवित इस ब्रह्मज्ञान का उपदेश करती हूँ। मैं जिस पुरुष को चाहती हूँ, उस को प्रचण्ड या सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ। उसको मैं सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा, भूत-भविष्य का द्रष्टा ऋषि और उत्तम बुद्धि वाला बना देती हूँ।

भावार्थ– वाक् देवी कहती है - मैं स्वयं देवों और मनुष्यों के द्वारा उसे ब्राह्मण अथवा विद्वान् बनाती हूँ, अभीष्ट यह बात कहती हूँ, मैं जिसको चाहती हूँ, उसको उत्कृष्ट अथवा उन्नत बनाती हूँ, उसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि बनाती हूँ, उसे अच्छी मेधा या बुद्धि से युक्त अथवा सुन्दर प्रज्ञा वाला बनाती हूँ। अर्थात् ब्रह्मस्वरूपा होने के कारण वाक् सम्पूर्ण सृष्टि की एकमात्र स्वामिनी है। वह जिसे चाहती है, उसे बलशाली, ब्रह्मतेजा, तपश्शील और मेधावी बना देती है।

व्याकरण - **जुष्टम्** - जुष् + क्त = जुष्ट। **कामये** - कम् धातु, लट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **देवेभिः** - वैदिक रूप है। लोक में देवैः रूप होगा। **मानुषेभिः** - वैदिक रूप है। लोक में मानुषैः रूप होगा। **सुमेधाम्** - वैदिक रूप है। लोक में 'सुमेधसम्' रूप बनेगा। **कृणोमि** - वैदिक रूप है। लोक में 'करोमि' रूप होता है। **विशेष** - ब्रह्मा की सृष्टि उत्पत्ति करने की सामर्थ्य वाक् देवी की विशेष कृपा से ही प्राप्त हुई है। उसमें यह सामर्थ्य स्वाभाविक रूप से नहीं थी। अतः सभी देवता उस देवी की कृपा के इच्छुक रहते हैं। मनुष्यों को भी अप्रत्यक्ष ज्ञान की सामर्थ्य वाक् देवी की कृपा से प्राप्त होती है। उसी की अनुकम्पा से वे कुशाग्र बुद्धिशाली होते हैं।

अ॒हं रु॒द्राय॒ धनु॒रात॑नोमि ब्रह्म॒द्विषे॒ शर॑वे॒ हन्त॒वा उ॑।
अ॒हं जना॑य स॒मदं॑ कृणोम्य॒हं द्यावा॑पृथि॒वी आ वि॑वेश ॥ ६॥

अन्वय– ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै अहम् रुद्राय धनुः आतनोमि। अहम् जनाय समदम् कृणोमि। अहम् द्यावापृथिवी आविवेश।

शब्दार्थ - **ब्रह्मद्विषे** = ब्रह्म, वेदों या ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले। **शरवे** = हिंसक असुरों को। **हन्तवै** = मारने के लिए। **अहम्** = मैं। **रुद्राय** = रुद्र के। **धनुः** = धनुष की। **आतनोमि** = प्रत्यञ्चा को चढ़ाती हूँ। **अहम्** = मैं। **जनाय** = लोगों के (कल्याण) हेतु। **समदम्** = युद्ध। **कृणोमि** = करती हूँ। **अहम्** = मैं। **द्यावापृथिवी** = द्युलोक और पृथ्वीलोक में। **आविवेश** = व्याप्त हो रही हूँ।

अनुवाद - ब्रह्म से अर्थात् वेदों से या ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले हिंसक त्रिपुरनिवासी असुरों को मारने के लिए मैं रुद्र के धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ाती हूँ। अर्थात् रुद्र को मैं यह प्रेरणा देती हूँ कि हिंसक असुरों को मारने के लिए वह धनुष को चढ़ावे। मैं अपने लोगों के लिए अर्थात् उनका कल्याण करने के लिए उनके शत्रुओं के साथ युद्ध करती हूँ। अर्थात् उनको युद्ध के लिए प्रेरित करती हूँ। मैं ही द्युलोक और पृथिवीलोक में व्याप्त हो रही हूँ।

भावार्थ - वेद अथवा ब्राह्मण से द्वेष रखने वाले हिंसक जन को मारने के लिए मैं रुद्र के धनुष को विस्तारित करती हूँ, अर्थात् रुद्र को उसे मारने के लिए प्रेरणा देती हूँ। अर्थात् ब्रह्म विद्वेषी हिंसकों अथवा समाजोत्पीड़कों के संहार के लिए वाक् ही रुद्र के धनुष को तान देती है। उस काम के लिए रुद्र की प्रेरणास्वरूप वाक् ही है। वाक् देवी कहती है कि मैं जनता की रक्षा के लिए संग्राम करती हूँ, मैं ही द्युलोक और पृथिवीलोक में व्याप्त हो रही हूँ। अर्थात् लोकहित के लिए वह अनेक अशुभ शक्तियों से युद्ध करती है और वाक् ही द्यावापृथिवी अर्थात् सभी दैवी मानवी लोकों में व्याप्त है।

व्याकरण - **ब्रह्मद्विषे** - ब्रह्म द्वेष्टि अर्थ में ब्रह्म + द्विष् + क्विप्। चतुर्थी का एकवचन। **शरवे** - शृ हिंसायाम्, धातु से "शृस्वृस्निहि" उणादि सूत्र में 'उ' प्रत्यय, शरु। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन। **रुद्राय** - यहाँ वैदिक व्यत्यय से षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी। **हन्तवै** - 'हन्' धातु से 'तुमुन्' के अर्थ में वैदिक 'त्वै' प्रत्यय। **समदम्** - समानं माद्यन्ति अस्मिन् अर्थ में स + मद् + क्विप् = समद्। द्वितीया का एकवचन। **विवेश** - विश् धातु, लिट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **कृणोमि** - 'कृ' धातु लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन वैदिक रूप।

अ॒हं सु॑वे पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ योनि॑र॒प्स्व१॒॑न्तः स॑मु॒द्रे ।
त॒तो वि ति॑ष्ठे॒ भुव॒नानु॒ विश्वो॒तामूं द्यां व॒र्ष्मणोप॑ स्पृशामि ॥
७ ॥

अन्वय– अस्य मूर्धन् पितरम् अहम् सुवे। समुद्रे अप्सु अन्तः मम योनिः। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठे। उत अमूम् द्याम् वर्ष्मणा उपस्पृशामि।

शब्दार्थ - **अस्य** = इस (ब्रह्म) के। **मूर्धन्** = शिरोस्थानीय। **पितरम्** =

द्युलोक को, आकाश को। **अहम्** = मैं। **सुवे** = उत्पन्न करती हूँ। **समुद्रे** = परमात्मा में, समुद्र में। **अप्सुअन्तः** = व्यापनशील बुद्धियों में, जलों में। **मम** = मैं ही। **योनिः** = कारण रूप है। **अनुवितिष्टे** = विविध रूप से व्याप्त किये हुए हूँ। **विश्वा** = सम्पूर्ण। **भुवना** = भुवनों में, पञ्च महाभूतों में। **उत** = और। **अमूम** = इस। **द्याम** = द्युलोक को। **वर्ष्मणा** = सर्वत्र व्याप्त होने वाले कारणभूत शरीर से। **उपस्पृशामि** = स्पर्श कर रही हूँ।

अनुवाद– इस ब्रह्म के शिरोस्थानीय द्युलोक को अथवा इस ब्रह्म के सिर पर आकाश को मैं उत्पन्न करती हूँ। समुद्र अर्थात् परमात्मा में जो अप् अर्थात् व्यापनशील बुद्धियाँ हैं, उनमें मेरा ही कारण है। अथवा समुद्रों में, जलों में मैं ही कारण रूप से विद्यमान हूँ। अथवा समुद्र, अर्थात् अन्तरिक्ष और जलशरीर देवों में कारण हूँ। इसलिए सम्पूर्ण भुवनों अर्थात् पञ्च महाभूतों में प्रविष्ट होकर मैं ही उनको विविध रूप से व्याप्त किये हुए हूँ। और इस द्युलोक को मैं सर्वत्र व्यापक होते हुए अपने कारण भूत शरीर से स्पर्श कर रही हूँ।

भावार्थ – प्रस्तुत मन्त्र में वाक् देवी कहती है कि मैं इस लोक के सिर पर पिता द्युलोक को उत्पन्न करती हूँ। मेरा मूल स्थान समुद्र में जलों के अन्दर है। वहीं से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त कर स्थित होती हूँ और इस द्युलोक को अपने सिर से स्पर्श करती हूँ। अर्थात् ब्रह्म से ही सम्पूर्ण-सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मस्वरूपा वाक् ने पृथिवी को और फिर उसके शीर्ष के ऊपर उसके पितृवत् रक्षाकारक द्युलोक को उत्पन्न किया है। वस्तुतः वाक् समग्र लोकों की समुत्पादिका है।

व्याकरण – **मूर्धन्** – सप्तमी विभक्ति का एकवचन। व्यत्यय से विभक्ति का वैदिक लोप। **तिष्ठे** – स्था धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **सुवे** – षू (सू) धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। वैदिकरूप। **विश्वा भुवना** – विश्व तथा भुवन शब्द, (नपुंसकलिंग), द्वितीया विभक्ति, बहुवचन। वैदिक रूप। लोक में विश्वानि और भुवनानि होगा। **वर्ष्मणा** – वर्षति ददाति सुख-दुःखे जीवात्मने अर्थ में 'वृषु सेचने' धातु से 'मनिन् प्रत्यय।' वृष् = मनिन् (मन्) = वर्ष्मन्। तृतीया विभक्ति का एकवचन। **विशेष** – रॉथ ने 'वर्ष्मणा' की निष्पत्ति उसी प्रकार की है जैसे 'वर्षीयस्' और वर्षिष्ठ की होती है। उसने वर्ष्मणः का अर्थ किया है– (1) Height, Highest Space और (2) The Crown (of the head)

अ॒हमे॒व वात॑ इव प्र वा॑म्या॒रभमाणा भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
प॒रो दि॒वा प॒र ए॒ना पृ॑थि॒व्यैता॑वती महि॒ना सं ब॑भूव ॥ ८ ॥

अन्वय - अहम् एव विश्वा भुवनानि आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवा परः एना पृथिव्या परः महिना एतावती संबभूव।

शब्दार्थ- अहम् एव = मैं ही। **विश्वा** = समस्त। **भुवनानि**- लोकों को, पञ्च महाभूतों को। **आरभमाणा** - उत्पन्न करती हुई। **वात इव** = वायु के समान। **प्रवामि** = प्रवृत्त होती हूँ। **एना** = इस। **पृथिव्याः** = पृथिवी से। **परः** = परे। **दिवा परः** = द्युलोक से परे। **एतावती** = इतने बड़े परिमाण वाली। **महिना** = महिमा से। **संबभूव** = हो जाती हूँ।

अनुवाद - मैं ही सारे लोकों को या पञ्च महाभूतों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ; अर्थात् उनमें वायु के समान व्याप्त हो जाती हूँ। द्युलोक से परे और इस पृथिवीलोक से भी परे और इनको अतिक्रान्त करती हुई मैं अपनी महिमा से इतने बड़े प्रमाण वाली हो जाती हूँ।

भावार्थ - प्रस्तुत मन्त्र में वाक् परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव कर रही है और कह रही है कि सब लोकों को सृष्ट या उत्पन्न करती हुई मैं ही वायु के समान प्रकृष्ट रूप से प्रसृत होती हूँ; अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हो जाती हूँ। आकाश से परे, पृथिवी से परे होती हुई अर्थात् इन दोनों को पूर्णतः व्याप्त कर इनसे भी अधिक होती हुई; मैं अपनी महिमा या सामर्थ्य से इतनी हो गई हूँ; अर्थात् अनन्त या निरवधिक परिमाण वाली हो गई हूँ। प्रस्तुत मन्त्र में वर्णित विशेषताएँ परमात्मा की हैं। वाक् परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव करते हुए उसकी सर्वव्यापकता का अपनी सर्वव्यापकता के रूप में अनुभव कर रही है।

व्याकरण - आरभमाणा - आ + रभ + शानच् + टाप्। **एना** - 'इदम्' शब्द के स्थान पर 'एन' आदेश। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। लोक में 'एनेन' बनेगा। **परः** - 'पुरस्तात्' के अर्थ में सकारान्त अव्यय। **महिना** - 'महत्' शब्द से 'इमनिच् प्रत्यय। महत् + इमनिच्। 'टि' का और 'इमनिच्' के 'म' का लोप होकर मह़ा+इन् = महिन्। तृतीया का एकवचन। **एतावती** - एतत् परिमाणम् अ़स्याः अर्थ में (एतद्+मतुप्+ङीप्+ई)। "आ सर्वनाम्नः" सूत्र से

'एतद्' के 'द्' को 'आ' आदेश। 'म' को 'व' आदेश। **विशेष** - इस मन्त्र के माध्यम से ब्रह्म को जानने वाली वाक् में लोकान्तरों और पञ्चमहाभूतों का सृजन करने की क्षमता दृष्टिगोचर होती है।

○○○

२९. रात्रि सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १२७**

ऋषि-सोभरी-पुत्र कुशिक **देवता-रात्रि** **छन्द-गायत्री**

रात्री॒ व्य॑ख्यदाय॒ती पु॑रु॒त्रा दे॒व्य१॒॑क्षभिः॑। विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॑ऽधित॥ १ ॥

अन्वय– आयती पुरुत्रा अक्षभिः देवी रात्री व्यख्यत् विश्वाः श्रियः अधि अधित।

शब्दार्थ– आयती = आती हुई। **पुरुत्रा** = अनेक देशों पर। **अक्षभिः** = विस्तृत होकर नक्षत्ररूपी नेत्रों से। **देवी रात्री** = देवी रात्रि। **व्यख्यत्** = सब संसार को देखती है (और) **विश्वा** = यह सब प्रकार की। **श्रियः** = शोभा सौंदर्य को। **अधि अधित** = धारण करती है।

अनुवाद– आती हुई अनेक देशों पर विस्तृत होकर नक्षत्ररूपी नेत्रों से देवी रात्रि सब संसार को देखती है। और यह सब प्रकार की शोभा-सौंदर्य को धारण करती है।

भावार्थ– आती हुई, बहुत से स्थानों पर देदीप्यमान् होती हुई नक्षत्ररूप नेत्रों से रात्रिदेवी सब संसार को विशेष रूप से देखती है। और यह सब प्रकार की शोभाओं को धारण करती है।

टिप्पणी व्याकरण – आयती– आ+इण्गतौ = शतृ+ङीप्=आयती। **रात्री**– रात्री+ङीप् = रात्री। **व्यख्यत्** – वि+ख्या, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

ओर्व॑प्रा॒ अम॑र्त्या नि॒वतो॑ दे॒व्यु॑ १॒ द्वतः॑। ज्योति॑षा बाधते॒ तमः॑ ॥२ ॥

अन्वय– अमर्त्या देवी उरु निवतः उद्वतः आ अप्राः ज्योतिषा तमः बाधते।

शब्दार्थ– अमर्त्या = अविनाशी। **देवी** = देवी रात्रि। **उरु** = पहले विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को। **निवतः** = अनन्तर नीचे। (और) **उद्वतः** = ऊँचे प्रदेशों को। **आ अप्राः** = आच्छादित करती है। (और)**ज्योतिषा** = फिर ग्रह नक्षत्रादिरूप तेज से। **तमः** = अन्धकार को। **बाधते** = नष्ट करती है।

अनुवाद– अविनाशी देवी रात्रि पहले विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को, अनन्तर नीचे और ऊँचे प्रदेशों को आच्छादित करती है। और फिर ग्रहनक्षत्रादिरूप तेज से अन्धकार को नष्ट करती है।

भावार्थ– अविनाशी अर्थात् कभी न मरने वाली देवी रात्रि प्रथम अन्तरिक्ष को और उसके बाद नीचे और ऊँचे स्थानों को अन्धकार से आवृत करती है। और फिर प्रकाशमान् ग्रह नक्षत्र आदि तेज से अन्धकार को नष्ट करती है।

व्याकरण – अमर्त्या = न मर्त्या। नञ् तत्पुरुष समास।

नि॒रु स्वसा॑रमस्कृतो॒षसं॑ दे॒व्या॑य॒ती। अपेदु॑ हासते॒ तमः॑॥ ३॥

अन्वय– आयती देवी स्वसारं उषसं निः अकृत। उ तमः अप् इत हासते।

शब्दार्थ– आयती = आती हुई। **देवी** = देवी रात्रि। **स्वसारम्** = अपनी बहन। **उषसम्** = उषा को। **निः अकृत** = परिग्रहित करती है। **उ** = और उषा काल में। **तमः** = अन्धकार। **अप इत् हासते** = दूर ही हो जाता है।

अनुवाद– आती हुई देवी रात्रि अपनी बहन उषा को परिग्रहित करती है। और उषा काल में अन्धकार दूर ही हो जाता है।

भावार्थ– आती हुई देदीप्यमान् रात्रि अपनी बहन उषा को निराकृत कर देती है; अर्थात् लौटा देती है और उसके आने पर अन्धकार दूर ही हो जाता है।

टिप्पणी व्याकरण – हासते – 'ओहाङ् गतौ' धातु लोट्लकार, पुथमपुरुष, एकवचन।

सा नो॑ अ॒द्य यस्या॑ व॒यं नि ते॒ याम॒न्नवि॑क्ष्महि वृ॒क्षे न व॑स॒तिं वयः॑॥ ४॥

अन्वय– न वयः वृक्षे वसतिं यस्याः ते यामन् वयम् नि अविक्ष्महि, सा नः अद्य।

शब्दार्थ– नः = जिस प्रकार रात्रि काल में। **वयः** = पक्षी। **वृक्षे** = वृक्ष पर। **वसतिम्** = निवास करते हैं, वैसे ही। **यस्याः** = जिस उसके आने पर। **ते** = हम। **निअविक्ष्महि** = सुख से गृह में आश्रय किये हुए हैं। **सा** = वह रात्रि देवी। **नः** = हम पर। **अद्य** = आज प्रसन्न हो।

अनुवाद– जिस प्रकार रात्रिकाल में पक्षी वृक्ष पर निवास करते हैं,वैसे ही जिस उसके आने पर हम सुख से गृह में आश्रय किये हुए हैं, वह रात्रि देवी हम पर आज प्रसन्न हो।

भावार्थ– जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षीगण रात्रिकाल में निवास करते हैं, वैसे ही जिस उसके आने पर हम सुख से अपने घर में रहते हैं, वह रात्रि देवी हम पर आज प्रसन्न हो।

टिप्पणी व्याकरण सम्बन्धी– अविक्ष्महि = 'वश्' धातु की **निर्विशः** = से आत्मने पद हुआ।

नि ग्रामा॑सो अविक्षत॒ नि प॒द्वन्तो॒ नि प॒क्षिणः॑। नि श्ये॒नास॑श्चिद॒र्थिन॑ः ॥५॥

अन्वय– ग्रामासः नि अविक्षत। पद्वन्तः नि पक्षिणः नि अर्थिनः श्येनासः चित् नि।

शब्दार्थ– ग्रामासः = ग्रामवासी मनुष्य रात्रि में। **नि अविक्षत** = सुख से सोते हैं। (और) **पद्वन्तः** = पैरों से युक्त गाय आदि पशु। **नि** = निवेशित होकर सोते हैं। **पक्षिणः** = पंखों वाले प्राणी भी। **नि** = सुख से सोते हैं। (और) **अर्थिनः** = तेज चलने वाले। **श्येनासः** = बाज आदि पक्षी भी। **चित् नि** = विश्रब्ध होकर सोते हैं।

अनुवाद–ग्रामवासी मनुष्य रात्रि में सुख से सोते हैं। और पैरों से युक्त गाय आदि पशु निवेशित होकर सोते हैं। पंखों वाले प्राणी भी सुख से सोते हैं। और तेज चलने वाले बाज आदि पक्षी भी विश्रब्ध होकर सोते हैं।

भावार्थ– रात्रि में सभी मनुष्य सुख से सोते हैं। और पादचारी गौ, अश्व आदि पशु-पक्षी और शीघ्र चलने वाले बाज-पक्षी आदि भी विश्रब्ध होकर रात्रि में सोते हैं।

या॒वया॑ वृ॒क्यं॑१॒ वृकं॑ य॒वय॑१॒ स्ते॒नमू॑र्म्ये। अथा॑ नः सुतरा॑ भव॥ ६ ॥

अन्वय– ऊर्म्ये! वृक्यं वृकं यवय स्तेनं यवय। अथ नः सुतरा भव।

शब्दार्थ– ऊर्म्ये = हे रात्रि। **वृक्यम्** = भेड़िये की स्त्री को। (और) **वृकम्** = भेड़िये को। **यवय** = हमसे अलग करो। **स्तेनम्** = चोर को। **यवय** = हमसे दूर ले जा। **अथ** = तदन्तर। **नः** = हमारे लिये। **सुतरा** = सुखपूर्वक तरणीय, कल्याणकारी। **भव** = हो।

अनुवाद– हे रात्रि! भेड़िये की स्त्री को और भेड़िये को हमसें अलग करो। चोर को हम से दूर ले जा। तदनन्तर हमारे लिये सुखपूर्वक तरणीय; अर्थात् कल्याणकारी हो।

भावार्थ– हे रात्रि! तुम हमसे भेड़िये की स्त्री और भेड़िये को अलग कर, अर्थात् वे हमें काट नहीं सके। चोर को हमसे पृथक रखो, और हमारे लिये तू सर्व प्रकार से सुखकारी बनो।

व्याकरण–वृक्यम् = 'वृकीम्' के स्थान पर छान्दस रूप है। पूर्वरूप को हटाकर 'यण्' आदेश हुआ है।

उप॑ मा॒ पेपि॑श॒त् तम॑ः कृ॒ष्णं व्य॑क्तमस्थित। उष॑ ऋ॒णेव॑ यातय॥ ७॥

अन्वय– पेपिशत् कृष्णं तमः व्यक्तं मा आ उप अस्थित। उषः ऋणा इव यातय।

शब्दार्थ– पेपिशत् = अत्यधिक पिसा हुआ सा, सब वस्तुओं में चिपटा हुआ सा। **कृष्णम्** = काले रंग का। **तमः** = अन्धकार। **व्यक्तम्** = स्पष्ट रूप से। **मा** = मेरे। **उप अस्थित** = पास आ गया है। **उषः** = हे उषा देवी। तू। **ऋणा इव** = स्तोताओं के ऋण धनं प्रदान करके जैसे। **यातय** = दूर करती हो।

अनुवाद– अत्यधिक पिसा हुआ सा सब वस्तुओं में चिपटा हुआ सा काले रंग का अन्धकार स्पष्ट रूप से मेरे पास आ गया है। हे उषा देवी! तू स्तोताओं के ऋण धन प्रदान करके जैसे दूर करती हो, वैसे ही इस अन्धकार को हटा दो।

भावार्थ– अत्यधिक गाढा काला अन्धकार स्पष्ट रूप से मेरे पास आकर स्थित हो गया है। हे उषा देवी! तुम इस अन्धकार को उसी प्रकार दूर करो, जिस प्रकार स्तोताओं के ऋणों को दूर करती हो।

उप॑ ते॒ गा इ॒वाक॑रं वृणी॒ष्व दु॑हितर्दिवः। रात्रि॒ स्तोमं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥ ८ ॥

अन्वय– रात्रि! ते गाः इव आकरम्। दिवः दुहितः जिग्युषे न स्तोमम् वृणीष्व।

शब्दार्थ– **रात्रि** = हे रात्रि! **ते** = तुझ को। **गाः इव** = दूध देने वाली गौ के समान। **आकरम्** = स्तुतियों से प्राप्त करूं। **दिवः** = हे सूर्य। **दुहितः** = पुत्री। **जिग्युषे** = विनयशील। **न** = मेरे। **स्तोमम्** = स्तुति वचनों के समान हवि को भी। **वृणीष्व** = ग्रहण करो।

अनुवाद– हे रात्रि! तुझको दूध देने वाली गौ के समान स्तुतिओं से प्राप्त करूं। हे सूर्यपुत्रि! विनयशील मेरे स्तुति वचनों के समान हवि को भी ग्रहण करो।

भावार्थ– हे रात्रिदेवी! तुझको दूध देने वाली गौ के समान तेरे समीप आकर स्तुति के द्वारा प्राप्त करूं। हे सूर्यपुत्री रात्रिदेवी ! विनययुक्त मेरे स्तुति वचनों के समान ही मेरे द्वारा अर्पित आहुति को स्वीकार करो।

टिप्पणी व्याकरण– **अकरम्** = 'कृ' धातु, लुङ् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन। **जिग्युषे** = 'जि' धातु, लिट्लकार के समान पर 'क्वसु' प्रत्यय = जिन्युष्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

०००

३०. नासदीय सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १२९**

ऋषि-परमेष्ठी प्रजापति देवता-सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता परमात्मा छन्द-त्रिष्टुप्

नास॑दासी॒न्नो सदा॑सीत्त॒दानीं॒ नासी॒द्रजो॒ नो व्यो॑मा प॒रो यत्।
किमाव॑रीवः॒ कुह॒ कस्य॒ शर्म॒न्नम्भः॒ किमासी॒द्गह॑नं गभी॒रम् ॥ १ ॥

अन्वय- तदानीम् असत् न आसीत्, सत् नो आसीत्, रजः न आसीत्, व्योम नो, यत् परः। किम् आवरीवः? कुह? कस्य शर्मन्? किम् गभीरम् गहनम् अम्भः आसीत्।

शब्दार्थ- तदानीम् = उस समय, सृष्टि उत्पत्ति से पहले प्रलयदशा में। **असत्** = अभावात्मक तत्व। **न आसीत्** = नहीं था। **सत्** = सत्तात्मक तत्व। **नो आसीत्** = नहीं था। **रजः** = पृथिवी से लेकर पाताल पर्यन्त लोक। **न आसीत्** = नहीं था। **व्योम्** = अन्तरिक्ष। **नो** = नहीं था। **परः** = अन्तरिक्ष से परे। **आवरीवः** = आवरण करने वाला तत्व। **कुह** = कहाँ। **कस्य** = किसकी। **शर्मन्** = संरक्षा में। **गहनम्** = दुष्प्रवेश्य। **गभीरम्** = अत्यन्त गहरा। **अम्भः** = जल। **आसीत्** = था।

अनुवाद- उस समय अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति से पहले प्रलयदशा में, असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था और सत्तात्मक तत्त्व भी नहीं था। रजः; अर्थात् पृथिवी से लेकर पाताल पर्यन्त लोक नहीं थे। अन्तरिक्ष नहीं था और अन्तरिक्ष से परे जो कुछ है वह भी नहीं था। पुनः आवरण करने वाला तत्त्व क्या था ? वह आवरक तत्त्व कहाँ था और किस की संरक्षा में था ? क्या उस समय दुष्प्रवेश्य एवं अत्यन्त गहरा जल क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में इस बात पर विचार किया गया है कि सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में क्या था ? तब न असत् था, न सत् था, न अन्तरिक्ष था अथवा न कोई लोक था और न पर अथवा सर्वोच्च आकाश था। तब ऐसी स्थिति में स्वतः ही यह जिज्ञासा होती है कि तो फिर क्या रह जाता है, कहाँ रह जाता है, किसके संरक्षण में रह जाता है? अथवा केवल अथाह शून्य ही रह जाता है, ऐसी ही जिज्ञासा का दिग्दर्शन प्रस्तुत मन्त्र में होता है। किसी भी परिणामशील पदार्थ के दो धर्म होते हैं-सत्त्व और असत्त्व। दूध से दही बनता है। दही में जब दधिरूप सत्त्व धर्म आ जाता है, तो दुग्धरूप असत्त्व धर्म भी उसमें रहता है और फलतः उस समय दही दधि रूप में सत् है; अर्थात् दधि के नाम रूप से युक्त है और दुग्ध रूप में असत् है; अर्थात् दुग्ध के नामरूप से रहित है। इस प्रकार सत् और असत् परस्पर आपेक्षिक शब्द हैं, जो पदार्थ की परिणाम सम्बन्धिनी परस्पर आपेक्षिक अवस्थाओं को सूचित करते हैं।

व्याकरण- सत्- अस् + शतृ = सत्। **असत्** - अस् + शतृ = सत्। न + सत् = असत् **कुह** - किम् + ह = कुह। **आवरीवः**- आवृणोति इति आवरणो वा आवरिः। औणादिक 'ई' प्रत्यय। आ + वृ + ई = आवरी। मतुबर्थे 'व'

प्रत्यय = आवरीव। **विशेष** - मैक्डानल के अनुसार **रजस्** = वायु (air) ; **किम् आवरीवः** = अपने अन्दर किसे रखता था (what did it contain), **कस्य शर्मन्** = किसकी संरक्षा में (in whose protection)

न मृ॒त्युरा॑सीद॒मृतं॒ न तर्हि॒ न रात्र्या॒ अह्न॑ आसीत्प्रके॒तः ।
आनी॑दवा॒तं स्व॒धया॒ तदेकं॒ तंस्माद्धा॒न्यन्न प॒रः किं च॒ना॑स ॥ २ ॥

अन्वय- तर्हि मृत्युः न आसीत् न अमृतम्, रात्र्याः अह्नः प्रकेतः न आसीत्। तत् आनीत् आवातम्, स्वधया, एकम्। ह तस्मात् अन्यत् किञ्चन न आस न परः।

शब्दार्थ- तर्हि = उस समय। **मृत्युः न आसीत्** = मृत्यु नही थी। **अमृतम्** = मृत्यु का अभाव। **रात्र्याः अह्न** = दिन-रात का। **प्रकेतः** = ज्ञान। **न आसीत्** = नहीं था। **आनीत्** = प्राण से युक्त। **अवातम्** = क्रिया से शून्य। **स्वधया** = माया से। **एकम्** = अविभक्त एक रूप में। **तस्मात्** = उस माया युक्त ब्रह्म से। **अन्यत्** = भिन्न। **परः** = उससे परे। **किञ्चन न आस** = कुछ नहीं था।

अनुवाद- उस प्रलयकाल में मृत्यु नहीं थी और अमृत; अर्थात् मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्रि का और दिन का ज्ञान भी नहीं था। वह ब्रह्मतत्व ही प्राण से युक्त, अपनी क्रिया से शून्य और माया के साथ अविभक्त एक रूप में विद्यमान था। उस मायासहित ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं था, और उससे परे भी कुछ नहीं था।

भावार्थ- जिस प्रकार सत् और असत् परस्पर सापेक्ष हैं, उसी प्रकार प्रस्तुत मन्त्र में मृत्यु-अमृत तथा रात और दिन परस्पर सापेक्ष हैं। प्रलयकाल में स्वभावतः निरपेक्ष स्थिति ही रह जाती है। तब प्रलयकाल में क्या था ? प्रस्तुत मन्त्र में इसका समाधान है कि उस समय वह अकेला बिना प्राणवायु के ही अपनी शक्ति से श्वास-प्रश्वास क्रिया करता था। यह न देव है, न व्यक्तित्वयुक्त पुरुष है अपितु व्यक्तित्वहीन तत्व है। अनिर्देश्य स्वरूप वाला वह तत्व एक या अकेला है। यह तत्त्व बिना वायु के ही अपनी शक्ति से श्वास-प्रश्वास-क्रिया करते हुए जीवित रहता है अथवा अपने अस्तित्व को बनाए रहता है। इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि यह तत्त्व कोई जड़तत्त्व नहीं, अपितु कोई चेतन तत्त्व है, क्योंकि जड़तत्त्व के विषय में यह कहने की आवश्यकता नहीं

कि वह बिना वायु के अथवा वायु से अनन करता है। सचमुच उस अनिर्देश्य स्वरूप वाले तत्त्व से परे या उसके भी मूलरूप में दूसरा कुछ अथवा कोई नहीं था, अर्थात् वह परम मूलरूप में था।

व्याकरण- प्रकेतः - प्र + कित् ज्ञाने + घञ्। **स्वधया** - स्व + धा + क + टाप् = स्वधा। तृतीया का एकवचन। **अह्नः** - अहन् शब्द षष्ठी का एकवचन। **विशेष-** मैक्डानल के अनुसार **आनीत्** = श्वास लेने वाला (One breathed) **अवातम्** = वायु से रहित (windless), स्वधया = अपनी शक्ति से (by its own power) ।

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गूळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तुच्छ्येना॒भ्वपि॑हि॒तं यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्माहि॒नाजा॑यतैक॑म् ॥ ३ ॥

अन्वय– अग्रे तमसा गूळहम् तमः आसीत्। अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलम् आः। यत् आभु तुच्छ् येन अपिहितम् आसीत् तत् एकम् तपसः महिना अजायत्।

शब्दार्थ– **अग्रे** = पहले। **तमसा** = अन्धकार से। **गूहळम्** आच्छादित। **तमः** = तमस् रूप मूलकारण। **आसीत्** = था। **अप्रकेतम्** = अज्ञायमान। **इदं सर्वं सलिलम्** = यह (संसार) जलरूप में। **आः** = था। **यत्** = जो। **आभु** = व्यापक। **तुच्छयेन** = तुच्छ अभाव रूप अज्ञान से। **अपिहितम्** = उत्पन्न हुआ। **आसीत्** = था। **तत् एकम्** = वह एक (ब्रह्म)। **तपसः** = संकल्परूप तप की। **महिना** = महिमा से। **अजायत** = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद– सृष्टि के उत्पन्न होने से पहले, अर्थात् प्रलय की अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था। और यह जगत् अपने तमस् रूप मूल कारण में विद्यमान था। अज्ञायमान यह सम्पूर्ण जगत् उस समय सलिलरूप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोनों मिले हुये थे। यह जो जगत् व्यापक एवं तुच्छ अभाव रूप अज्ञान से आच्छादित था, तो वह कारण के साथ एकीभूत हुआ जगत् ईश्वर के संकल्परूप तप की महिमा से उत्पन्न हुआ।

भावार्थ– प्रस्तुत मन्द में जड़तत्त्व की सत्ता का प्रतिपादन किया है। मूल जड़तत्त्व को यहाँ 'तमस्' कहा गया है। 'प्रलयकाल' में तमस् से ही तमस्

आवृत, अर्थात् तमस् ही तमस् था। तब जगत्-वर्तमानरूप में न होकर अपने मूल कारण तमस् के रूप में था और इस प्रकार यह अपनी सभी नामरूपादि विशेषताओं से रहित शून्यवत् अतिसूक्ष्म रूप तमस् के रूप में था। प्रलयकाल में तमस् से आवृत्त अर्थात् परम सूक्ष्म तमस् के रूप में स्थित यह समग्र जगत् चेतन परम तत्त्व के संकल्प रूप तप की सामर्थ्य से नामरूपादि से युक्त वर्तमान रूप में उत्पन्न हुआ है। 'जो ढका हुआ था वह उद्भूत हो गया' इस रूप में प्रस्तुत मन्त्र ने सत्कार्यवाद की अभिव्यक्ति दी है।

व्याकरण– अप्रकेतम् - प्र + कित् + अच् = प्रकेत। अविद्यमानः प्रकेतः यस्मिन् तत्। **सलिलम्** - षल् गतौ + इलच्। **गूहळम्** - गृह + क्त। **आभु** - आ समन्तात् भवति। अ + भू से निपातनात्। **अपिहितम्** - अपि + धा + क्त। **तुच्छयने** - तुच्छ शब्द का वैदिक रूप तुच्छय। तृतीया का एकवचन। **महिना** - महि शब्द, तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **विशेष** - मैक्डानल के अनुसार **'आ इदम्'** = अस्तित्व में आने वाला (coming into being) **तमसः** =गर्मी की शक्ति से (through the power of heat)।

काम॒स्तदग्रे॒ सम॑वर्त॒ताधि॒ मन॑सो॒ रेत॑ः प्रथ॒मं यदासी॑त्।
स॒तो बन्धु॒मस॑ति॒ निर॑विन्दन् हृ॒दि प्र॒तीष्या॑ क॒वयो॑ मनी॒षा ॥ ४ ॥

अन्वय- अग्रे तत् कामः सम् अवर्तत यत् मनसः अधि प्रथमम् रेतः आसीत्। सतः बन्धुम् कवयः मनीषा हृदि प्रतीष्य असति निरविन्दन्।

शब्दार्थ- अग्रे = सबसे पहले। **तत्** = ब्रह्म के (मन में) **कामः** = सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा। **समवर्तत** = उत्पन्न हुई। **यत्** = जो। **मनसः अधि** = मन में। **प्रथमम्** = सबसे पहला। **रेतः** = सृष्टि का बीजरूप कारण। **आसीत्** = था। **सतः** = अस्तित्व रूप से विद्यामान् जगत् के। **बन्धुम्** = बन्धन के कारण को। **कवयः** = क्रान्तदर्शी ऋषियों ने। **मनीषा** = बुद्धि से। **हृदि** = हृदय में। **प्रतीष्य** = विचार कर। **असति** = अभाव में। **निरविन्दन्** = खोज कर पाया।

अनुवाद– सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो परमेश्वर के मन में सबसे पहला सृष्टि का बीजरूप कारण हुआ। अस्तित्व रूप से विद्यमान जगत्

के बन्धन के कारण की क्रान्तदर्शी ऋषियों ने अपनी बुद्धि से हृदय में विचार कर भाव से विलक्षण अभाव में खोज कर पाया।

भावार्थ- सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में संकल्प अथवा इच्छा ने उस पर तत्त्व को अधिकृत किया अथवा पर तत्त्व को स्वाभाविक रूप से सृष्टि करने की इच्छा हुई, जो कि इस संकल्प या इच्छा का होना पर तत्त्व के मन, अर्थात् स्वाभाविक ज्ञान का प्रथम कार्य था, विकार था। इस रूप में तत्त्ववेत्ताओं ने अपनी प्रजा अथवा चिन्तनशक्ति से हृदय में अनुसन्धान कर असत् में सत् का सम्बन्ध पा लिया, अर्थात् नाम रूपादिविहीन में नामरूपादियुक्त का सम्बन्ध पा लिया। यह जान लिया कि पर तत्त्व के संकल्प से नामरूपादिविहीन से नामरूपयुक्त का उद्भव हुआ। यहाँ यह वर्णन किया गया है कि तत्त्ववेत्ताओं ने चिन्तन कर असत् में सत् का सम्बन्ध पाया है, अर्थात् यह जान लिया है कि असत् में सत् समाविष्ट है और फलतः असत्; अर्थात् नामरूपादिविहीन से सत् अर्थात् नामरूपात्मक जगत् का विकास होता है। यहाँ यह मानना होगा कि परतत्त्वात्मक तमस् का असत् के रूप में विकास हुआ और फिर असत् से सत् का विकास हुआ।

व्याकरण- मनीषा - मनीषा शब्द तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। **प्रतीष्या** - प्रति + इष् इच्छायाम् + क्त्वा (ल्यप्) वैदिक दीर्घ। **समवर्तत** - सम् + वृत् धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **निरविन्दन्** - निर् + विद् (विन्द्) धातु, लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **विशेष-** मैकडानल का अर्थ भी इसी प्रकार से है उसने 'रेतस्' का अर्थ 'बीज' (Seed) किया है।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

अन्वय- एषाम् रश्मिः विततः तिरश्चीनः अधः स्वित् आसीत् उपरि स्वित् आसीत् ? रेतोधाः आसन् महिमानः आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।

शब्दार्थ- एषाम् = इनका। **रश्मिः** = सूर्य की किरणों के समान व्यापकता का भाव। **विततः** = विस्तृत। **तिरश्चीनः** = तिरछा था। **स्वित्** = क्या। **अधः** = नीचे। **आसीत्** = था। **रेतोधाः** = बीजरूप कर्म को धारण करने वाले जीव

रूप। **आसन्** = थे। **महिमानः** = आकाश आदि महान्‌रूप में प्रकृति रूप। **आसन्** = थे। **स्वधा** = भोग्य पदार्थ। **अवस्तात्** = निकृष्ट। **प्रयतिः** = भोक्ता पदार्थ। **परस्तात्** = उत्कृष्ट।

अनुवाद- इन तीनों कारणों ('नासदासीत्' में कथित अविद्या, 'कामस्तदग्रे' में कथित संकल्प और 'मनसः रेतः' में कथित सृष्टि का बीजरूप कारण) का सूर्य की किरणों के समान बहुत अधिक व्यापकता का भाव बहुत विस्तृत था। यह सब पहले क्या तिरछा था या मध्य में विद्यमान था, क्या वह नीचे विद्यमान था? अथवा क्या वह ऊपर विद्यमान था ? अर्थात् वह सब स्थानों पर समान भाव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार उत्पन्न हुये जगत् में कुछ पदार्थ बीजरूप कर्म को धारण करने वाले जीवरूप में थे और कुछ पदार्थ आकाश आदि महान् रूप में प्रकृति रूप थे। इस भोक्ता और भोग्य सृष्टि में भोग्य पदार्थ निकृष्ट समझे जाते हैं और नियमित करने वाले भोक्ता पदार्थ उत्कृष्ट माने जाते हैं।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में सृष्टि के कार्यक्रम में परमात्मा के द्विधा विभाजन का निरूपण है। समस्त जीवन, प्राणी तथा वनस्पति इस सृष्टि के दृष्टान्त हैं, जहाँ स्त्री-शक्ति-स्वधा, महिमा और पुरुषशक्ति प्रयति, रेतोधा का योगदान अनिवार्य है। दोनों शक्तियाँ परमेश्वर की हैं। परमेश्वर ही इन रूपों में परिणत हुआ है। जगत्सृष्टि-प्रक्रिया में सर्वप्रथम परतत्त्व को जगत्सृष्टि करने की कामना हुई। यहाँ कहा जा सकता है कि इसके बाद के विकास की स्थिति में चेतन और अचेतनों का जाल मध्य में, नीचे तथा ऊपर सर्वत्र फैल गया, इस जाल में भोग्य, अर्थात् अचेतन नीचे; अर्थात् निकृष्ट तथा नियम्य था और भोक्ता अर्थात् चेतन ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट एवं नियन्ता था।

व्याकरण- **विततः** - वि + तत् + क्त। **तिरश्चीन** - तिरस् + अञ्च् + ख (ईन)। **रेतोधाः** - रेतः दधाति। रेतस् + धा + क्विप्। **महिमानः** - महत् + इमनिच् = महिमन्। प्रथमा का बहुवचन। **प्रयतिः** - प्र + यम् + क्तिन्। **विशेष**- मैक्डानल के अनुसार तिरश्चीनः = आरपार (across), विततः = फैला हुआ था (was extended), रश्मि = रस्सी (cord), महिमानः = शक्तियाँ (powers), स्वधा = अन्तः शक्ति (energy), प्रयतिः = मानसिक आवेग (Impulse)। मैक्डानल के अनुसार पूरा अर्थ इस प्रकार है-There cord was extended across;

was there below or was there above ? There were impregnators, there were powers; there was energy below, there was impulse above.

को अ॒द्धा वे॑द॒ क इ॒ह प्र वो॑च॒त् कुत॒ आ जा॑ता॒ कुत॑ इ॒यं विसृ॑ष्टिः।
अ॒र्वाग्दे॒वा अ॒स्य वि॒सर्ज॑ने॒नाथा॒ को वे॑द॒ यत॑ आब॒भूव॑॥ ६ ॥

अन्वय– कः अद्धा वेद, कः इह प्र वोचत्, इयम् विसृष्टिः कुतः आजाता। देवाः अस्य विसर्जनेन अर्वाक्। अथ कः वेद यतः आ बभूव।

शब्दार्थ- **कः** = कौन। **अद्धा** = वास्तविक रूप से। **वेद** = जानता है। **कः** = कौन। **इह** = इस लोक में। **प्रवोचत्** = बता सकता है। **इयम्** = यह। **विसृष्टिः** = विविध प्रकार की सृष्टि। **कुतः** = किस निमित्त कारण से। **कुतः** = किस उपादान कारण से। **आजाता** = उत्पन्न हुई है। **देवाः** = देवता भी। **अस्य** = इस। **विसर्जनेन** = सृष्टि के उत्पन्न होने से। **अर्वाक्** = बाद के हैं। **अथ** = इसलिए। **कः वेद** = वेद कौन जानता है? **यतः** = जिस कारण से। **आबभूव** = उत्पन्न हुआ है।

अनुवाद- कौन इस बात को वास्तविकरूप से जानता है, और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने का विवरण बता सकता है? कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुई है देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि के उत्पन्न होने से बाद के हैं, अतः वे भी अपने से पहले की बात नहीं बता सकते। इसलिये कौन मनुष्य जानता है, जिस कारण से यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में सृष्टि के रहस्य को अत्यन्त गूढ़ बताया गया है। यथार्थ रूप में यह कौन जान सकता है कि किस उपादान कारण और किस निमित्तकारण से जगत् की सृष्टि हुई। देव इस जगत् की सृष्टि से बाद के हैं, फिर कौन जानता है, जहाँ से या जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ। अर्थात् जिन देवों को अब तक महत्त्व दिया जाता रहा था, उनके बारे में भी यह कह दिया गया है कि वे भी इस बात को नहीं जानते, क्योंकि वे भी सृष्टि का एक अंग मात्र हैं और फलतः सृष्टि प्रारम्भ होने के बाद के हैं, फिर वे अपने से पूर्ववर्तिनी सृष्टि को कैसे जान सकते हैं।

व्याकरण- विसृष्टिः - वि + सृज् + क्तिन्। **आजाता** - आ + जन् + क्त + टाप्। **प्रवोचत्** - प्र + ब्रू धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। वैदिक रूप। **विसर्जनेन** - वि + सृज् + ल्युट् (अन) = विसर्जन। तृतीया का एकवचन।

इ॒यं वि॑सृ॒ष्टि॒र्यत॑ आ॒बभूव॒ यदि॑ वा द॒धे यदि॑ वा॒ न।
यो अ॒स्याध्य॑क्षः प॒र॒मे व्यो॑म॒नत्सो अ॒ङ्ग वे॑द॒ यदि॑ वा॒ न वेद॑॥ ७॥

अन्वय– इयम् विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्षः परमे व्योमन् अङ्ग सः वेद यदि वा न वेद।

शब्दार्थ– इयम् = यह। **विसृष्टिः** = विविध प्रकार की सृष्टि। **यतः** = जिससे। **आबभूव** = उत्पन्न हुई है। **यदि वा** = उसके अतिरिक्त। **दधे** = धारण किये हुये है। **अस्य यः** = इस (सृष्टि) का जो। **अध्यक्षः** = स्वामी ईश्वर। **परमे व्योमन्** = उत्कृष्ट सत्यरूप आकाश के सदृश अपने प्रकाश में या स्वरूप में। **अङ्ग** = हे प्रिय श्रोताओं। **सः वेद** = वही परमात्मा जानता है। **यदि वा** = अथवा सम्भवतः वह भी। **न वेद** = नहीं जानता हो।

अनुवाद– यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुई है; वह कारण अर्थात् ईश्वर ही इस सृष्टि को धारण किये हुये हैं। उसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण किये हुये नहीं है। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर उत्कृष्ट सत्यरूप आकाश के सदृश अपने प्रकाश में या आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित है। हे प्रिय श्रोताओं ! वह सुख स्वरूप परमात्मा ही उनको जानता है। उसके अतिरिक्त इसको कोई नहीं जानता है।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में सृष्टि के रहस्य की गूढ़ता का प्रतिपादन किया गया है, क्योंकि यहाँ जगत् के अध्यक्ष के विषय में यह कहा गया है कि वह भले ही यह जानता हो कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई। अथवा किसी के द्वारा धारण की जाती है अथवा नहीं। किन्तु साथ में यह कह दिया है कि अथवा वह भी नहीं जानता है। अतः यह स्पष्ट है कि इस अध्यक्ष से जगत् की सृष्टि नहीं हुई और न यह धारण करता है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह स्वयं तो अवश्य ही जानता और फिर यह नहीं कहा जाता कि वह भी नहीं जानता हो।

व्याकरण- विसृष्टिः - वि + सृज् + क्तिन्। **व्योमन्** - सप्तमी विभक्ति, एकवचन। वैदिक रूप। **दधे** - धा धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **विशेष- मैक्डानल के अनुसार दधे** = निर्मित किया था (founded). **परमे व्योमन्** = उच्चतम अन्तरिक्ष में (In the highest heaven), **अध्यक्ष** = खोजने वाला (Surveyor)।

ooo

३१. वात सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १६८**

ऋषि-वातगोत्री अनिल **देवता-वायु** **छन्द-त्रिष्टुप्**

वात॑स्य॒ नु म॑हि॒मानं॒ रथ॑स्य रु॒जन्ने॑ति स्त॒नय॑न्नस्य॒ घोष॑ः।
दि॒वि॒स्पृग्या॑त्यरु॒णानि॑ कृ॒ण्वन्नु॒तो ए॑ति पृथि॒व्या रे॒णुमस्य॑न् ॥ १ ॥

अन्वय- वातस्य रथस्य महिमानं नु अस्य घोषः स्तनयन् रुजन् एति। दिविस्पृक् अरुणानि कृण्वन् याति उतो पृथिव्याः रेणुं अस्यन् एति।

शब्दार्थ - वातस्य = वायु के वेग से जाने वाले। **रथस्य** = रथ की। **महिमानम्** = महिमा का। **नु** = वर्णन करता हूँ। **अस्य** = इसका। **घोषः** = शब्द। **स्तनयन्** = विविध आवाज करता हुआ। (और) **रुजन्** = वृक्षादि को तोड़ता-फोड़ता हुआ। **एति** = आता है। **दिविस्पृक्** = आकाश को स्पर्श करता हुआ। (और) **अरुणानि कृण्वन्** = चारों ओर लाल वर्ण उत्पन्न करता हुआ। **याति** = जाता है। **उतो** = और यह। **पृथिव्याः** = पृथिवी की। **रेणुम्** = धूलि को। **अस्यन्** = इधर-उधर बिखेर करके। **एति** = चलता है।

अनुवाद - वायु के वेग से जाने वाले रथ की महिमा का वर्णन करता हूँ। इसका शब्द विविध आवाज करता हुआ और वृक्षादिकों को तोड़ता-फोडता हुआ आता है। (वह) आकाश कों स्पर्श करता हुआ और चारों ओर लाल वर्ण करता हुआ जाता है। और यह पृथिवी की धूलि को इधर-उधर बिखेर करके चलता है।

भावार्थ - वायु के रथ की महिमा का मैं वर्णन करता हूँ। इस वायु का शब्द विविध प्रकार से गर्जना करता हुआ और स्थावर-जङ्गम पदार्थों को तोड़ता हुआ चला आता है। आकाश को स्पर्श करता हुआ यह दिगन्तरों को लाल रङ्ग का करता हुआ चला जाता है। और यह पृथिवी की धूल को उड़ाता हुआ चलता है।

टिप्पणी व्याकरण- महिमानन् - महत् + इमनिच् = महिमना द्वितीया विभक्ति का एकवचन। **रुजन्** - रुज् + शतृ। **स्तनयन्** - स्तन् + शतृ (यक् का आगम)। **कृण्वन्** - कृ + (श्नु) + शतृ = कृण्वत्। वैदिक रूप। लोक में कुर्वन् होगा। **अस्यन्** - असु क्षेपणे + शतृ। **दिविस्पृक्** - दिवि स्पृशति अर्थ में दिवि + स्पृश् + क्विन्। समास में भी विभक्ति का लोप छान्दस नहीं हुआ।

सं प्रेर॑ते॒ अनु वात॑स्य वि॒ष्ठा ऐनं॑ गच्छन्ति॒ सम॑नं॒ न योषाः॑।
ताभिः स॒युक् स॒रथं॑ दे॒व ई॑यते॒ ऽस्य विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑ ॥ २ ॥

अन्वय- विष्ठा वातस्य अनु संप्रेरते। समनम् न एनं योषाः आगच्छन्ति। ताभिः सयुक् सरथं देवः ईयते। अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा।

शब्दार्थ - **विष्ठाः** = विशेषरूप से स्थित पर्वत आदि। **वातस्य** = वायु की। **अनु** = अनुकूल दिशा में। **संप्रेरते** = हिलते हैं, या गति से काँपते हैं। **समनम् न** = संग्राम भूमि के समान ही। **एनम्** = इनके पास। **योषाः** = घोडियाँ। **आगच्छन्ति** = आ जाती हैं। **ताभिः** = उन घोडियों से। **सयुक्** = युक्त होता हुआ। **सरथम्** = एक ही रथ पर आरूढ होकर। **देवः** = देदीप्यमान् वायु देवता। **ईयते** = बहता है। (वह) **अस्य** = इस। **विश्वस्य** = सम्पूर्ण। **भुवनस्य** = जगत् का। **राजा** = राजा है।

अनुवाद - विशेष रूप से स्थित पर्वत आदि वायु की अनुकूल दिशा में हिलते हैं, या गति से काँपते हैं। संग्राम भूमि के समान ही इनके पास घोडियाँ आ जाती हैं। उन घोडियों से युक्त होता हुआ एक ही रथ पर आरूढ़ होकर देदीप्यमान् वायु देवता बहता है। वह इस सम्पूर्ण जगत् का राजा है।

भावार्थ - विशेष रूप से अवस्थित भी पर्वत, वृक्ष आदि पदार्थ वायु

की गति से काँपते हैं। संग्राम भूमि के समान ही इसके पास घोड़ियाँ स्वयं आ जाती हैं। उनकी सहायता पाकर एक ही रथ पर आरूढ़ होकर देदीप्यमान् वायु जाता है और वह वायु देवता इस सब भुवन का राजा है।

टिप्पणी व्याकरण - संप्रेरते - सम् + प्र + ईट् धातु, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **विष्ठाः** - विशेषेण तिष्ठन्ति ये, अर्थ में वि + स्था + क = विष्ठा। प्रथम विभक्ति का बहुवचन। **सयुक्** - सह + यज् + क्विप्। **योषा** - वैदिक पोषा शब्द, प्रथमा का बहुवचन। **ईयते** - ईङ् धातु (यक्), प्रथमपुरुष, एकवचन।

अ॒न्तरि॑क्षे प॒थिभि॒रीय॑मानो॒ न नि वि॑शते कत॒मच्च॒नाहः॑।
अ॒पां सखा॑ प्रथम॒जा ऋ॒तावा॒ क्व॑ स्विज्जा॒तः कुत॒ आ ब॑भूव ॥ ३ ॥

अन्वय- अन्तरिक्षे पथिभिः ईयमानः कतमच्चन अहः न निविशते। अपां सखा प्रथमजाः ऋतवा क्वस्वित् जातः कुतः आ बभूव।

शब्दार्थ - **अन्तरिक्षे** = अन्तरिक्ष में स्थित। **पथिभिः** = मार्गों से। **ईयमानः** = जाने वाला वायु। **कतमच्चन** = किसी भी। **अहः** = दिन। **न** = नहीं। **निविशते** = ठहरता हैं (सदा चलता ही रहता है)। **अपाम्** = जलों का। **सखा** = मित्र। **प्रथमजाः** = सब प्राणियों से प्रथम उत्पन्न। (और) **ऋतावा** = सत्य धर्म का अधिष्ठाता वायु देवता। **क्वस्वित्** = कहाँ। **जातः** = उत्पन्न हुआ ? **कुतः** = कहाँ से। **आ बभूव** = आता है ?

अनुवाद - अन्तरिक्ष में स्थित मार्गों से जाने वाला वायु किसी भी दिन नहीं ठहरता है, अर्थात् सदा चलता ही रहता है। जलों का मित्र, सब प्राणियों से प्रथम उत्पन्न। और सत्य धर्म का अधिष्ठाता वायु देवता कहाँ उत्पन्न हुआ ? कहाँ से आता है।

भावार्थ - अन्तरिक्ष में अनेक मार्गों से जाने वाला यह वायु देवता किसी भी दिन स्वस्थ-निश्चल होकर नहीं बैठता अर्थात् सदा चलता ही रहता है। जलों का मित्र सबसे पहले उत्पन्न हुआ और सत्य नियमों का नियमित रूप से पालन करने वाला यह वायु कहाँ उत्पन्न हुआ ? कहाँ से आता है ? अर्थात् यह वायु देवता सब जगह विद्यमान है और इसकी उत्पत्ति कहाँ हुई, इसके विषय में कोई नहीं जानता है।

टिप्पणी व्याकरण- ईयमानः – 'ई' धातु से 'शानच्' प्रत्यय। 'श्यन्' और 'मुक्' का आगम होकर = ईयमान। **प्रथमजाः** – प्रथमः जातः अर्थ में प्रथम + जन् + ड। निपातनात् प्रथमजाः। **निविशते** – यहाँ ''नेर्विशः'' सूत्र से 'नि' पूर्वक 'विश्' धातु को आत्मनेपद हुआ। **ऋतवा** – ऋत् + वा + क्विप्।

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥ ४॥

अन्वय– देवानां आत्मा भुवनस्य गर्भः एषः देवः यथावशं चरति। अस्य घोषाः इत् शृण्विरे रूपं न। तस्मै वाताय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – (यह वायु) **देवानाम्** = इन्द्र आदि भी देवों का। **आत्मा** = आत्मा। (और) **भुवनस्य** = भुवन का। **गर्भः** = गर्भ है। **एषः** = यह। **देवः** = वायुदेव। **यथावशम्** = अपनी इच्छा के अनुसार। **चरति** = विहार करता है। **अस्य** = इस वायु के। **घोषाः** = शब्द-नाद। **इत्** = ही। **शृण्विरे** = सुनाई देते हैं। **रूपम्** = इसका रूप। **न** = दिखाई नहीं देता। **तस्मै** = उस। **वाताय** = वायुदेव की हम। **हविषा** = हवि आदि के द्वारा। **विधेम** = पूजा करते हैं।

अनुवाद – यह वायु इन्द्र आदि भी देवों का आत्मा और भुवन का गर्भ है। यह वायु देव अपनी इच्छा के अनुसार विहार करता है। इस वायु के शब्द-नाद ही सुनाई देते हैं। इसका रूप दिखाई नहीं देता। उस वायु देव की हम हवि (हवन) आदि के द्वारा पूजा करते हैं।

भावार्थ – इन्द्र आदि देवों का भी जो आत्मा है और सम्पूर्ण भुवन का अर्थात् प्राणिमात्र का या पञ्चमहाभूतों का बीजरूप है या उनको गर्भ में धारण करने वाला है। ऐसा यह वायु देव अपनी इच्छानुसार विचरण करता है। इस वायु के मात्र शब्द ही सुनाई देते हैं, इसका रूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। उस वायु देवता की हम हवि के द्वारा पूजा करते हैं।

टिप्पणी व्याकरण – **यथावशम्** – वशम् अनतिक्रम्य। अव्ययीभाव समास। **शृण्विरे** – 'श्रु' धातु भाव-कर्म में लिट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'शुश्रुविरे' रूप होगा। **विधेम** – विध् धातु, विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

* * *

३२. संज्ञान सूक्त

मण्डल १० **सूक्त १९१**
ऋषि-संवनन **देवता-प्रथम के अग्नि** **छन्द-अनुष्टुप् और**
और शेष के संज्ञान (ऐकमत्य) **देवता त्रिष्टुप्**

संस॒मिद्यु॑वसे वृष॒न्नग्ने॒ विश्वा॑न्य॒र्य आ।
इ॒ळस्प॒दे समि॑ध्यसे॒ स नो॒ वसू॒न्या भ॑र ॥ १॥

अन्वयः- वृषन् अग्ने! अर्यः विश्वानि संसम् इत् युक्से। इळः पदे समिध्यसे। सः नः वसूनि आभर।

शब्दार्थ- **वृषन् अग्ने !** = कामनाओं की वर्षा करने वाले हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! (अग्नि)। **अर्यः विश्वानि** = आप सबके स्वामी होकर। **संसम् इत् युवसे** = समस्त को आपस में मिलाते हैं। **इलः पदे** = आप यज्ञभूमि पर। **समिध्यसे** = प्रकाशित होते हैं। **सः नः** = आप हमें। **वसूनि आभर** = विविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति करावें।

छन्दोमय अर्थ- हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो, बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं, कीजिए धन वृष्टि को॥

अनुवाद-- कामनाओं की वर्षा करने वाले, हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! तुम सबके स्वामी हो और प्राणियों को आपस में मिलाते हो। तुम यज्ञ के स्थान पर प्रकाशित होते हो। तुम हमें ऐश्वर्यों को प्राप्त कराओ।

भावार्थ- इस मन्त्र में यजमान अग्नि को सम्बोधित करते हुए कह रहा है- हे अग्नि ! तुम कामवर्षक हो। अर्थात् सभी प्राणियों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हो। हे प्रभु ! तुम प्राणियों को उत्तम फल प्रदान करते हो। हे ज्ञान स्वरूप

परमात्मन् ! तुम शक्तिशाली हो और परमात्मा के सर्वगुणों से सम्पन्न हो। यज्ञ में भी तुम्हारी स्तुति होती है अर्थात् तुम ही यज्ञवेदी पर जलते हो, यज्ञ के स्थान पर प्रकाशित होते हो। वेदों में तुम्हारी ही जय-जयकार होती है। तुम ही सृष्टि के नियन्ता हो। तुम हमें धन-ऐश्वर्यो को प्राप्त कराओ। अर्थात् इस संसार के प्राणी तुमसे धन के लिए याचना करते हैं। अत: तुम उन्हें अन्न और धन से सम्पन्न करो। तुम विशेष रूप से प्राणियों में मिश्रित हो। तुम यज्ञवेदी पर जलते हो। हमें धन दो। अत: सब प्राणियों को धन एवं ऐश्वर्य प्रदान करो।

व्याकरण- अग्ने = सम्बोधन, एकवचन।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥ २॥

अन्वय:- संगच्छध्वं संवदध्वम् व: मनांसि संजानताम्। यथा पूर्वे देवा: संजानाना: भागं उपासते।

शब्दार्थ – संगच्छध्वम् = तुम परस्पर मिलकर चलो। **संवदध्वम्** = तुम परस्पर प्रेम से बोलो। **व: मनासि** = तुम्हारे मन। **सं जानताम्** = समान होकर ज्ञान प्राप्त करे। **यथा** = जिस प्रकार। **पूर्वे देवा:** = तुमसे पहले होने वाले देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष। **संजानाना:** = ज्ञान से युक्त रहते हुए। **भागं** = भाग को। **उपासते** = प्राप्त करते हैं।

छन्दोमय अर्थ - प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम, कर्त्तव्य के मानी बनो।

अनुवाद- हे प्रजाजनों! तुम सब मिलकर चलो। मिलकर प्रेम से परस्पर बोलो। तुम लोगों का मन एक सा हो; अर्थात् तुम्हारे मन समान ज्ञान वाले हों। जिस प्रकार तुमसे पहले होने वाले देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष ज्ञान से युक्त रहते हुए भाग को प्राप्त करते रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी प्राप्त करो।

भावार्थ- वर्तमान समय में समाज में व्याप्त अशान्ति का मुख्य कारण ईर्ष्या और द्वेष है। जब सब लोग अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की उन्नति के विषय में सोचेंगे, तब यहाँ के निवासी सम्पन्न हो जाएंगे। हमारा लक्ष्य एक होना चाहिए। हमारे सोचने-समझने का ढंग एक होना चाहिए। एकत्व की

भावना की आवश्यकता है। सभी प्राणियों के कल्याण के विषय में सोचने की आवश्यकता है। एक साथ मिलित होकर स्तोत्र पढ़ो, तुम लोगों का मन एक सा हो। जैसे प्राचीन देवता एक-मत होकर अपना हविर्भाग स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी एकमत होकर धनादि ग्रहण करो। अर्थात् जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने हमारे राष्ट्र को उन्नत एवं समृद्ध बनाया उसी प्रकार तुम भी सदैव राष्ट्र के हित की चिन्ता करो।

स॒मा॒नो मन्त्र॒ः समि॑तिः समानी स॑मा॒नं मन॑ः स॒ह चि॒त्तमे॑षाम्।
स॒मा॒नं मन्त्र॑म॒भि॑मन्त्रये वः समा॒नेन॑ वो ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ ३ ॥

अन्वयः- एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी। मनः एषा चित्तं सह समानम्। वः समानं मन्त्र अभिमन्त्रये वः समानेन हविषा जुहोमि।

शब्दार्थ- **एषां** = इन सब (प्रजाजनों के)। **मन्त्रः** = विचार। **समानः** = एक जैसे हो। **समितिः** = शासन में प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति। **समानी** = एक हो। **मनः एषां चित्तं सह समानम्** = इनके मन एक जैसे हो। **वः** = तुम्हें। **समानं मन्त्रं अभिमन्त्रये** = मैं एक उत्कृष्ट रहस्यपूर्ण वचन कहता हूँ (और)। **वः** = तुम्हें। **समानेन** = एक समान। **हविषा** = हवि या अन्न से। **जुहोमि** = सुसंस्कृत या युक्त करता हूँ।

छन्दोमय अर्थ - हों विचार समान सबके, चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर, भोग्य पा सब नेक हों॥

अनुवाद- इन सब प्रजाजनों के विचार एक जैसे हों। शासन में प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति एक हो। और इनके मन एक जैसे हों। हे प्रजाजनो ! मैं तुम्हारे विचारों को एक जैसा बनाता हूँ और तुमको एक समान हवि; अर्थात् अन्न आदि से युक्त करता हूँ

भावार्थ- इस मन्त्र में राजनैतिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने और उसमें एकता पर बल दिया गया है। सब की स्तुति एक सी हो; अर्थात् प्रजा के हित के लिए सबके एक समान विचार होने चाहिए। मन तथा चित्त एकविध हों अर्थात् एक मत होकर राष्ट्र की प्रगति की योजनाएँ बनानी चाहिए और उनको क्रियान्वित करना चाहिए। छोटे बड़े की भावना को त्याग कर राष्ट्र की समृद्धि एवं उन्नति का विचार करना चाहिए। अपने स्वार्थ को भूलकर समाज की भलाई

सोचनी चाहिए। सभी का हृदय एक होना चाहिए और सबका लक्ष्य एकमात्र राष्ट्रहित होना चाहिए। समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का सब को मिलकर प्रयत्न करना चाहिए। परमात्मा सभी प्राणियों के लिए कह रहा है कि मैं तुम्हें एक समान-मन्त्र से मन्त्रित कर रहा हूँ। और तुम्हारा साधारण हवि से हवन करता हूँ, ताकि तुम सब में एक ही भावना जागृत हो। अर्थात् एक ही अन्न आदि से मैं युक्त करता हूँ, ताकि तुम निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र की उन्नति, प्रगति और विकास करो।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४॥

अन्वयः- वः आकूतिः समानी। वः हृदयानि समाना। वः मनः समानम् अस्तु। यथा वः सुसह असति।

छन्दोमय अर्थ- हों सभी के दिल, तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से, जिससे बढ़े सुख-सम्पदा॥

शब्दार्थ- **वः** = तुम्हारा। **आकूतिः** = संकल्प। **समानी** = समान रहे। **वः** = तुम्हारे। **हृदयानि** = हृदय। **समाना** = एकविध समान हों। **वः** = तुम्हारे। **मनः** = मन। **समानं अस्तु** = एक समान हो। **यथा** = जिससे। **वः** = तुम्हारा। **सुसह** = परस्परकार्य। **असति** = पूर्णतः संगठित हो।

अनुवाद- हे प्रजाजनो ! तुम्हारे संकल्प या निश्चय एक से हों। तुम्हारे हृदय एक हों। तुम्हारा मन एक हो, जिससे तुम सब परस्पर सुसंगठित होकर अच्छी प्रकार से रह सको।

भावार्थ- प्रभु मनुष्यों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि तुम सबके संकल्प अथवा अध्यवसाय एक होना चाहिए। अर्थात् तुम सबका उद्देश्य एक होना चाहिए, ताकि समाज में सदैव सुख-शान्ति एवं सम्पन्नता रहे। तुम्हारा हृदय एक हो ताकि आगे बढ़कर तुम पीड़ितों के आँसू साफ कर सको। पीड़ितों के प्रति तुम्हारे मन में सहानुभूति होनी चाहिए। तुम सब को मिलकर समाज के उत्थान के लिए प्रगतिशील होना चाहिए। तुम लोगों को सम्पूर्णरूप से संगठित होना चाहिए। अर्थात् तुम्हें दृढ़ निश्चयी होकर समाज के सभी प्राणियों

के कल्याण के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये, ताकि हमारा राष्ट्र उन्नति एवं प्रगति के शिखर पर पहुँच जाए। तब हमारे राष्ट्र के वासी धन-धान्य से सम्पन्न होकर, एकजुट होकर राष्ट्र को समृद्ध बनाएगें। राष्ट्र की सुख समृद्धि, प्रगति एवं उन्नति यह ही हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। तब चारों ओर खुशहाली और समृद्धि होगी। छोटे-बड़े का भेद मिट जाएगा।

ooo

ाज
ूप से
प्राणियों